रूदाद
जमाअत इस्लामी

भाग-3

इजतिमा-ए-आम, जमाअत इस्लामी

आयोजित: 16 अप्रैल 1946 ई०

स्थान: हरवारा इलाहाबाद (उ० प्र०)

विषय-सूची

जमाअत इस्लामी के पहले अखिल भारतीय इज्तिमा की रूदाद

अख़बार 'कौसर' लाहौर के ज़रिए से एलान किया गया था कि दारुल इस्लाम (पठानकोट पंजाब) में 6, 7, 8 जुमादल ऊला सन् 1364 हिजरी (मुताबिक़ 19, 20, 21 अप्रैल 1945) को जुमेरात, जुमा, हफ़्ता के दिन पूरे हिन्दुस्तान के जमाअत इस्लामी के अरकान का इज्तिमा आयोजित होगा, जिसमें जमाअत के तमाम अरकान (सदस्यों) को शरीक होना चाहिए सिवाय उन लोगों के जिन्हें कोई शरई मजबूरी हो। जमाअत के हमदर्दों में से भी जो हज़रात हमारे काम को क़रीब से जानना चाहें वे भी आ सकते हैं। अतः 18 अप्रैल 1945 ई० की रात तक अधिकतर अरकान और हमदर्द पहुँच गए और बाक़ी 19 अप्रैल की सुबह की गाड़ी और बसों से पहुँच गए। इज्तिमा में शरीक होनेवालों की कुल तादाद 800 से ज़्यादा थी। ठहरने का प्रबंध स्थानीय मस्जिद, दफ़्तरों, दूसरी इमारतों और कुछ कैम्पों और सायबानों में था। लोगों की बड़ी तादाद के सबब लाउडस्पीकर और वक़्ती तौर पर रौशनी का भी इन्तिज़ाम कर लिया गया था।

पहला इज्लास

6 जमादुल ऊला सन् 1364 हिजरी मुताबिक़ 19 अप्रैल 1945 ई० जुमेरात के दिन ज़ुहर की नमाज़ के बाद प्रोग्राम के मुताबिक़ अमीरे जमाअत की तरफ़ से क़य्यिम जमाअत (सेक्रेट्री जनरल) ने हाज़िरीन से दरख़्वास्त की कि वे मस्जिद दारुल इस्लाम में जमा हो जाएँ, ताकि प्रोग्राम के मुताबिक़ इज्तिमा की कार्रवाई शुरू हो सके। कुछ ही मिनट बाद सब लोग मजमे के बीच में मिंबर पर बैठे हुए अमीरे जमाअत के लबों पर नज़रें जमाए सुनने के लिए ख़ामोश बैठे थे। एक हज़ार के मजमे में चारों तरफ़ बिलकुल सन्नाटा था।

अमीरे जमाअत उठे और ख़ुतबा-ए-मस्नूना के बाद अपने उद्घाटन भाषण (इफ़्तिताही तक़रीर) से इज्तिमा का उद्घाटन किया।

अमीरे जमाअत की इफ़्तिताही तक़रीर

(प्रस्तावना के बाद) दोस्तो और रफ़ीक़ो ! आपको शायद याद होगा कि जिस इज्तिमा में जमाअत की स्थापना की गई थी, उसमें यह एलान भी किया गया था कि जमाअत का आम इज्तिमा हर साल किया जाता रहेगा। लेकिन सिर्फ़ इस वजह से कि जंगी हालात ने मजबूर कर दिया था, हम पिछले पौने चार साल से कोई आम इज्तिमा न कर सके। हालाँकि इस दौरान हलक़ेवार इज्तिमाअत किए जाते रहे और उनकी रिपोर्टें भी प्रकाशित होती रहीं जिनसे एक बड़ी हद तक जमाअत को ज़िन्दगी की वह हरकत और अमल के लिए वह रौशनी मिलती रही जिसके लिए आम इज्तिमा की ज़रूरत होती है। लेकिन इसके बावजूद आम इज्तिमा बहरहाल ज़रूरी था और हलक़ेवार इज्तिमा उसकी जगह नहीं ले सकते थे, इसी वजह से मुझे आख़िरकार यह फ़ैसला करना पड़ा कि जंगी मुश्किलें चाहे कितने ही क्यों न हों और लोगों को दूर-दराज़ से आने में चाहे कितनी ही तकलीफ़ें बर्दाश्त करनी पड़ें, अब यह इज्तिमा ज़रूर आयोजित होना चाहिए।

मैं आप लोगों का बहुत शुक्रगुज़ार हूँ कि आप मेरी तरफ़ से दावत की एक ही पुकार सुनकर हिन्दुस्तान के कोने-कोने से आजकल के हालात की परेशानियों भरा सफ़र करते हुए यहाँ जमा हो गए। इस तरह मेरी आवाज़ पर लब्बैक कहकर आपने मेरी ताक़त भी बढ़ाई और अपनी ताक़त भी। ऐसा न करते तो मैं अपनी जगह कमज़ोर हो जाता और आप अपनी जगह, और नतीजा यह होता कि

हमारी यह तहरीक जो एक बहुत बड़े अज़्म और इरादे का इज़हार है, ख़ुद बख़ुद ठिठुरकर रह जाती।

आप जब किसी शख़्स को किसी बड़े मक़सद के लिए ख़ुद अपना अमीर बनाते हैं तो उसकी इताअत और फ़रमाँबरदारी करके हक़ीक़त में अपनी ही ताक़त को मज़बूत करते हैं। जितना ज़्यादा आपके अन्दर अहंकार (अनानियत) और ख़ुदपसंदी होगी और जितनी कम इताअत का इज़हार आपसे होगा, उतना ही आपका अपना बनाया हुआ अमीर कमज़ोर होगा और उतनी ही उसकी कमज़ोरी की वजह से आपकी जमाअती ताक़त कमज़ोर होगी। इसके विपरीत जितना ज़्यादा आपके दिल व दिमाग़ पर अपने मक़सद का इश्क़ हावी होगा और इस इश्क़ में जितना ज़्यादा आप अपनी ख़ुदी को (और अपने आपको) फ़ना करेंगे और जितना ज़्यादा अपने मक़सद के लिए अमीर की बात आप मानेंगे और फ़रमाबरदारी करेंगे, उतना ही ज़्यादा आपका मरकज़ (केन्द्र) ताक़तवर होगा और आपकी जमाअती ताक़त बढ़ेगी। मैं यह देखकर अकसर अपनी जगह ख़ुश होता हूँ कि हमारी इस जमाअत में शख़्सियतपरस्ती और ज़ेहनी ग़ुलामी मौजूद नहीं है, बल्कि हर शख़्स के अंदर अच्छी-ख़ासी आलोचनात्मक (तंक़ीदी) नज़र मौजूद है और सबसे बढ़कर आपकी तंक़ीदी निगाहें ख़ुद मेरे ऊपर पड़ती हैं। लेकिन यह ख़याल रखिए कि जितनी कड़ी तंक़ीदी निगाह आप मुझपर डालते हैं, और आपका फ़र्ज़ है कि आप ऐसा करें; उतनी ही कड़ी तंक़ीदी निगाह मैं आपपर डालता हूँ—और मेरा भी यह फ़र्ज़ है कि मैं ऐसा करूँ। आपसे हुक्म को मानने, अनुशासन पालन और ऐच्छिक सेवा (रज़ाकाराना ख़िदमत) की अदायगी में जितनी कमज़ोरी ज़ाहिर होती है, उतना ही मैं अपने आपको बेबस पाता हूँ और मुझे ऐसा महसूस होता है कि मैं ऐसी बंदूक़ों से काम ले रहा हूँ जो लबलबी दबाने पर भी फ़ायर नहीं करतीं और ज़ाहिर है कि ऐसे हथियारों को लेकर कौन ऐसा नादान होगा जो किसी बड़े काम का इरादा कर बैठे। इसके विपरीत जब मैं आपके अंदर इताअत और अनुशासन के गुण पाता हूँ और यह देखता हूँ कि एक आवाज़ पर आप जमा किए जा सकते हैं, एक इशारे पर आप हरकत कर सकते हैं और ख़ुद अपने दिल की लगन से आप उस काम को करते रहते हैं जो आपको सौंपा जाए तो मेरा दिल मज़बूत और मेरी हिम्मत बुलंद होने लगती है और मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि अब मुझे वह ताक़त हासिल हो रही है जिससे मैं इस बड़े मक़सद के लिए कुछ ज़्यादा काम कर सकूँ।

अब मैं इस इब्तिदाई ख़िताब में वे कुछ बातें मुख़्तसर तौर पर आपसे कह

देना चाहता हूँ, जिन्हें शुरू में बयान करने की ज़रूरत है—

1. आपके इज्तिमाओं में चाहे कितना ही बड़ा मजमा हो मगर ख़याल रखिए कि भीड़, हड़बोंग, शोर और हंगामे की कैफ़ियत कभी न होनी चाहिए। हालाँकि इस तरह की कोई चीज़ अभी तक मैंने महसूस नहीं की है मगर फिर भी आपको इस तरफ़ तवज्जोह दिलाने की ज़रूरत है। जो काम हमने अपने हाथ में लिया है यानी अख़लाक़ी उसूलों पर दुनिया की इस्लाह करना और दुनिया के नज़्म को दुरुस्त करना, इसका तक़ाज़ा है कि अख़लाक़ी हैसियत से हम अपने आपको दुनिया का सबसे अच्छा और नेक गिरोह साबित कर दिखाएँ। जिस तरह हमें दुनिया के मौजूदा बिगाड़ पर तंक़ीद और आलोचना करने का हक़ है, उसी तरह दुनिया को भी यह देखने का हक़ है कि हम इंफ़िरादी और इज्तिमाई तौर पर कैसे रहते हैं, क्या बर्ताव करते हैं, किस तरह जमा होते हैं और किस तरह अपने इज्तिमाओं का इन्तिज़ाम करते हैं? अगर दुनिया ने देखा कि हमारे इज्तिमाओं में बदनज़्मी है, हमारे मजमों में इंतिशार और शोर-गुल होता है, हमारे रहने-बैठने की जगहें हमारे बेसलीक़ा होने का पता दे रही हैं, जहाँ हम खाने बैठते हैं वहाँ आसपास का सारा माहौल गंदा हो जाता है और जहाँ हम मशविरे के लिए बैठते हैं वहाँ क़हक़हे, झगड़े और मज़ाक़ का माहौल बन जाता है और ग़लत हरकतों का प्रदर्शन होता है, तो दुनिया हमसे और हमारे ज़रिए होनेवाली इस्लाह (सुधार) से ख़ुदा की पनाह माँगेगी और यह महसूस करेगी कि अगर कहीं ज़मीन का इन्तिज़ाम इन लोगों के हाथों में आ गया तो ये सारी ज़मीन को वैसा ही करके छोड़ेंगे जैसे ये ख़ुद हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप अपने इज्तिमाओं के दौरान अनुशासन, बाक़ायदगी, संजीदगी, वक़ार, सफ़ाई-सुथराई, शालीनता और नैतिकता का ऐसा अच्छा प्रदर्शन करें जो दुनिया के लिए नमूना बन सके। आपकी सभाओं में चाहे हज़ारों आदमी जमा हों, लेकिन कोई शोर-ग़ुल न होने पाए, किसी तरफ़ गंदगी न फैले, किसी प्रकार के विवाद और झगड़े पैदा न हों, कहीं भीड़ और हुल्लड़ की कैफ़ियत नज़र न आए। एक संगठित गिरोह की तरह उठें, बैठें, खाएँ, जमा हों और चले जाएँ। आपमें से जिन लोगों ने हदीस का अध्ययन किया है उन्होंने देखा होगा कि नबी (सल्ल०) ने इस लिहाज़ से अपनी जमाअत को कितना संजीदा, बावक़ार, सभ्य और अनुशासित बनाया था। इस्लामी जमाअत के अरब क्षेत्रों पर छा जाने में इस बात का कितना बड़ा दख़ल था।

एक तरफ़ अरब के मुशरिकों का यह हाल था कि उनका एक छोटा-सा

दस्ता भी अगर किसी इलाक़े से गुज़रता था तो बड़ा शोर हो जाता था। दूसरी तरफ़ सहाबा (रज़ि०) का यह हाल था कि उनके बड़े से बड़े लश्कर भी मंज़िलों पर मंज़िलें तय करते चले जाते थे और कोई हंगामा पैदा नहीं होता था। एक बार जिहाद में सहाबा किराम (रज़ि०) ने हालात से प्रभावित होकर अल्लाहु अकबर के नारे बुलंद किए तो नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जिसे तुम पुकार रहे हो, वह बहरा नहीं है। यही बावक़ार रवैया था जिसकी तरबियत देने का नतीजा यह हुआ कि नबी (सल्ल०) जब मक्का की फ़तह के मौक़े पर दस हज़ार का लश्कर लेकर चले तो मक्कावालों को उस वक़्त तक कानों-कान आपके आने की ख़बर न हो सकी, जब तक कि आपने ख़ुद ही उनके ऐन सिर पर पहुँचकर आग रौशन करने का हुक्म न दिया। इसी तरीक़े की पैरवी हमें भी करनी चाहिए और हमारे इज्तिमाओं में भी ज़्यादा से ज़्यादा इसी शान की झलक नज़र आनी चाहिए।

2. दूसरी बात जो मैं आपके इज्तिमाओं की विशेषता देखना चाहता हूँ वह यह है कि जहाँ आप जमा हों वहाँ दयानत और अमानत बिलकुल एक महसूस शक्ल में नज़र आनी चाहिए। मैं चाहता हूँ कि यहाँ किसी शख़्स को अपने सामान की हिफ़ाज़त के लिए किसी एहतिमाम की ज़रूरत पेश न आए। जिसका माल और सामान जहाँ रखा हो वहाँ बग़ैर किसी निगराँ, रक्षक या ताला-कुंजी के सुरक्षित पड़ा रहे। किसी की चीज़ जहाँ गिरी हो वहीं उसे आकर पा ले। अगर कहीं कोई दुकान और स्टाल हो तो दुकानदार के बग़ैर उसका माल ठीक-ठीक बिक जाए। जो शख़्स कोई चीज़ ले वह ठीक हिसाब से उसकी क़ीमत वहीं रख दे, चाहे बेचनेवाला वहाँ मौजूद हो या न हो।

3. तीसरी बात आपकी जमाअत के अमीर के पद से संबंधित है। आपको याद होगा कि जब आपकी जमाअत बनी थी और आपने मुझे अमीर (अध्यक्ष) चुना था तो मैंने आपकी माँग के बग़ैर ख़ुद यह वादा किया था कि हर इज्तिमा में यह एलान करता रहूँगा कि अगर अब आपको कोई मुझसे ज़्यादा लायक़ आदमी मिल गया हो तो मैं जगह ख़ाली करने के लिए तैयार हूँ, आप उसे अमीर चुन लें। चूँकि उसके बाद कोई आम इज्तिमा आयोजित नहीं हो सका, इसलिए मैं अपने इस वादे को भी पूरा न कर सका। आज यह पहला इज्तिमा है और मैं अपने वादे के मुताबिक़ यह एलान करता हूँ। मैं यह तो ज़रूर चाहता हूँ कि दूसरा शख़्स इस मंसब को सँभाले और मैं उसकी इताअत करके बताऊँ कि अमीर की इताअत किस तरह करनी चाहिए। मगर मेरे इस एलान के मायने ये नहीं लिए जाएँ कि मैं ख़ुद पीछे हट रहा हूँ और इस काम को अंजाम देने से जी

चुरा रहा हूँ। मेरा मक़सद सिर्फ़ यह है कि न मैं इस मंसब का ख़्वाहिशमंद हूँ, न किसी लायक़ आदमी के आने में बाधक हूँ और न अपनी ज़ात को इस तहरीक की तरक़्क़ी और इस जमाअत की बेंहतरी की राह में रोड़ा बनाना चाहता हूँ। मैंने पहले भी कहा था और आज भी कहता हूँ कि अगर कोई इस काम को अंजाम देने के लिए आगे न बढ़ेगा तो मैं बढ़ूँगा और अपनी नाअहली जानने के बावजूद मैं इसके लिए तैयार नहीं हूँ कि न मैं काम करूँ और न कोई दूसरा। लिहाज़ा जब तक मुझे ख़ुद कोई ज़्यादा लायक़ (योग्यतर) आदमी नहीं मिलता और जब तक आप भी कोई मुनासिब आदमी को नहीं पाते, उस वक़्त तक मैं इस काम को करता रहूँगा। और चाहे मुझे कैसी ही परेशानियाँ और तकलीफ़ें उठानी पड़ें, बहरहाल इस झंडे को मैं ख़ुद अपने हाथ से नहीं छोड़ूँगा।

इसके साथ मैं यह एलान भी कर देना चाहता हूँ कि पिछले तीन साल के दौरान में अगर किसी को मुझसे कोई शिकायत पैदा हुई हो, किसी का हक़ अदा करने में या किसी के साथ इंसाफ़ करने में मुझसे कोई कोताही हुई हो या किसी ने मेरे काम में कोई ग़लती पाई हो तो बेझिझक उसे बताए। चाहे शख़्सी तौर पर मेरे सामने, चाहे पूरी जमाअत के सामने, मैं न किसी शिकायत के पेश होने में कोई रुकावट डालूँगा, न अपनी किसी ग़लती या क़ुसूर को मानने में मुझे कोई झिझक होगी और न अपने सुधार में या किसी जाइज़ शिकायत को दूर करने में ज़र्रा बराबर संकोच करूँगा। अलबत्ता अगर कोई शिकायत किसी ग़लतफ़हमी पर आधारित होगी तो उसे दूर कर दूँगा, ताकि इस काम में मेरे और जमाअत के रुफ़्क़ा (साथियों) के बीच कड़वाहट बाक़ी न रहे।

इस इफ़्तिताही तक़रीर के बाद अमीरे जमाअत ने क़य्यिमे जमाअत (तुफ़ैल मुहम्मद) को अपनी रिपोर्ट पेश करने का हुक्म दिया। उन्होंने जमाअत की स्थापना से लेकर इस इज्तिमा तक की जमाअत की रूदाद पेश की जो आगे दी जा रही है।

रूदाद जमाअत इस्लामी

(जमाअत की स्थापना से 16 अप्रैल 1945 ई० तक)

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम। अलहम्दु लिल्लाहि रब्बिल आलमीन, वस्सलातु वस्सलामु अला रसूलिहिल करीम।

अमीरे जमाअत, मोहतरम रुफ़क़ा, और मोहतरम हाज़िरीन !

आपको मालूम है कि हमारा नस्बुलऐन (लक्ष्य) और ज़िन्दगी का एक मात्र मक़सद इस दुनिया में 'हुकूमते इलाहिया' (ईश-शासन) की स्थापना की जिद्दोजुहद और आख़िरत में अल्लाह की ख़ुशी को हासिल करना है। जिसके मायने ये हैं कि इनसान अपनी इंफ़िरादी या इज्तिमाई, राजनैतिक या सांस्कृतिक, आर्थिक या किसी दूसरी हैसियत में भी सिवाए अपने रब और एक अल्लाह के सिवा और क़िसी का बंदा बनकर न रहे, बल्कि अपनी पूरी की पूरी ज़िन्दगी और उसके सारे मामले अल्लाह की इताअत में दे दे, और साथ ही साथ दूसरे इनसानों को भी यही राह अमली तौर पर इख़्तियार करने के लिए आमादा करे। क्योंकि बंदगी का तक़ाज़ा यही है और दुनिया में अम्न व सलामती और आख़िरत में कामयाबी का यही एक मात्र रास्ता है। दूसरे लफ़्ज़ों में यूँ समझिए कि हम वही मक़सद और दावत लेकर उठे हैं जो आदम (अलै०) से आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) तक तमाम नबी (अलै०) लेकर दुनिया में तशरीफ़ लाते रहे हैं। इस राह को हमने किसी नवीनता या सिर्फ़ एक नई तहरीक चलाने के लिए नहीं अपनाया है, बल्कि इसलिए अपनाया है कि अल्लाह के इलाह होने 'ला इला-ह इल्लल्लाह' और मुहम्मद (सल्ल०) की रिसालत और पैग़म्बरी ('मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह') के इक़रार के मायने ही इस राह को अमली तौर पर अपनाकर चल पड़ने के हैं। कलिम-ए-तय्यबा का इक़रार और इक़ामते दीन की जिद्दोजुहद से बचना और भागना एक-दूसरे के बिलकुल विपरीत है।

इस दावत को अमली तौर पर लेकर उठने, इसे अपने दूसरे भाइयों तक पहुँचाने और इससे प्रभावित लोगों को समेटने और अपनाने का सही और बेहतरीन तरीक़ा यक़ीनन वही हो सकता है जो शुरू से आख़िर तक इस दावत के असल अलमबरदार यानी अंबिया-ए-किराम (अलै०) अल्लाह तआला की रहनुमाई में इख़्तियार करते रहे। क़ुरआन मजीद हमें बताता है कि वह तरीक़ा

एक ही है और वही एक तरीक़ा बिना अपवाद हर ज़माने में अपनाया जाता रहा है। अतः इसी तरीक़ेकार को हमने अपनाया है और हमारा ईमान है कि इस दावत और तरीक़ेकार के अलावा दूसरी तमाम दावतें और तरीक़े सरासर बातिल और ग़लत हैं। हम अपने अमल के लिहाज़ से तो किसी बुलंदी व बुज़ुर्गी के मक़ाम पर होने का दावा नहीं करते मगर इसके बावजूद यह हक़ीक़त अपनी जगह क़ायम है कि हम अपनी इस दावत, इसके तक़ाज़ों, मुतालबों और इसके तरीक़ेकार के लिए अंबिया (अलै०) ही की पैरवी व कार्यवाहकता का संकल्प रखते हैं। और हमारा तरीक़ा यही है कि इन तमाम मामलों में अपनी अक़्ल और समझ की हद तक हर मामले और हर मरहले पर क़ुरआन व सुन्नत ही की तरफ़ रुजू करते हैं। इन चीज़ों में से किसी पर पूरा न उतरना हमारी इनसानी कमज़ोरी, कम इल्मी और नादानी का नतीजा तो हो सकता है, लेकिन दुस्साहस, ढिठाई, तास्सुब (पक्षपात) और ख़ुदा व रसूल के सिवा किसी ग़ैर की अक़ीदतमंदी का नतीजा नहीं हो सकता। इसलिए जमाअत के अंदर और बाहर सब इनसानों पर हम अपना यह हक़ समझते हैं कि अगर वे हममें या हममें से किसी में कोई टेढ़ या एतिराज़ के क़ाबिल कोई बात पाएँ या महसूस करें तो उसे फ़ितने का ज़रिया बनाने के बजाए ख़ामोशी के साथ बिना कुछ घटाए-बढ़ाए और बग़ैर लानत-मलामत किए हुए अपने कमज़ोर भाई और भाइयों पर उसे स्पष्ट कर दें और बिरादराना नर्मी और हमदर्दी से उसे दूर करने की कोशिश करें। 'एक मुस्लिम दूसरे मुस्लिम का आईना है' (हदीस) का यही मतलब है।

हमारी इस दावत और तरीक़ेकार का फ़ितरी तक़ाज़ा है कि इसमें दिखावे या नुमाइश या मुबालग़े (अतिशयोक्ति) की कोई झलक भी न पाई जाए। क्योंकि ये चीज़ें नेक आमाल को उसी तरह तबाह कर देती हैं जिस तरह दूध को खटाई। हम अल्लाह से दुआ करते हैं कि वह हमें दिखावे और नुमाइश के जज़्बात से महफ़ूज़ रखे। इसके अलावा चूँकि इस ज़माने में नुमाइश, दिखावा और मुबालग़ा तक़रीबन हर तहरीक के उठाने और चलाने का लाज़िमी ज़रिया बन गए हैं और माहौल के इस व्यापक प्रभाव से हमारे रुफ़्क़ा का प्रभावित होना नामुमकिन नहीं है, इसलिए भी हम इस सिलसिले में बहुत ज़्यादा एहतियात बरतते हैं और अपने इज्तिमाओं तक की कार्रवाइयों को बहुत ज़रूरी होने पर ही प्रकाशित करते हैं और वह भी सिर्फ़ अपने अरकान और हमदर्दों ही के दर्मियान सीमित रखते हैं।

लेकिन यह भी एक हक़ीक़त है कि अगर अरकान और जमाअत के हमदर्द तहरीक की रफ़्तार से समय-समय पर वाक़िफ़ न होते रहें तो एक आम ठहराव,

बददिली और मायूसी तारी होने की पूरी संभावना पैदा हो जाती है। ख़ास तौर से उस मरहले में जबकि जमाअत और अरकान सब के सब इब्तिदाई हालत में हैं, जबकि बातिल निज़ाम अपने पूरे क़हर और ग़लबे के साथ पूरी दुनिया पर मुसल्लत है और हमारे पढ़े-लिखे लोगों का वह छोटा-सा असंगठित गिरोह भी, जिसे इस आलमगीर तारीकी के ज़माने में उम्मते वस्त (मध्यमार्गी आवाहक समुदाय) और शहादते हक़ के फ़राइज़ अंजाम देने चाहिए थे, दावते हक़ में शरीक होने के बजाए अहले बातिल और फ़ासिक़ों की रहनुमाई में न सिर्फ़ अपने जान-माल व दिल-दिमाग़ की कुव्वतें ज़ाया कर रहा है, बल्कि आम मुसलमानों को गुमराही, ज़लालत, फ़िस्क़ व फ़ुजूर का भार भी अपने सिर पर ले रहा है।

अगर जमाअत के अरकान और हमदर्दों को समय-समय पर तहरीक की रफ़तार से बाख़बर न किया जाता रहे तो वे ऐसा महसूस करने लगते हैं कि शायद जमाअत में कुछ हो ही नहीं रहा है और इससे एक आम सर्दमेहरी और जड़ता छा जाती है। इसलिए इज्तिमाआत के मौक़ों पर अरकान और जमाअत के हमदर्दों को काम की रफ़तार से आगाह करना ज़रूरी है। इससे सिर्फ़ यही फ़ायदा नहीं कि मरकज़ से दूर रहनेवाले रुफ़क़ा जमाअत की कार्रवाइयों से वाक़िफ़ हो जाते हैं, बल्कि यह फ़ायदा भी होता है कि रुफ़क़ा और हमदर्दों को हमारे काम की समालोचना (तंक़ीद) करने का मौक़ा मिलता है और हमें उनके नेक और मुफ़ीद मशविरों से लाभान्वित होने का। अतः इसी मक़सद के लिए अब मैं जमाअत की स्थापना से अब तक की जमाअत के काम की संक्षिप्त रिपोर्ट पेश करता हूँ। क्योंकि जमाअत की स्थापना के बाद पूरी जमाअत का यह पहला आम इज्तिमा आयोजित हो रहा है।

जमाअत की स्थापना

जमाअत इस्लामी की स्थापना 3 शाबान 1360 हिजरी मुताबिक़ 26 अगस्त 1941 ई० को हुई। इसके बारे में तफ़सीली मालूमात 'रूदाद जमाअत इस्लामी' (पहला हिस्सा) में मौजूद है। जमाअत की स्थापना के वक़्त इसमें शरीक होनेवाले लोगों की कुल तादाद सिर्फ़ 75 थी। दो-तीन साल के अंदर ही यह तादाद बढ़ते-बढ़ते साढ़े सात सौ तक पहुँच गई। लेकिन शोब-ए-तंज़ीम (संगठन विभाग) के बाक़ायदा क़ायम न हो सकने की वजह से अरकान और मरकज़ के दर्मियान जो रब्त होना चाहिए था वह न हो सका—और न अमीरे जमाअत या दूसरे ज़िम्मेदार कारकुनों ही को अरकान की जाँच-पड़ताल और निगरानी के कोई

तसल्लीबख़्श साधन उपलब्ध हो सके। नतीजा यह हुआ कि बहुत-से ऐसे लोग जमाअत में शरीक हो गए, जिन्हें अब हम शायद अपने क़रीबी हमदर्दों में भी शरीक न कर सकें।

शोब-ए-तंज़ीम क़ायम न हो सकने की वजह एक तो कारकुनों (कार्यकर्ताओं) की कमी थी; दूसरे जमाअत की माली हालत की कमज़ोरी। तक़रीबन इन्हीं दो वजहों से यह सिलसिला इसी तरह पौने तीन साल तक चलता रहा। आख़िरकार पिछले साल जब 26, 27 मार्च 1944 ई० को सूबा पंजाब, सिंध, सरहद, कश्मीर और बलूचिस्तान के अरकाने जमाअत का इज्तिमा यहाँ दारुल इस्लाम में सम्पन्न हुआ तो शोब-ए-तंज़ीम के बाक़ायदा गठन की ज़रूरत को विभिन्न जमाअतों और अरकान की तरफ़ से बड़े ज़ोर से पेश किया गया और अमीरे जमाअत ने भी फ़रमाया कि वह इस ज़रूरत को शुरू से ही महसूस कर रहे हैं। अतः यह प्रस्ताव मंज़ूर होकर शोब-ए-तंज़ीम के बाक़ायदा क़ियाम का फ़ैसला हो गया और 17 अप्रैल 1944 ई० को यह विभाग बना दिया गया।

मक़ामी जमाअतों और अरकान की तादाद

शोब-ए-तंज़ीम के क़ियाम के वक़्त सारे मुल्क में मक़ामी जमाअतों की तादाद 37 थी, जिनमें से छह जमाअतें जमाअती दृष्टिकोण से सिफ़र (शून्य) हो चुक थीं और उन्हें बाद में ख़त्म ही कर देना पड़ा। देश के विभिन्न हिस्सों में अरकान की तादाद लगभग 750 थी, मगर उनके बाक़ायदा सूचीबद्ध करने का कोई इंतिज़ाम न था। साथ ही इन जमाअतों और मुंफ़रिद अरकान में काफ़ी तादाद ऐसे लोगों की भी भरती हो गई थी, जिन्होंने महज़ जमाअत के लिट्रेचर को पसंद करके या महज़ नस्बुलऐन (लक्ष्य) से वैचारिक सहमति ही को रुकनियत के लिए काफ़ी समझ रखा था, या फिर जिन्होंने इससे कुछ ज़्यादा भी समझा था तो वे मरकज़ (केन्द्र) के साथ रब्त का कोई मुस्तक़िल ज़रिया न होने की वजह से सर्द पड़ते हुए बिलकुल इब्तिदाई सतह पर पहुँच गए थे। शोब-ए-तंज़ीम के क़ायम होने के बाद मक़ामी जमाअतों और अरकान की जाँच-पड़ताल शुरू हुई। अतः एक साल की लगातार काट-छाँट के बाद अब अरकान की कुल तादाद 450 से भी कम रह गई है और अभी इस काट-छाँट का सिलसिला जारी है। कुछ (मक़ामी) जमाअतों को भी उनकी निष्क्रियता और न्यूनतम जमाअती स्तर और कारकरदगी के मेयार से नीचे गिर जाने की वजह से तोड़ देना पड़ा। अलहम्दुलिल्लाह इसके बावजूद मक़ामी जमाअतों की तादाद 37 से बढ़कर 53

हो गई है।

यह सब हमने इसलिए किया कि हमारा मक़सद भीड़ जमा करके दूसरों को मरऊब (भयभीत) करना या किसी कौंसिल या कार्पोरेशन में अपनी सीटों में इज़ाफ़ा करवाना नहीं है। बल्कि हमारा मक़सद कुछ ऐसे कर्मठ कार्यकर्ता तैयार करना है जो दुनियावालों को मुसलमानों की तरह जीना और मरना सिखा सकें। और उन बुज़ुर्गों और अवाम को, जो यह कहते हैं कि इस ज़माने में इस्लामी जीवन-व्यवस्था व्यावहारिक नहीं है, बता दें कि इस्लामी जीवन-व्यवस्था (इस्लामी निज़ाम) हमेशा की तरह अब भी व्यवहारिक है, सिर्फ़ पक्के इरादे और ईमान की ज़रूरत है।

यक़ीन रखिए कि जिस तरह के कारकुन हम तैयार करना चाहते हैं और जिस क़िस्म की तरबियत उनके लिए ज़रूरी है, उसके लिए यह तादाद भी बहुत ज़्यादा है और अपने मौजूदा स्टाफ़ और संसाधनों के साथ हम अरकान की इस तादाद के साथ भी वह रब्त और क़रीबी ताल्लुक़ पैदा नहीं कर सकते जो इस बारे में होना चाहिए। हमें तो अपने हलालख़ोर (आम कारकुन) से लेकर अमीर जमाअत तक सब के सब एक ही रंग में रंगे हुए और एक ही जुनून रखनेवाले कारकुन (कार्यकर्ता) दरकार हैं। इसलिए हमें बहुत एहतियात से अरकान को लेना और जमाअत में रखना है।

यह ज़रूर है कि जो लोग हमसे एक बार जुड़ जाएँ हम आख़िरी हद तक और पूरी हमदर्दी व बिरादराना मुहब्बत के साथ उन्हें अपने साथ लगाए रखने की कोशिश करते हैं और उनकी कमज़ोरियों और ख़ामियों को भी मुमकिन हद तक हिकमत के साथ दूर करने की कोशिश करते हैं। लेकिन जब यह मालूम हो जाए कि अब इस्लाह (सुधार) की उम्मीद नहीं रही है या वे रुक्ने जमाअत के कम से कम मेयार (स्तर) से भी नीचे गिर गए हैं तो हम उन्हें उसी हसरत व तकलीफ़ के साथ अलग करने पर मजबूर हो जाते हैं जिस तरह किसी जिस्म के हिस्से के सड़ जाने पर बाक़ी जिस्म की हिफ़ाज़त के लिए एक होशमंद इनसान उसे कटवा देने पर राज़ी हो जाता है। इन हालात में भी हमारा नियम यह है कि हम ऐसे लोगों को ख़ुद अलग होने का मशविरा देते हैं। अब तक अलग होनेवाले तक़रीबन सारे के सारे लोग इसी तरीक़े से अलग हुए हैं। यही वजह है कि उनमें से शायद ही कोई ऐसा हो जिसे अपनी कमी या कमज़ोरी का एहसास न हो और रुक्नियत से अलग हो जाने के बावजूद हमारे क़रीबी हमदर्दों के हल्क़े में शामिल न हो।

मक़ामी जमाअतों और अरकान की हालत

जैसा कि ऊपर बयान किया जा चुका है, अरकान की मौजूदा तादाद 425 और 450 के दर्मियान है और जमाअतों की कुल तायदाद 53 है। इनमें से आधे से ज़्यादा अरकान और मक़ामी जमाअतें इस दर्जा पुख़्ता हैं कि किसी न किसी हद तक वे ख़ुद अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं और अगर महीनों उन्हें छोड़ दिया जाए तो वे ख़ुद-बख़ुद अपनी ज़िम्मेदारी पर काम करते रहेंगे। लेकिन फिर भी वे अपेक्षित मेयार से अभी बहुत दूर हैं और उम्मीद नहीं कि उनमें से कोई भी पावर हाउस तो क्या एक सब-स्टेशन का काम भी दे सके। हर रुक्न व मक़ामी जमाअत को ज़्यादा से ज़्यादा इस तरफ़ तवज्जोह करनी चाहिए कि वह अपनी जगह आत्मनिर्भर (Self Sufficient) होकर काम कर सके।

जमाअत में शरीक होने का मेयार और तरीक़ा

तहरीक के इस मरहले पर हमारे सामने ऐसे लोगों की ज़्यादा से ज़्यादा तादाद को अपने अरकान और हमदर्दों में शामिल कर लेना है जो सही मायनों में सोसाइटी का मक्खन (Cream of Society) कहला सकते हों। माद्दी व दुनियावी हैसियत के लिहाज़ से नहीं, बल्कि दीनी और अख़लाक़ी हैसियत से इस वक़्त हमें ख़ास तौर पर ऐसे लोगों की तलाश है जो हज़रत ख़दीजतुल् कुबरा (रज़ि०) और हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की तरह हक़ की इस दावत को सुनें और पूरी तरह इसमें शरीक हो जाएँ, मानो वे अब तक इसी की तलाश में थे।

अतः अब किसी को जमाअत में शरीक करने से पहले निम्न बातों के बारे में ख़ास तौर पर तसल्ली कर लेने की कोशिश की जाती है—

(1) यह कि उन्होंने हमारी दावत और उसके तरीक़ेकार को और अन्य दावतों को जो हिन्दुस्तान[1] में चल रही हैं और उनके तरीक़ेकार को अच्छी तरह समझ लिया है और वे उन दोनों के फ़र्क़ को समझकर हमारी तरफ़ खिंच रहे हैं।

(2) यह कि उन्होंने हमारी दावत से मुतास्सिर होकर अख़लाक़ी और दीनी हैसियत से कोई नुमायाँ तरक़्क़ी की है और उनकी अमली ज़िन्दगी में उसका नक़्श और असर साफ़ तौर पर महसूस होता है।

(3) यह कि इस मामले में उनका यह रवैया (Attitude) निष्क्रिय (Passive) न होकर सक्रिय (Active) हो और वे इस दावत का काम करने के लिए अमली

---

1. उस वक़्त भारत-पाक उपमहाद्वीप का विभाजन नहीं हुआ था।

तौर पर बेचैन नज़र आते हों।

इन चीज़ों का इत्मीनान कर लेने के बाद भी आम तौर से कई-कई महीने उन्हें उम्मीदवार की हैसियत से रखा जाता है और उनसे कहा जाता है कि वे अपने आपको रुक्ने जमाअत समझते हुए कुछ मुद्दत तक काम करें। इस तरह उनका काम देखने के बाद उन्हें रुक्न बनाने का फ़ैसला किया जाता है, ताकि अगर उनका तास्सुर महज़ वक़्ती और हंगामी हो तो वे जमाअत के अंदर रहकर उसके नज़्म को ख़राब न करें।

यही तरीक़ा हमारे मक़ामी अरकान और जमाअतों को भी अपनाना चाहिए।

अरकान और हमदर्दों से काम लेने का तरीक़ा

इस वक़्त हमारा तमामतर काम रज़ाकाराना हो रहा है, यानी किसी से कोई काम हुक्म देकर नहीं करवाया जाता, बल्कि यह देखा जाता है कि एक शख़्स इस दावत से अपने दिली लगाव के आधार पर और तजदीदे ईमान (ईमान के नवीनीकरण) से अपने ऊपर आयद की गई ज़िम्मेदारियों के एहसास से मजबूर होकर क्या और कितना काम करता है। अलबत्ता अप्रत्यक्ष (Indirect) तरीक़े से ईमान के तक़ाज़ों को उजागर करने और शहादते हक़ की ज़िम्मेदारियों को अदा करने का शऊर पैदा करने की हर मुमकिन कोशिश की जाती है। इस तरीक़े के बहुत-से फ़ायदे हैं—

पहला यह कि इससे कारकुनों के अंदर ग़ुलामाना ज़ेहनियत के बजाय दाइयाना (आह्वानपरक) जज़्बात परवरिश पाते हैं, जो हर इंक़िलाबी तहरीक के अलमबरदारों के लिए बुनियादी अहमियत रखते हैं। अगर किसी ऐसी तहरीक के कारकुनों में ये जज़्बात पैदा न हों तो उसका कामयाब होना तो दरकिनार ज़्यादा दिन तक ज़िन्दा रहना भी मुमकिन नहीं।

दूसरा यह कि इससे अरकान और हमदर्दों में अख़लाक़ी और दीनी तब्दीली की रफ़्तार हर वक़्त मालूम होती रहती है और अमीरे जमाअत को जमाअत की सारी क़ुव्वत और सलाहियत का हर वक़्त ठीक अंदाज़ा रहता है।

तीसरा यह कि इससे विभिन्न अरकान की दर्जाबंदी करने और उनकी दावत के काम से दिलचस्पी का अन्दाज़ा लगाने के लिए किसी लम्बी-चौड़ी खोजबीन की ज़रूरत नहीं रहती। बल्कि इस बारे में सारे उतार-चढ़ाव लगातार सामने आते रहते हैं।

अपने हमदर्दों की हमदर्दी का अंदाज़ा भी हम उनके ज़बानी दावों से नहीं, बल्कि

दावत के लिए उनके काम, जान, माल व वक़्त की क़ुरबानी से ही करते हैं। ज़ाहिर है कि जिस शख़्स को अपने मुसलमान होने का शऊर हो जाए और वह जान ले कि नबियों (अलै०) का उत्तराधिकारी (जानशीन) होने की हैसियत से हक़ की दावत को लोगों तक पहुँचाने की कितनी बड़ी ज़िम्मेदारी उसके सिर पर है, उसके लिए आराम से बैठे रहना मुमकिन ही नहीं रहता—और जो इसके बाद भी बैठा रहता है वह ख़ुद ही अपना बेशऊर या नाकारा होना साबित कर देता है।

जमाअत का प्रभाव-क्षेत्र

हमारी आवाज़ पंजाब के तक़रीबन हर क्षेत्र में पहुँच गई है। हैदराबाद (दक्षिण) और मद्रास (चिन्नई) के ज़्यादातर इलाक़ों में और उत्तर प्रदेश और बिहार के विभिन्न इलाक़ों में पहुँच चुकी है। इनके बाद बम्बई (मुम्बई), सिंध और सूबा सरहद का नम्बर आता है। सूबा बंगाल में अब कलकत्ता (कोलकाता) और उसके सीमावर्ती क्षेत्रों में कुछ लिट्रेचर जाने लगा है। कलकत्ता में अब बुक सेलर्स भी हमारा लिट्रेचर मँगवा रहे हैं, जिससे अंदाज़ा होता है कि आम पब्लिक में इसकी माँग पैदा हो रही है। उड़ीसा, मध्य भारत, असम और बलूचिस्तान में इस वक़्त तक हमारा काम तक़रीबन नहीं के बराबर है। कहीं-कहीं कोई शख़्स इक्का-दुक्का कोई किताब या रिसाला मँगवा लेता है, वरना मजमूई हैसियत से ये सब इलाक़े हमारी दावत के लिहाज़ से अब तक बिलकुल बंजर हैं।

बंगाल, सिंध और दक्षिणी भारत में सबसे बड़ी रुकावट ज़बान की है कि इन सूबों में उर्दू ज़बान प्रचलित नहीं है और उनकी ज़बानों में हम अब तक लिट्रेचर तैयार नहीं कर सके।

जमाअत की तरफ़ आनेवाले लोग

आधुनिक शिक्षा-प्राप्त वर्ग के नेक फ़ितरत और संजीदा लोग बहुत तेज़ी से हमारी दावत और जमाअत की तरफ़ आकर्षित हो रहे हैं। और उनमें से जितने लोग भी अब तक निकले हैं वे बहुत पुख़्ता और काम के साबित हो रहे हैं। अरबी दर्सगाहों के लोग भी, हालाँकि अब हमारी तरफ़ तवज्जोह देने लगे हैं, लेकिन उनमें से एक बड़ी तादाद ऐसे लोगों की है जो किसी न किसी अक़ीदत में फँसी हुई है और हर बात को बरहक़ (सत्य) तस्लीम कर लेने के बावजूद किसी हज़रत साहब में अटककर रह जाती है। यह चीज़ भी मैंने इस एक साल के तंज़ीमी (संगठनात्मक) काम में महसूस की है कि जितना जल्दी और आसानी से यह दावत एक आधुनिक शिक्षित आदमी को, जो ताग़ूती निज़ाम के चक्कर में

फँसकर बिलकुल चकरा न गया हो, अपील करती है और अपने अंदर जज़्ब कर लेती है उससे कई गुना ज़्यादा परेशानी अरबी जाननेवाले लोगों को इसे महज़ समझाने में पेश आती है। बल्कि हमारे कुछ दोस्तों को तो यहाँ तक तजुर्बा हुआ है कि देहाती किसानों के सामने इस दावत को पेश किया गया तो वे फ़ौरन ही इसके असल तक़ाज़ों और अपेक्षाओं को समझ गए। लेकिन अच्छे-अच्छे अहले इल्म लोग बहस व तकरार (वाद-विवाद) के चक्कर ही में पड़े रहे। इसकी बड़ी वजह यह है कि हमारे अरबीदाँ भाई एक तो सीधे क़ुरआन व हदीस से दीन हासिल करने के बजाए कुछ ख़ास क़िस्म के लोगों से अपना दीन लेने के आदी बना दिए गए हैं। दूसरे यह कि तमाम गिरोही अस्बियतों (पक्षपातों) और शख़्सी अक़ीदतों को दीनदारी का ऐन तक़ाज़ा बनाकर इस तरह उनके ज़ेहननशीन कर दिया जाता है कि इसके बाद वे अपने हलक़े से बाहर किसी दीनदारी के क़ायल ही नहीं रहते। इसके विपरीत आधुनिक शिक्षा-प्राप्त वर्ग अपनी सारी बुराइयों और पश्चिमी सोच के बावजूद यह ख़ूबी ज़रूर रखता है कि बात कहनेवाले मुँह के साथ-साथ बात के अलफ़ाज़ व मायनों पर भी ग़ौर करता है—और फिर जब पलटता है तो इस यक़ीन के साथ कि पहले उसके पास जो कुछ था वह ग़ैर इस्लाम ही था और अब उसे अपनी पहली ज़िन्दगी की इमारत को जड़ से उखाड़कर नई बुनियादों पर तामीर करना है।

हमारी दावत के बारे में ग़ैर-मुस्लिम भाइयों की राय

ग़ैर-मुस्लिम क़ौमों में हालाँकि अभी हम कोई बाक़ायदा काम करने का इंतिज़ाम नहीं कर सके, लेकिन थोड़ा-बहुत लिट्रेचर जो अपने ज़ोर से उनके अंदर घुस रहा है उससे अंदाज़ा होता है कि अगर हम सही तरीक़े पर काम करते रहे तो इंशाअल्लाह वह तास्सुब (पक्षपात) जो ग़ैर-मुस्लिम और मुसलमानों के बीच एक लम्बी मुद्दत तक दुनियावी और माद्दी मक़सदों के लिए कशमकश बरपा रहने से पैदा हो गया है, हमारी राह में ज़्यादा रुकावट नहीं बन सकेगा। इस बात में तो अब कोई शुबह नहीं रहा है कि पूरी दुनिया इस वक़्त मौजूदा जीवन-व्यवस्था (निज़ामे ज़िन्दगी) से बुरी तरह बेज़ार हो चुकी है और अपनी परेशानियों और भौतिकवाद (माद्दापरस्ती) से उत्पन्न गुत्थियों को सुलझाने की फ़िक्र में और अपने मसाइल के हल की तलाश में बेताबी से हाथ-पैर मार रही है। इस वक़्त अगर हम कुछ भले लोगों का ऐसा गिरोह तैयार करने में कामयाब हो जाएँ तो सही मायनों में हक़परस्त और ख़ुदातरस भी हो और दूसरी तरफ़ दुनिया के निज़ाम को चलाने की सलाहियत और क़ाबिलियत भी मौजूदा

कर्णधारों से बढ़कर रखता हो तो दुनिया को उनकी रहनुमाई और क़ियादत (नेतृत्व) क़बूल किए बग़ैर चारा न होगा।

हमारा यह निजी तजुर्बा है कि जब भी यह दावत आम लोगों के सामने (चाहे वे पैदाइशी मुसलमान हों या ग़ैर-मुतास्सिब और आज़ाद ख़याल ग़ैर-मुस्लिम) साफ़ और वाज़ेह अलफ़ाज़ में पेश की गई तो सबने बेइख़्तियार उसके हक़ होने का एतिराफ़ किया और जैसा कि क़ुरआन मजीद ने हक़ और हिदायत को 'ज़िक्र' यानी याददेहानी कहा है, इन सब मौक़ों पर हमारी यह दावत सभी नेक फ़ितरत लोगों के लिए वास्तव में उनके अपने दिल की आवाज़ और एक जानी-बूझी लेकिन भूली हुई हक़ीक़त मालूम हुई। बल्कि ग़ैर-मुस्लिम भाइयों में से कुछ ऐसे भी मिले जिन्होंने यहाँ तक कहा कि ऐ काश! हिन्दुस्तान में यही इस्लाम पेश किया गया होता और मुसलमान उसपर चले होते तो आज हिन्दुस्तान का कोई दूसरा ही नक़्शा होता। फिर उन्होंने हमें यह भी यक़ीन दिलाया कि अगर आप अपनी दावत में वाक़ई मज़बूती के साथ जमे रहे और आपने साबित कर दिया कि आप सिर्फ़ हक़परस्त (सत्यवादी) हैं और आपका इसमें कोई निजी या क़ौमी स्वार्थ नहीं है तो मौजूदा मुसलमानों से बढ़कर ग़ैर मुस्लिम इसमें शरीक होंगे। लेकिन क़ौमी व नस्ली विद्वेषों (तास्सुबात) की दीवारें गिरने में वक़्त ज़रूर लगेगा।

मैं अपने उन रुफ़क़ा से जो ग़ैर-मुस्लिम हलक़ों में भी असर व रुसूख़ रखते हों, दरख़्वास्त करूँगा कि वे अपने पढ़े-लिखे ग़ैर-मुस्लिम भाइयों में 'पर्दा', 'ज़ब्ते विलादत' (परिवार नियोजन), 'जब्र व क़द्र' (भाग्ययोग), 'तंक़ीहात', 'मआशी मसला' (आर्थिक समस्या) और 'सलामती का रास्ता' (शांति-मार्ग) आदि पुस्तकों के ज़रिए धीरे-धीरे काम की शुरुआत करें।

इसी सिलसिले में इल्मी सलाहियतें रखनेवाले हमारे लोगों को इस बात की ओर भी तवज्जोह करनी चाहिए कि हिन्दुस्तान के मौजूदा इतिहास को—जो दरअसल कुछ तुर्क और अफ़ग़ान बादशाहों और हिन्दू राजाओं की आपसी मुल्कगीरी और दुनिया हासिल करने की कशमकश थी—मगर जिसे इस तरह पेश किया गया है जैसे कि वह हिन्दुओं और मुसलमानों की क़ौमी या हिन्दू धर्म और इस्लाम की मज़हबी जंगों की दर्द भरी दास्तान है। मानो हिन्दू राजा हिन्दू धर्म की स्थापना के लिए और तुर्क व अफ़ग़ान बादशाह दीने हक़ की सरबुलन्दी और इस्लामी निज़ामे ज़िन्दगी को क़ायम करने के लिए आपस में संघर्षरत रहे हैं। इस इतिहास को नये सिरे से लिखा जाए और उन नुक़सानात को वाज़ेह

किया जाए जो सही इस्लाम की नेमत से लाभान्वित न होने की वजह से हिन्दुस्तान के वासियों को उठाने पड़े।

मौजूदा सियासी जमाअतों पर हमारी दावत का असर

हमारी दावत का असर सिर्फ़ मुस्लिम व ग़ैर-मुस्लिम लोगों पर ही नहीं पड़ रहा है, बल्कि मुल्क का पूरा सियासी माहौल किसी न किसी हद तक इससे मुतास्सिर हो चुका है। मुल्क भर के पढ़े-लिखे तबक़े में अब थोड़े ही ऐसे लोग होंगे जो 'हुकूमते इलाहिया', 'इक़ामते दीन की जिद्दोजुहद', 'इस्लामी निज़ामे हयात' (इस्लामी जीवन-व्यवस्था), 'इस्लाम एक मुकम्मल और मुस्तक़िल निज़ामे ज़िन्दगी है' आदि शब्दों और वाक्यों से परिचित न हों। मुसलमानों में तो यह दावत इतनी मक़बूल हो चुकी है कि हक़ीक़त में अब उनमें कोई ऐसी तहरीक या जमाअत आगे नहीं बढ़ सकती जो कम से कम ज़बान से क़ुरआनी निज़ामे ज़िन्दगी के क़याम को अपना मक़सद न बताए। हालाँकि अब से पाँच-छह साल पहले तक यह हालत थी कि इस नाम को ज़बान पर लाकर कोई शख़्स सियासी हलक़ों में मज़ाक़ का विषय बने बग़ैर न रह सकता था। यही वजह है कि कुछ जमाअतों ने—चाहे ज़बानी तौर पर ही सही—साफ़-साफ़ इस मक़सद और नस्बुलऐन (लक्ष्य) को अपनाने का एलान कर दिया है और अन्य जमाअतें इस बात पर मजबूर हो गई हैं कि इस तरफ़ अपने झुकाव का एलान करें और मुसलमानों को यक़ीन दिलाने की कोशिश करें कि आख़िरकार उनके सामने भी यही मक़सद है।

हमारी दावत से प्रभावित होनेवालों में अख़लाक़ी तबदीलियाँ

हमारी दावत का पहला असर जो इससे प्रभावित होनेवाले लोगों पर पड़ता है, वह यह है कि उनकी बेमक़सद और अंधे भैंसे की-सी ज़िन्दगी का ख़ात्मा हो जाता है और बामक़सद व संजीदा ज़िन्दगी शुरू हो जाती है। उन्हें महसूस होने लगता है कि इससे पहले उन्होंने किस तरह अपने ज़िन्दगी के अस्ल मक़सद को भुलाकर हैवानों की तरह सिर्फ़ चरने-चुगने पर अपनी सारी व्यस्तताओं और संसाधनों को केन्द्रित कर रखा था। उन्हें यह चीज़ बुरी तरह काटने लगती है कि किस तरह उन्होंने अपनी उन तमाम कुव्वतों, क़ाबिलियतों और संसाधनों को, जो दरअस्ल दीने हक़ की ख़िदमत और सरबुलंदी के लिए अता किए गए थे, नफ़्स की ख़िदमत और तागूत के ग़लबे के लिए वक़्फ़ कर रखा था। इसके बाद उनके तक़वे और ख़ुदापरस्ती का मेयार भी सरासर बदल जाता है। और जिन लोगों की दीनदारी और मज़हबियत में इससे पहले ऊँट तक निगल जाने से कोई फ़र्क़

नहीं पड़ता था, इसके बाद उनके लिए किसी दूसरे की गज़-भर रस्सी भी बिना इजाज़त या ग़लत तरीक़े से लेना मुमकिन नहीं रहता।

इसके अलावा दीन व मज़हब की परिकल्पना कुछ ख़ास रस्मों से निकलकर पूरी ज़िन्दगी पर छाने लगती है और हर बड़े से बड़े व छोटे से छोटे मामले में माद्दी नुक़सान को नज़रअन्दाज़ करते हुए सिर्फ़ ख़ुदा और रसूल की पसंद और नापसंद ही स्वीकार और अस्वीकार का एक मापदंड (मेयार) रह जाता है। अतः अब आख़िरत की जवाबदेही का ख़याल अरकान की ज़िन्दगी के हर क्षेत्र में छाता जा रहा है। हाल की बात है कि हमारे एक रफ़ीक़ (साथी) जो सर्विस में हैं, एम.ए. की तैयारी कर रहे थे। इस तैयारी के दौरान उन्होंने महसूस किया कि उनके ज़ेहन में अपनी तागूती सर्विस में तरक़्क़ी और बड़े ग्रेडों के ख़यालात आने शुरू हो गए हैं जो नाजाइज़ हैं और ईमान से टकराते हैं। अतः उस अल्लाह के बंदे ने इसी आधार पर इम्तिहान का विचार ही त्याग दिया कि कहीं इसके बाद शैतान उसपर ग़ालिब आकर किसी फ़रेब में मुब्तिला न कर दे। यह एक वाक़िआ मैंने मिसाल के तौर पर बयान किया है, वरना ख़ुदा के फ़ज़्ल से अब हमारे अरकान में सही इस्लामी तक़वा पैदा हो रहा है और वे अल्लाह की मुक़र्रर की हुई हदों की पाबन्दी का एहतिमाम करने लगे हैं।

इसके अलावा जहाँ-जहाँ भी हमारा असर पहुँचा है, अल्लाह के फ़ज़्ल से दीन व दुनिया का फ़र्क़ मिटता चला गया है और लोगों की समझ में यह बात अच्छी तरह आ गई है कि अपने तमाम मामलों और दुनिया की व्यवस्था (इन्तिज़ाम) को अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) के बताए हुए तरीक़े पर चलाने ही का नाम दीन है और दीन के क़याम (स्थापना) की जिद्दोजुहद में जान-बूझकर कोताही करने के बाद ज़ोहद व तक़द्दुस (दीनदारी) के तमाम ज़ाहिरी रूप बिलकुल निरर्थक हैं और अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) के नज़दीक बिलकुल कोई वज़न नहीं रखते।

हमारी राह की रुकावटें

हाँ, हमें इस बात से इनकार नहीं कि जिस तेज़ी और ख़ूबी से यह काम होना चाहिए था और अब तक जो कुछ होना चाहिए था उसके लिहाज़ से अभी बहुत कमी है और काम की आम रफ़्तार भी बहुत सुस्त है। लेकिन इसकी ज़िम्मेदारी अगर एक तरफ़ कारकुनों की अपनी कमज़ोरी और नातजुर्बेकारी पर है तो दूसरी तरफ़ बहुत-से ऐसे सबब भी हैं कि जिनपर अल्लाह तआला ने अभी तक हमें

इख़्तियार नहीं बख़्शा। अपनी कोताहियों के लिए हम अल्लाह से माफ़ी चाहते हैं और उन्हें दूर करने की तौफ़ीक़ और हिम्मत तलब करते हैं और जो हमारी पहुँच से बाहर हैं उनपर इख़्तियार के लिए दुआ और कोशिश करते हैं।

इस बारे में हमारी सबसे बड़ी मुश्किल और रुकावट कर्मठ कार्यकर्ता और सही क़िस्म के कारकुनों की कमी है। दुनिया की सब तहरीकें और उनके बड़े से बड़े काम किराए पर करवाए जा सकते हैं, मगर इस दावत का मिज़ाज ही अल्लाह तआला ने कुछ ऐसा रखा है कि जहाँ इसमें किराए के आदमी दाख़िल हुए वहीं यह मुरझा गई। हमारे अरकान और अधिकतर कारकुन तक़रीबन हर लिहाज़ से अभी प्रारंभिक हालत में हैं। हालाँकि उनमें से अक्सर ऐसे हैं जो काफ़ी तेज़ी से इस्लाह (सुधार) क़बूल कर रहे हैं। लेकिन फिर भी जिस इरादा, हिम्मत, क़ाबिलियत, अख़लाक़ी पुख़्तगी और ईमानी कुव्वत की इस काम को परवान चढ़ाने के लिए ज़रूरत है, उसके पैदा होने में काफ़ी देर लगेगी। इनसान बहरहाल इनसान है, बदलते-बदलते ही बदलेगा। उन्हें ईंट-पत्थर की तरह हथोड़े मार-मारकर फ़ौरन मनचाही शक्ल नहीं दी जा सकती। एक छोटे-से पौधे के परवान चढ़ने और फूलने-फलने के लिए भी अल्लाह ने एक मुद्दत रखी है, और फिर इनसान तो प्राकृतिक नियमों के सामने मजबूर होने के बजाए नफ़्सानी ख़्वाहिशों और दूसरी इनसानी कमज़ोरियाँ अपने अंदर लिए हुए है।

मुझे यह मानने में कोई झिझक नहीं है कि जो बड़ा काम मेरे सुपुर्द किया गया है उसके लिए जिस इल्म, हिकमत, क़ाबिलियत, तजुर्बा और मामलों को समझने की सलाहियत की ज़रूरत है उसका मामूली हिस्सा भी अपने अंदर नहीं पाता हूँ।

जमाअत अभी इस चीज़ के इन्तिज़ाम करने में भी कामयाब नहीं हो सकी कि अपने मंसूबे के मुताबिक़ मरकज़ में तरबियतगाह क़ायम करके अरकान और कारकुनों की तरबियत का इन्तिज़ाम करे। इसकी बड़ी वजह यहाँ पर जगह (Accommodation) की कमी है।

और फिर चूँकि हमारी जमाअत के 98 प्रतिशत अरकान ग़रीब और मध्य वर्ग के लोग हैं, इसलिए अगर इनमें से किसी का पूरा वक़्त जमाअत के काम के लिए लिया जाए तो उसकी कम से कम बुनियादी ज़रूरतों का ख़र्च बर्दाश्त करना ज़रूरी है जिसकी जमाअत के बैतुलमाल में अभी गुंजाइश नहीं है।

2. हमारे रास्ते की दूसरी बड़ी रुकावट इस विश्वयुद्ध से उत्पन्न मुश्किलें हैं जिनकी हद यह है कि जमाअत की स्थापना के चार साल बाद यह पहला इज्तिमा है, जिसमें सारे मुल्क के अरकान और हमदर्द शामिल हो सके हैं। आप जानते हैं

कि इस वक़्त तक हमारी दावत व तबलीग़ की इशाअत का सबसे बड़ा बल्कि एक मात्र ज़रिया जमाअत का लिट्रेचर है। मगर इस जंग की वजह से जो काग़ज़ का अभाव हुआ उसका भी एक अर्से तक कोई इन्तिज़ाम न हो सका, और तक़रीबन एक साल पहले लिट्रेचर अप्रकाशित (Out of Print) रहा। अब भी जो काग़ज़ मिल रहा है वह लिट्रेचर की माँग के लिहाज़ से बहुत नाकाफ़ी है और जंग की शुरुआत से अब तक कोई एक दिन भी ऐसा नहीं आया कि हमारा पूरा लिट्रेचर एक ही समय में मौजूद हो सका हो। लिट्रेचर की माँग की यह हालत है कि हर किताब अगर एक बार दस हज़ार की तादाद में छपवाई जाए तो शायद कुछ महीने की ही मांग पूरी कर सके। कई किताबें ऐसी हैं जो एक मर्तबा भी प्रकाशित नहीं हो सकीं। हालाँकि मुल्क के हर कोने से उनकी माँग आ रही है।

हमारे दूसरे भी बहुत-से ज़रूरी कामों को यह जंग रोके हुए है जो आम हालात में अब तक आसानी से पूरे हो चुके होते।

3. हमारे रास्ते की तीसरी रुकावट संसाधनों की कमी है। जमाअत की आमदनी का सबसे बड़ा ज़रिया उसका बुक डिपो है और इस वक़्त तक जमाअत का तक़रीबन सारा काम इसी की आमदनी से चल रहा है, इसका हाल अभी आप सुन चुके हैं। इआनत (वित्तीय सहयोग) और ज़कात की आमदनियाँ अभी कुछ ज़्यादा नहीं, जिसकी वजह यह है कि पहले की तरह हमारे अरकान तक़रीबन सबके सब ग़रीब और मध्यम वर्ग ही से निकलकर आए हैं और उनके लिए एक विश्वव्यापी महँगाई के ज़माने में—विशेषकर जबकि हर मुमकिन हद तक हराम व हलाल का भी ध्यान रखना है—अपना गुज़ारा करना भी मुश्किल हो रहा है, ऐसे में उनके लिए कितना मुश्किल है कि वे बैतुलमाल के लिए भी कुछ बचा सकें। हालाँकि इस हक़ीक़त से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि अभी हमारे अधिकतर अरकान में अपने नस्बुलऐन और अक़ीदे के लिए वह लगन पैदा नहीं हुई, जो उन्हें इसके लिए हर बाज़ी खेल जाने और हर मुसीबत सह जाने के लिए बेताब कर दे और वे अपने पेट काट-काटकर अपने दीन की खेती को सींचने लगें।

4. हमारी चौथी मुश्किल जो दिली तकलीफ़ देनेवाली भी है, हमारे उलमा के तबक़े में से कुछ का तर्ज़ेअमल है। आपको यह जानकर हैरत होगी कि हमारी तहरीक की खुली मुख़ालिफ़त कुछ उलमा के अलावा और किसी तरफ़ से नहीं हुई। फिर यह मुख़ालिफ़त भी किसी अक़्ली या नक़ली (क़ुरआन व हदीस के आधार पर) दलील या उसूली इख़्तिलाफ़ (मतभेद) की बुनियाद पर नहीं, बल्कि

इस इक़रार के साथ है कि नज़रिया बिलकुल सही है, इस्लाम का तक़ाज़ा भी यही है और दीन का मुतालबा (अपेक्षा) भी यही है, लेकिन यह आजकल क़ाबिले अमल नहीं है। तहरीक के 'मुफ़ीद व फलदायी' होने के लिए अनुकूल हालात और संसाधन नहीं हैं और मौजूदा हालात में यह जो तुम पेश करते हो (यानी इस्लाम) इसपर अमल मुमकिन नहीं है। ये राएँ किसी देहाती मस्जिद के मुल्ला, किसी पश्चिमवादी बाबू या किसी ख़ान बहादुर की नहीं, बल्कि मिल्लत के उन अकाबिर (बड़ों) की हैं जिनकी दीनदारी, तक़वा और परहेज़गारी का ढोल पूरी दुनिया में पिट रहा है। और जिनकी रायों से महज़ दीनी मामले में ही नहीं, बल्कि दुनियावी और सियासी मसाइल तक में मतभेद करना उनके अक़ीदतमंदों के नज़दीक कुफ़्र से कम नहीं है। अवाम में हक़परस्ती की रूह पैदा करने के बजाए शख़्सियतपरस्ती का मर्ज़ पैदा कर दिया गया है। इसलिए हमारी दावत के बारे में सबसे पहला सवाल यही पैदा होता है कि है तो यह हक़, मगर फ़लाँ हज़रत साहब, फ़लाँ शाह साहब और फ़लाँ मौलाना साहब इसमें क्यों शरीक नहीं? और इसी तरह विभिन्न प्रकार के शक-शुबहात पैदा होते हैं। हालाँकि इसका बहुत बड़ा फ़ायदा यह है कि जो लोग दीन को सिर्फ़ शख़्सियतों से लेने के क़ायल हैं, वे ख़ुद-बख़ुद छँटकर अलग हो जाते हैं और वही लोग हमारी तरफ़ आते हैं जो सिर्फ़ इस अक़ीदे और नस्बुलऐन से मुहब्बत रखते हैं। मगर इस मामले में पैदाशुदा फ़ितना भी कुछ कम अहम नहीं है। दुआ है कि अल्लाह तआला इन हज़रात को हिदायत दे और ये अपने मंसब को समझें, और उन्हें इस बात का शऊर हो कि वे दीने हक़ की राह में जान-बूझकर या अनजाने कितनी बड़ी रुकावट बन गए हैं।

5. हमारे रास्ते की पाँचवीं बड़ी रुकावट, हमारे कुछ रुफ़क़ा में यकसूई की कमी है जिसकी असल वजह यह है कि उन्होंने अभी तक हमारी दावत और उसके तरीक़ेकार और दूसरी दावतों (आह्वानों) को जो मुल्क में चल रही हैं और उनके तरीक़ेकार के फ़र्क़ को अच्छी तरह नहीं समझा है। इसी वजह से वे जमाअत से जुड़ने के बावजूद बार-बार दूसरे क़ाफ़िले की तरफ़ देखते हैं और उनके दिल कुढ़ने लगते हैं कि दूसरी तहरीकों की इमारत की तरह यहाँ भी रात-भर में पूरी इमारत क्यों नहीं खड़ी हो जाती। इन हज़रात को अपनी मालूमात बढ़ानी चाहिए और ठंडे दिल से सोचने और काम करने की आदत डालनी चाहिए।

तहरीक के इस मरहले पर हम साफ़ तौर पर वाज़ेह कर देना चाहते हैं कि—

अव्वलन हमारे साथ वही हज़रात शरीक हों, और जो शरीक हो चुके हैं

उनमें से सिर्फ़ वही हज़रात शरीक रहें जो हमारे उसूल और तरीक़ेकार दोनों से पूरी तरह मुतमइन (संतुष्ट) हों।

दूसरे; जो इन दोनों को अच्छी तरह समझकर और इनकी सही जानकारी हासिल करके इनमें पूरी-पूरी दिलचस्पी लेने के लिए तैयार हों, और

तीसरे; जिनकी दिलचस्पियों में बिखराव के बजाए यकसूई पैदा हो चुकी हो, यानी वे हर तरफ़ से तवज्जोह हटाकर सिर्फ़ इसी दावत पर अपनी तमाम दिलचस्पियाँ और ध्यान केन्द्रित कर दें और अपना सब कुछ इसी काम में लगा देने के लिए तैयार हो जाएँ।

किसी तफ़्सीली बहस में उलझे बग़ैर जमाअत इस्लामी के काम की नौइयत और मुसलमानों की दूसरी जमाअतों के कामों का फ़र्क़ कुछ वाक्यों में वाज़ेह कर दूँ कि दूसरी सारी जमाअतें मुसलमान क़ौम का कोई बाक़ायदा इलाज करने के बजाए उसे महज़ इब्तिदाई मदद (First Aid) पहुँचाने में लगी हुई हैं और यही काम उनके लिए सबसे ज़्यादा अहमियत रखता है, हालाँकि उनमें से कुछ के पास मुकम्मल इलाज का पूरा सामान और बेहतरीन दवाख़ाने भी मौजूद हैं, लेकिन वे कुछ ऊपरी सी मरहम-पट्टी करके अपनी कारगुज़ारी दिखाने के लिए बेताब हैं।

इनके विपरीत हम मुसलमानों और पूरी दुनिया का मुकम्मल इलाज उसी तरीक़े पर करना चाहते हैं जिस तरीक़े पर उसके विशेषज्ञ (नबी अलै०) आज तक दुनिया की अख़लाक़ी और इज्तिमाई बीमारियों का इलाज करते रहे हैं। क़ुरआन व सुन्नत के मुताबिक़ इस इलाज के सिवा दूसरे सारे इलाज बेकार हैं और उन्हें वही लोग अपना सकते हैं जो या तो नबियों (अलै०) की तालीमात से नावाक़िफ़ हैं या फिर आधा-अधूरा काम ही करना चाहते हैं।

हमारे अरकान की इनफ़िरादी मुश्किलें

दावते इस्लामी और इक़ामते दीन की जिद्दोजुहद अमली तौर पर शुरू करके मालूम हुआ कि जिस तरह शुरू से आज तक दीने हक़ एक ही रहा है, उसी तरह जाहिलियत और कुफ़्र के मिज़ाज में भी ज़र्रा बराबर फ़र्क़ नहीं हुआ। मौजूदा सोसायटी के तहज़ीब व तमद्दुन (सभ्यता एवं संस्कृति) और रवादारी (सहिष्णुता) के तमाम ऊँचे-ऊँचे दावों के बावजूद बातिल के लिए हक़ उसी तरह नाक़ाबिले बर्दाश्त है जिस तरह पहले था। अगर आप कहीं यह पाते हैं कि बातिल अपने वर्चस्व और ग़लबे के बावजूद हक़ के कुछ ज़ाहिरी रूपों को गवारा कर रहा है तो समझ लीजिए कि यह सिर्फ़ इसलिए है कि हक़ ने एक निर्जीव शरीर और

बातिल के मातहत बनकर बेअसर रहना क़बूल कर लिया है। चुनांचे हम देखते हैं कि अधिकतर स्थानों पर जहाँ हमारे रुफ़क़ा ने वाक़ई संजीदगी से इस दावत को क़बूल किया और रब की बन्दगी को मस्जिद की चारदीवारी से बाहर अपने मामलात और ज़िन्दगी के दूसरे मसाइल पर फैलाना शुरू किया तो उसी सोसाइटी और ख़ानदान व बिरादरी को जिसे कल तक वे खाने में नमक की तरह पसंद करते थे, फोड़े में नशतर की तरह चुभने लगे और उनको वे सब मिलकर ताक़त के बल पर अपने से बाहर निकालकर फेंकने के लिए बेताब हो गए। यह सब अभी सिर्फ़ इतनी-सी बात पर है कि हमारे रुफ़क़ा ने अब सोसाइटी की पसंद न नापसंद और माली फ़ायदे की कमी-बेशी के बजाए अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की पसंद व नापसंद को स्वीकार और अस्वीकार की कसौटी बना लिया है। अतः इसी बुनियाद पर कुछ माँ-बाप ने अपने प्यारे बेटों को घर से बाहर कर दिया और उनकी शक्लें न देखने की क़समें खा लीं। कुछ बेदीन बेटों ने अपने-अपने बूढ़े बापों को मारकर घर से निकाल दिया कि वे उनकी फ़ासिक़ाना ज़िन्दगियों में बाधक होते थे। कुछ बेदीन शौहरों ने अपनी बेगुनाह बीवियों को अधर में छोड़ दिया। कुछ बातिलपरस्त माँ-बाप के बेटे जब उनकी ख़्वाहिश के मुताबिक़ कुफ़्र की ख़िदमत पर आमादा नहीं हुए तो उन्हें इसपर मजबूर करने के लिए उनकी तालीम-तरबियत पर ख़र्च किए हुए रुपये को क़र्ज़ क़रार देकर तक़ाज़े शुरू कर दिए और आख़िरकार शादी के फंदे में फँसाकर बेघर कर देने की चालें चलीं। कुछ रईसज़ादों को उन्हीं के सगे भाइयों ने ज़िल्लत व रुसवाई की आख़िरी हद तक पहुँचाने की कोशिशें कीं और जायदाद से अलग कर देने के मंसूबे बनाए। और हमारे कुछ अरकान को सिर्फ़ इस बुनियाद पर बड़े-बड़े नुक़सानात पहुँचाने की धमकियाँ दी गईं और डराया गया कि वे उन बेदीन लोगों के भाइयों और बेटों की ज़िन्दगियों पर असरअंदाज़ हो रहे हैं, जिसकी वजह से वे हराम मालों और नाजाइज़ आमदनियों पर बढ़-चढ़कर हाथ मारने से बचने लगे हैं।

ये कुछ मिसालें हैं, जिनसे आप अंदाज़ा कर सकते हैं कि यह नाम-निहाद (तथाकथित) मुसलमान क़ौम दीनी हैसियत से किस दर्जे पर है और उनकी नज़रों में दीन की क्या क़द्र व क़ीमत है।

मगर भाइयो! बहुत मुबारक है अल्लाह का वह बंदा जिसने इस आलमगीर गुमराही के घटाटोप अंधेरे में दुनिया को फिर दीने हक़ से परिचित कराया और उसकी स्थापना (क़याम) की दावत दी और इस दीन को उसने ऐसे खुले और

वाज़ेह तरीक़े से दुनिया के सामने खोलकर रख दिया कि इससे दूर भागनेवाले भी यह इक़रार किए बग़ैर न रह सके कि दीन की नेमत उसी शख़्स से पाई, और फिर मुबारक हैं आप और आप जैसे दूसरे हज़रात जिन्होंने इन विपरीत बल्कि सख़्त प्रतिरोधी हालात में इस दावत को सुना, क़बूल किया और इसे अमली तौर पर लागू करने के लिए तैयार हो गए। अपने इस काम और अल्लाह तआला की अता की हुई इस तौफ़ीक़ पर आप जितना नाज़ (गर्व) करें, उचित है। मगर मोमिन का नाज़ शुक्रिया और अल्लाह की राह में मर-मिटने ही की शक्ल में ज़ाहिर हुआ करता है। यह अच्छी तरह जान लीजिए कि दावते हक़ का यही मरहला है जिसमें उसके लिए ख़र्च किया हुआ एक पैसा, उसके लिए बहाए हुए ख़ून की एक बूँद और उसकी ख़ातिर आँखों में कटी हुई एक रात; बाद के मरहलों में किए हुए बड़े-बड़े आमाल व ईसार से ज़्यादा दर्जों की बुलंदी का कारण हो सकता है। आपको मालूम है कि हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) की उस एक रात के बदले जो उन्होंने नबी (सल्ल०) के साथ ग़ारे सौर में बसर की थी, हज़रत उमर (रज़ि०) जैसा जलीलुल-क़द्र (प्रतिष्ठित) और मुक़द्दस इनसान अपनी पूरी ज़िन्दगी के आमाल दे देने की उम्र-भर हसरत से ख़्वाहिश करता रहा। हाँ! फिर सुन लीजिए कि दावत का यही दौर ख़ुदा के क़ुर्ब और उसके यहाँ ऊँचे दर्जे हासिल करने का दौर है, वरना फ़तह मक्का के बाद तो सभी 'यद् ख़ुलू-न फ़ी दीनिल्लाहि अफ़्वा-जा'[1] (क़ुरआन, 110 : 2) का मंज़र पेश कर देते हैं।

लिट्रेचर का अन्य भाषाओं में प्रकाशन

इस वक़्त तक अपनी आवाज़ को दूसरों तक पहुँचाने के लिए हमने सिर्फ़ उर्दू ज़बान ही को ज़रिया बनाया है। यही वजह है कि उन तमाम इलाक़ों में जहाँ उर्दू बोली और समझी नहीं जाती, हमारी दावत का काम नहीं के बराबर है। इसकी बड़ी वजह यही रही है कि शुरू से अब तक इस तहरीक और जमाअत के सारे काम का भार और दारोमदार हर हैसियत से अमीरे जमाअत ही पर रहा है। और ज़ाहिर है कि एक शख़्स सारे काम नहीं कर सकता। अब दूसरी ज़बानों में इस दावत को मुंतक़िल करने का इन्तिज़ाम किया जा रहा है और बहुत-सी ज़बानों में तो यह काम अमली तौर पर शुरू हो गया है, मिसाल के तौर पर—

अरबी लिट्रेचर की तैयारी के लिए मौलाना मसऊद आलम साहब नदवी की

---

1. समूह दर समूह दीन में दाख़िल होना ।

निगरानी व रहनुमाई में जालंधर में 'दारुल अरुबा' के नाम से अरबी इदारे (संस्थान) की बुनियाद रख दी गई है और मौलाना अपनी सेहत की ख़राबी और दूसरी मजबूरियों के बावजूद अपने वतन (बिहार) से हिजरत करके मुस्तक़िल तौर पर 'दारुल अरुबा' में तशरीफ़ ले आए हैं और अपना पूरा वक़्त, तवज्जोह और मेहनत इसी काम पर लगा रहे हैं। इस बात का अफ़सोस है कि दारुल इस्लाम की आब व हवा उन्हें मुवाफ़िक़ नहीं आई और उनके लिए यहाँ से दूर दूसरी जगह इन्तिज़ाम करना पड़ा। दुआ कीजिए कि अल्लाह तआला मौलाना की इस क़ुरबानी और कोशिश को क़बूल फ़रमाए और उन्हें मुकम्मल सेहत अता फ़रमाए। आमीन ![1]

'दारुल अरुबा' से दावत से संबंधित अन्य् लिट्रेचर के अलावा एक उच्च स्तरीय अरबी मासिक पत्रिका जारी करने का प्रस्ताव विचाराधीन है।

तुर्की लिट्रेचर की तैयारी का काम यहाँ दारुल इस्लाम में हमारे प्यारे भाई आज़म हाशमी साहब मुहाजिर तुर्किस्तानी कर रहे हैं। 'रिसाला दीनियात' और 'ख़ुतबात' का तर्जुमा इस वक़्त तक मुकम्मल हो चुका है।

मलयालम भाषा जो सूबा मद्रास (चेन्नई) की बड़ी भाषाओं में से है, उसमें लिट्रेचर का तर्जुमा करने का काम हाजी वी. पी. मुहम्मद अली साहब मालाबारी को सौंपा गया है[2] और यह साहब अब तक 'रिसाला दीनियात', 'ख़ुतबात' और दो-तीन दूसरी छोटी-बड़ी किताबों का तर्जुमा पूरा कर चुके हैं। इनके प्रकाशन के लिए दक्षिणी भारत की जमाअतों ने मिलकर कुछ पैसा भी जमा कर लिया है और इन किताबों के छपवाने की दौड़-धूप भी जारी है। लेकिन मौजूदा जंगी मुश्किलों की वजह से अभी तक इसमें कामयाबी नहीं मिली है।

तमिल भाषा में दावत के काम के लिए दक्षिणी भारत की जमाअतों ने मिलकर मौलवी शैख़ अब्दुल्लाह साहब (दलितनाकपम) को चुना है कि वे उस इलाक़े में रहकर जहाँ की वह ज़बान है, महारत हासिल करें। इस दौरान शैख़ साहब की मुनासिब ज़रूरतों को ये जमाअतें पूरा करेंगी। यह काम शुरू हो चुका है। यह पहल बहुत मुबारक और क़ाबिले तक़लीद (अनुसरणीय) है और इन्तिख़ाब भी बहुत मुनासिब है। अल्लाह तआला इसे कामयाब फ़रमाए।

गुजराती भाषा जो सूबा बम्बई (मुम्बई) की सबसे बड़ी ज़बान है, उसमें हमारे

1. मौलाना का इंतिक़ाल हो चुका है।
2. हाजी साहब का इंतिक़ाल हो चुका है।

लिट्रेचर का तर्जुमा करने का ज़िम्मा हमारी बम्बई (मुम्बई) की मक़ामी जमाअत ने अपने ज़िम्मे लिया है। उन्हें इस नेक काम के लिए एक बहुत मुख़्लिस गुजराती अदीब भाई इस्माईल इख़्लास साहब मिल गए हैं। ये लोग अब तक चन्द एक ख़ुतबात गुजराती भाषा में प्रकाशित कर चुके हैं, बाक़ी ख़ुतबात और सियासी कशमकश का तर्जुमा कर चुके हैं। इख़्लास साहब अब जमाअत में शरीक हो गए हैं। अल्लाह तआला उन्हें इस्तिक़ामत बख़्शे और अपने दीन की ख़िदमत पूरे इख़्लास (निष्ठा) से अंजाम देने की तौफ़ीक़ दे।

हिन्दी अनुवाद का काम इलाहाबाद की जमाअत के सुपुर्द किया गया है जो उत्तर प्रदेश की अन्य मक़ामी जमाअतों के सहयोग से यह काम करेगी। यह काम अभी बाक़ायदा शुरू नहीं हुआ है। लेकिन उम्मीद है कि जल्द ही कुछ इन्तिज़ाम हो जाएगा। योग्य अनुवादक का न मिलना सबसे बड़ी रुकावट है। 'सलामती का रास्ता' का अनुवाद करवाया जा चुका है, लेकिन यह अभी प्रकाशित नहीं हो सका है।

सिंधी भाषा में लिट्रेचर के अनुवाद करने का अभी कोई बाक़ायदा इन्तिज़ाम तो नहीं हो सका, अलबत्ता कुछ ऐसे लोग मिल गए हैं जो कुछ तर्बियत के बाद इस काम को कर सकेंगे। वैसे 'रिसाला दीनियात' के बारे में मालूम हुआ है कि हमारे इल्म व इत्तिला के बग़ैर दो-तीन साल से सिंधी भाषा में प्रकाशित हो रहा है, लेकिन यह तर्जुमा संतोषजनक नहीं है।

अंग्रेज़ी भाषा में जमाअत के एक रुक्न थोड़ा-थोड़ा तर्जुमे का काम कर रहे हैं। इस वक़्त 'क़ुरआन की चार बुनियादी इस्तिलाहें' का अनुवाद किया जा रहा है। अंग्रेज़ी अनुवाद के लिए योग्य अनुवादक का न मिलना ही बड़ी रुकावट है।

प्रकाशनाधीन लिट्रेचर

जमाअत के लिट्रेचर की निम्न नई किताबें इन दिनों प्रकाशनाधीन हैं और इंशाअल्लाह बहुत जल्द छपकर आ जाएँगी।

1. 'क़ुरआन की चार बुनियादी इस्तिलाहें' यह अमीर जमाअत के उन मज़मूनों पर आधारित है जो इस्लाम की चार परिभाषाओं 'इलाह', 'रब', 'इबादत', 'दीन' के मतलब और मफ़हूम की व्याख्या में रिसाला 'तर्जुमानुल क़ुरआन' में प्रकाशित होते रहे हैं। क़ुरआन की शिक्षाओं को समझने के लिए यह पुस्तक बुनियादी अहमियत रखती है।

2. 'इस्लामी इबादात पर एक तहक़ीक़ी नज़र' : यह भी अमीरे जमाअत के एक मज़मून पर आधारित है, जिसकी नौइयत इसके नाम से ज़ाहिर है।

3. 'हक़ीक़ते तौहीद' : यह मौलाना अमीन अहसन इलाही साहब की नई किताब है, जो 'हक़ीक़ते शिर्क' वाले सेट की दूसरी कड़ी है।

4. 'दावते इस्लामी और उसके मुतालिबात' : यह किताब निम्न तक़रीरों व मज़मूनों पर आधारित है—

(i) 'दावते इस्लामी और उसका तरीक़ेकार' : यह अमीरे जमाअत की वह तक़रीर है जो इस रिपोर्ट के बाद वे इस इजलास में इरशाद फ़रमाएँगे।

(ii) मौलाना अमीन अहसन साहब की वे तक़रीरें जो उन्होंने सियालकोट और इलाहाबाद के इज्तिमाआत के आम जलसों में इरशाद फ़रमाई थीं। इन दोनों तक़रीरों को एक कर दिया गया है।

(iii) क़य्यिमे जमाअत का वह पैग़ाम जो कौसर (16 जनवरी 1945) में प्रकाशित हो चुका है। इस किताब में इसे तक़रीबन तीन गुना कर दिया गया है।

(iv) मौलाना अमीन अहसन साहब की वह तक़रीर जो उन्होंने इलाहाबाद के इज्तिमा में औरतों को मुख़ातब करते हुए की थी।

सूबों में क़य्यिमों (सचिवों) की नियुक्ति

चूँकि एक आदमी के लिए मुश्किल ही नहीं बल्कि नामुमकिन है कि पूरे मुल्क में तंज़ीम (संगठन) के काम को सँभाल सके, विशेषकर जबकि वह ख़ुद इब्तिदाई हालत में हो, हाथ बँटाने के लिए एक भी सहायक न हो और जमाअत के अरकान मुसलसल तवज्जोह के मोहताज हों। इसलिए दूर-दराज़ इलाक़ों के लिए अलग-अलग क़य्यिम (सेक्रेट्री) मुक़र्रर करने का फ़ैसला हो चुका है। सूबा बिहार के लिए मुहम्मद हसनैन सैयद साहब जामई को क़य्यिम मुक़र्रर कर दिया गया है और मौजूदा हालात व संसाधनों के लिहाज़ से तसल्लीबख़्श काम कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश के लिए भी अलग क़य्यिमे जमाअत मुक़र्रर करने का फ़ैसला हो चुका है। लेकिन अभी तक मुनासिब आदमी का चुनाव नहीं हो सका। इस इज्तिमा में इस फ़ैसले को अमली जामा पहनाने की कोशिश की जाएगी। इसी तरह दक्षिणी भारत के लिए भी अलग क़य्यिमे जमाअत मुक़र्रर करने का फ़ैसला हो चुका है और वहाँ के अरकान ने आम सहमति से मौलाना सैयद सिबग़तुल्लाह बख़्तियारी को इस काम के लिए चुन लिया है। लेकिन इन सबने मिलकर इस बात की तरफ़ भी मरकज़ की तवज्जोह दिलाई है कि यह काम बाक़ायदा उनके सुपुर्द करने से पहले उनको कुछ अर्से यहाँ रहने का मौक़ा दिया जाए, ताकि वे अपने काम, फ़राइज़ और ज़िम्मेदारियों को अच्छी तरह समझ लें। इस वक़्त वे

अपनी मौजूदा मसरूफ़ियात की वजह से शाबान 1364 हिजरी तक यहाँ नहीं आ सकते और फ़िलहाल मकानों की कमी की वजह से हम भी इस हाल में नहीं हैं कि उनकी रिहाइश का यहाँ इन्तिज़ाम कर सकें। इसलिए यह मामला कुछ महीनों के लिए मुल्तवी रहेगा।

प्रादेशिक क़य्यिमों की निम्न ज़िम्मेदारियाँ मुक़र्रर की गई हैं—

1. अपने हलक़े के अरकान और जमाअतों में नज़्म (अनुशासन) क़ायम रखें और तहरीक को ताज़ा रखने और आगे बढ़ाने के लिए उन्हें उकसाते रहें।

2. अपने हलक़े के अरकान और जमाअतों के साथ मुसलसल रब्त क़ायब रखें। उनकी कार्रवाइयों से बाख़बर रहें और मरकज़ को अपने हलक़े के हालात से बाख़बर रखें।

3. अरकान में हरकत पैदा करने के लिए समय-समय पर अपने हलक़े में दौरा करते रहें और जहाँ कहीं जमाअत के नज़्म में ख़राबी पैदा हो रही हो, वहाँ बरवक़्त मौक़े पर पहुँचकर हालात की इस्लाह करें।

प्रादेशिक क़य्यिमों के हलक़ों की जमाअतों और अकेले अरकान की ज़िम्मेदारियाँ निम्न होंगी—

1. अपने हलक़े के क़य्यिम के साथ पूरा-पूरा सहयोग करना और अपनी कार्रवाइयों की मासिक रिपोर्टें हलक़े के क़य्यिम को भेजते रहना, ताकि वे बरवक़्त अपने हलक़े की रिपोर्ट मरकज़ को रवाना कर सके।

2. उन अहम मामलों की इत्तिला जो मरकज़ से संबंधित हों या मरकज़ के लिए क़ाबिले तवज्जोह हों, मरकज़ को भेजते रहना।

3. जहाँ कहीं बदनज़्मी (अनुशासनहीनता) या निष्क्रियता की कोई सूरत नज़र आए उसकी इत्तिला फ़ौरन हलक़े के क़य्यिम और मरकज़ को भेजना, ताकि फ़ौरन उसे हल किया जा सके।

4. हलक़े की जमाअतों और अरकान को अपने क़य्यिम की मुनासिब ज़रूरतों की हद तक उसके ख़र्च का इन्तिज़ाम करना होगा। सफ़र के ख़र्चे तो बहरहाल उन्हें बर्दाश्त करने हैं।

क़य्यिम के इंतिख़ाब (चयन) में जिन गुणों को सामने रखना ज़रूरी है, वे ये हैं—

1. वह सक्रिय (Active) आदमी हो।

2. संजीदा, शालीन, समझदार और मामलों की समझ रखता हो।

3. तंज़ीम (संगठन) के काम को अंजाम देने की अपने अन्दर सलाहियत रखता हो।

शुक्र की बात है और मैं यह बयान करते हुए ख़ुशी महसूस करता हूँ कि शोबए तंज़ीम (प्रशासनिक विभाग) के क़ियाम और उसके फैलाव के बाद तंज़ीम का काम काफ़ी हद तक कन्ट्रोल में आ गया है। इसके बाद जितने अरकान जमाअत में लिए गए हैं और जितनी नई जमाअतों का गठन किया गया है तक़रीबन सब पुख़्ता हैं और उनका काम तसल्लीबख़्श है। कुछ मक़ामात के अलावा हर जगह से माहाना रिपोर्टें बाक़ायदगी से आ रही हैं। मगर इसके बावजूद मैं ज़रूरी समझता हूँ कि जमाअत के दस्तूर की दफ़आत 4, 5, 6, 7 और 10 की तरफ़ आपको तवज्जोह दिलाऊँ। इन दफ़आत में जिन बातों का उल्लेख किया गया है वे इतनी अहम हैं कि सब अरकान को उन्हें समय-समय पर देखते रहना चाहिए और उनकी रौशनी में अपने ईमान व अमल का जायज़ा लेना चाहिए ताकि ऐसा न हो कि हमने जमाअत में आते वक़्त जो अहद किया उसे तोड़कर न सिर्फ़ जमाअत के ज़िम्मेदार से बल्कि ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल०) के साथ भी ख़ियानत और ग़द्दारी के दोषी हों।

इसके अलावा यह बात भी क़ाबिले तवज्जोह है कि कुछ मक़ामी (स्थानीय) जमाअतों के अरकान मक़ामी अमीर (अध्यक्ष) को 'सदर अंजुमन' से ज़्यादा कोई अहमियत नहीं देते। उन्हें समझ लेना चाहिए कि जब उन्होंने अपने में से एक आदमी को सबसे ज़्यादा लायक़ समझकर अपना अमीर चुना है, तो उनपर वाजिब है कि मारूफ़ (सही कामों) में उसकी इताअत करें और उसकी नाफ़रमानी को गुनाह समझें। इस बारे में कि अरकान और अमीर के आपसी ताल्लुक़ात, हुक़ूक़ और ज़िम्मेदारियाँ क्या होनी चाहिएँ; अमीर जमाअत की वह तक़रीर जो उन्होंने जमाअत की स्थापना के वक़्त यह भारी ज़िम्मेदारी सँभालते वक़्त इरशाद फ़रमाई थी, बहुत ही अहम है। इस तक़रीर का सम्बन्धित (Relevant) भाग जमाअत की रूदाद (हिस्सा अव्वल) में है। इसका गहन अध्ययन करके आइंदा अपने ताल्लुक़ात उक्त तक़रीर में बयान की हुई बुनियादों पर क़ायम कीजिए।

दर्सगाह दारुल इस्लाम की स्थापना

हालाँकि यह काम मौलाना अमीन अहसन साहब इस्लाही और ग़ाज़ी अब्दुल जब्बार साहब का था कि दर्सगाह दारुल इस्लाम के क़याम में हुई देरी की वजहें बताएँ, क्योंकि वही लोग इस काम के इंचार्ज हैं; लेकिन चूँकि इस देरी की

ज़्यादातर ज़िम्मेदारी जमाअत और कुछ दूसरे मामलों पर है, इसलिए इस्लाही साहब और ग़ाज़ी साहब के बजाए मुझे ही इस बारे में जवाबदेही करनी चाहिए।

ज़ाहिर है कि दर्सगाह के क़याम के लिए बाक़ायदा पुख़्ता इमारत न सही, बहरहाल बड़े मकानों की ज़रूरत है और क्लास-रूमों व होस्टल से भी पहले उस्तादों के लिए क्वार्टर होने चाहिएँ ताकि वे वहाँ आकर बैठें और अपने काम की तैयारी करें। हमारे पास इस वक़्त जो इमारतें हैं, वे हमारे मौजूदा मक़ामी कारकुनों के लिए भी काफ़ी नहीं हैं। आगे की तामीर के लिए जो रुकावटें सामने आ रही हैं, उनमें कुछ निम्न हैं—

1. सबसे पहली और बड़ी रुकावट किसी मुनासिब आदमी का न मिलना है, जो हमारी तामीरी स्कीम को अपने हाथ में ले सके। इसके लिए हमें ऐसे आदमी की ज़रूरत है जो तामीर के काम को ख़ूब अच्छी तरह समझता हो। हमसे और जमाअत से हमदर्दी रखता हो। तजुर्बेकार, अच्छा प्रबंधक और ईमानदार हो। इस काम को अमली तौर पर पूरा करने की क़ाबिलियत और सलाहियत रखता हो, ताकि हम उसपर इस मामले में आँखें बंद करके भरोसा कर सकें और वह अपनी ज़िम्मेदारी पर इस काम को सँभाल सके।

2. इसके अलावा दूसरी वजह मसाला और दूसरे तामीर के सामान का महँगा होना और फिर महँगाई के बावजूद उसका उपलब्ध न होना है। हमने सोचा था कि फ़ौरी तौर पर मुस्तक़िल पुख़्ता इमारत के बजाए कुछ फूँस के छप्पर वग़ैरह डालकर काम शुरू कर दिया जाए, मगर मौजूदा सरकार ने उसपर भी कंट्रोल कर लिया।

3. दर्सगाह के क़याम के रास्ते में तीसरी रुकावट पैसे की कमी है। अव्वल तो हमारे संसाधन ही सीमित हैं। दूसरे जैसा कि पहले भी अर्ज़ कर चुका हूँ कि हमारे अरकान और हमदर्द जिनके सहयोग से हम इस काम को पूरा करना चाहते हैं, अधिकतर ग़रीब और मध्यम वर्ग के लोग हैं। जिनके लिए इस मौजूदा महँगाई के ज़माने में अपनी बुनियादी ज़रूरतें भी ठीक ढंग से पूरा करना भी मुश्किल हो रहा है। तीसरे, अभी दरअस्ल उनमें अपने नस्बुलऐन और मक़सदे ज़िन्दगी से हक़ीक़त में वह लगाव भी पैदा नहीं हुआ है जो इसके लिए उन्हें हर क़ुरबानी देने के लिए बेताब कर दे।

इसके साथ ही, जिन तरीक़ों और ज़रियों से आम तौर पर दूसरे लोग और इदारे सरमाया जुटा लेते हैं, उन तरीक़ों और ज़राए से रुपया हासिल करना तो दरकिनार हम तो आम पब्लिक-अपील और ज़रूरत के आम इशतिहार को भी

अपने मस्लक और तरीक़ेकार के विपरीत समझते हैं और हद यह है कि अपने जमाअत के अरकान तक पर भी कोई बाज़ाब्ता चंदा आयद करना, इस काम को करने की सही शक्ल नहीं समझते। हम देनेवाले से, उसके रुपये से पहले उसका दिल इस काम के लिए लेना चाहते हैं, ताकि जो कुछ उसकी जेब से निकले वह उसके दिली जज़्बे, दीनी लगाव और लिल्लाहियत का नतीजा हो। क्योंकि ऐसा ही सरमाया हक़ीक़त में उस पाक ख़ून का काम दे सकता है जो एक सही दीनी दर्सगाह की रगों में जारी होना चाहिए, और उसी से फिर यह उम्मीद भी की जा सकेगी कि ऐसे हक़परस्त और ख़ुदातरस इनसान पैदा करें जो बस एक रब्बुल आलमीन ही के बंदे हों।

इस बारे में हमारा तरीक़ा यह है कि अपनी ज़रूरतों को अपने अरकान और हमदर्दों के सामने रख देते हैं। इसके बाद फिर हर शख़्स की अपनी मुहब्बते दीन, कुशादा-दिली और साधन-सम्पन्नता पर निर्भर है कि वह हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की तरह अपना सब कुछ राहे ख़ुदा में ला ढेर करे या हज़रत उमर-फ़ारूक़ (रज़ि०) की तरह अपनी हर छोटी-बड़ी चीज़ का आधा हिस्सा अपने रब की राह में निसार कर दे या चाहे तो क़ारून की तरह अपने ख़ज़ाने पर साँप बनकर बैठा रहे।

लेकिन इस सरमाए की कमी और वसाइल (साधनों) की कमी के बावजूद मुझे पूरा यक़ीन है कि अगर हमें कोई मुनासिब आदमी मिल जाए और अपने दूसरे कामों की तरह इस काम को भी हम अल्लाह के भरोसे पर शुरू कर दें तो इंशाअल्लाह सरमाए की वजह से यह काम नहीं रुकेगा।

इस सरमाए की फ़राहमी के सिलसिले में, मैं अपने रुफ़क़ा और हमदर्दों की तवज्जोह इस बात की तरफ़ आकर्षित कराना चाहता हूँ कि इस वक़्त हमारी आमदनी का सबसे बड़ा हिस्सा—जैसा कि मैं पहले भी बयान कर चुका हूँ—हमारा मक्तबा है। इसलिए इसकी सख़्त ज़रूरत है कि जो जमाअतें या अफ़राद यहाँ से किताबें मँगवाते हैं, उन्हें अपने हिसाबात जल्दी से जल्दी चुकाते रहना चाहिए। मुनासिब यह है कि हर महीने नये आर्डर भेजने से पहले पिछला हिसाब साफ़ कर दिया जाए, ताकि जमाअत के दूसरे कामों में भी हर्ज न हो।

मर्कज़ी बैतुलमाल के हिसाबात

चूँकि जमाअत की स्थापना के बाद पूरी जमाअत का यह पहला इज्तिमा है, इसलिए 26 अगस्त 1941 ई० से लेकर 16 अप्रैल 1945 ई० तक के आमदनी

और ख़र्च के हिसाबात इस इजलास में पेश करता हूँ, ताकि आपको जमाअत की माली सूरतेहाल और उसके वित्तीय साधनों की रफ़्तार का ठीक-ठीक अंदाज़ा हो जाए।

3 शाबान 1360 हिजरी मुताबिक़ 26 अगस्त 1941 ई० को जिस सरमाए और वसाइल से दीन के क़याम की इस जिद्दोजुहद की शुरुआत की गई थी उसकी तफ़्सील इस तरह है—

	रु०	आना	पाई
नक़द	74	14	0
किताबों के रूप में (मक्तबा तर्जुमानुल क़ुरआन से) लगभग	6000	0	0
मक्तबा तर्जुमानुल क़ुरआन के अधीन	1722	1	6

यह सरमाया सय्यद अबुल आला मौदूदी साहब, मौजूदा अमीरे जमाअत ने इस काम की इब्तिदा के लिए जमाअत के बैतुलमाल में मुंतक़िल कर दिया है। बाद की तफ़्सील इस तरह है—

तफ़्सील आमदनी जमाअत इस्लामी
(एक सित० 1941 ई० से 16 अप्रैल 1945 ई० तक)

आमदनी का ज़रिया	1 सित० 1941 31 सित० 1942 तक	सन् 1943 ई०	सन् 1944 ई०	1 जन० 1945 से 16 अप्र० 1945 तक	मीज़ान कुल मदवार
किताबों की बिक्री	7413–15–9	8632–9–9	16799– 0–9	9727–15–3	42573–9– 6
सहयोग राशि	5943–13–9	2845–3–6	8159– 3–6	2583–11–0	19531–15–9
ज़कात	616–10–3	1263–5–0	2320–11–8	977–10–0	5118–4–11
क़र्ज़	2141– 0–0	0–0–0	2000– 0–0	0– 0–0	4141–0– 0
वसूली क़र्ज़	150– 2–6	202–0–0	427– 0–0	130– 0–0	909–2– 6
विविध	664–13–3	0–9–3	113– 3–7	56– 7–6	835–1– 7
अमानत	0– 0–0	10–8–0	0– 0–0	0– 0–0	10–8– 0
मीज़ान कुल सालवार	1693–7–6	12894–3–6	29819–3–6	13475-11–9	73119–10–3
नक़द सरमाया जमाअत की स्थापना के वक़्त					75–14–0
कुल वसूली, जमाअत की स्थापना से 16 अप्रैल 1945 तक					73194– 8–3

तफ़्सील मसारिफ़ (ख़र्चे) जमाअत इस्लामी
(1 सित० सन् 1941 से 16 अप्रैल सन् 1945 ई० तक)

ख़र्च की क़िस्म	1 सित० 1941 31 सित० 1942 तक	सन् 1943 ई०	सन् 1944 ई०	5 जन० 1945 से 16 अ० 1945 तक	मीज़ान कुल मदवार
मुआवज़ा कारकुनान	674– 0–0	1054–13–0	3370– 3–6	1500–14–0	6600–4–6
छपाई	5365–15–3	730–9–9	7442–15–6	5070–1–0	28609–9–6
स्टेशनरी	98– 4–6	39–15–0	179– 1–9	137–12–0	455–1–3
इश्तेहार	25– 8–0	0–0–0	0– 0–0	0–0–0	25–8–0
सफ़र ख़र्च	286– 2–0	23–9–0	786– 1–6	0–0–0	1302–12–6
मेहमानख़ाना	465–13–6	8–15–3	1254–15–0	579–3–9	2308–15–6
प्रेस	3137– 1–3	0–0–0	187–10–0	0–0–0	3324–11–3
क़र्ज़	259– 2–6	340–0–0	973–12–0	350–0–0	1922–14–6
क़र्ज़ की अदायगी	1442– 0–0	160– 0–0	1206–10–9	2000– 0–0	4809–10–9
दारुल उरूबा	20– 0–0	0– 0–0	0– 0–0	326– 0–0	346– 0–0
सहयोग राशि (इआनत)	150– 4–0	424–2–3	863– 2–9	136– 8–6	1574– 1–6
डाक ख़र्च	589–10–6	548–13–0	762– 7–9	249– 3–9	2150– 3–0
किताबों की एजेंसी	1195– 0–9	1364–15–0	7337– 3–0	4572–13–0	12505–15–0
विविध	253–13–6	720– 3–3	337– 3–3	50– 4–3	1361– 8–3
तालीमी स्कीम	0– 0–0	17– 0–0	16– 8–0	4–13–0	38– 5–0
फ़र्नीचर	0– 0–0	33– 1–0	108– 4–9	15– 4–0	156– 9–9
कुतुबख़ाना	0– 0–0	0– 0–0	5– 0–0	243– 1–6	248– 1–6
तुर्की तर्जुमा	0– 0–0	0– 0–0	80– 0–0	50– 0–0	130– 0–0
तामीरात	0– 0–0	0– 0–0	0– 0–0	442– 8–6	442– 8–6
कुल मीज़ान	13963–11–0	5673–0–6	34947–9–6	13728– 7–3	68312–12–3

मीज़ान कुल आमदनी (1 सित० 1941 ई० से 16 अप्रैल 1945 ई० तक)	73194– 8–3
मीज़ान कुल ख़र्च (1 सित० 1941 ई० से 16 अप्रैल 1945 ई० तक)	68312–12–3
नक़द मौजूद	4881–12–0

इसके अलावा मक्तबा जमाअत में इस वक़्त तक़रीबन 25 हज़ार रुपये की किताबें मौजूद हैं। ये आंकड़े हैं जिनसे ठीक-ठीक अंदाज़ा हो सकता है कि इस मुल्क के लोग हमसे किस क़द्र और किस रफ़्तार से मुतास्सिर हो रहे हैं। क्योंकि इस आम माद्दापरस्ती के ज़माने में हमारे रूखे-फीके और दुनिया के चलते हुए ढर्रे के बिलकुल विपरीत लिट्रेचर की ख़रीदारी के लिए और हमारे बेमज़ा काम में सहयोग के लिए वही लोग आगे आते हैं जो वास्तव में इससे

दिलचस्पी और लगाव रखते हैं।

क़य्यिमे जमाअत की रिपोर्ट के बाद अमीरे जमाअत ने 'दावते इस्लामी और उसका तरीक़ेकार' के शीर्षक से निहायत अहम निम्न तक़रीर की—

दावते इस्लामी और उसका तरीक़ेकार

हम्द व सना के बाद फ़रमाया :

सबसे पहले मैं इस बात पर ख़ुदा का शुक्र अदा करता हूँ कि उसने हमें एक निहायत ख़ुश्क दावत और निहायत बेमज़ा तरीक़ेकार को आख़िरकार लोगों के लिए दिलचस्प व ख़ुशज़ायक़ा बनाने में उम्मीद से ज़्यादा कामयाबी अता की। हम जिस दावत को लेकर उठे थे उससे ज़्यादा खोटी चीज़ आज दुनिया की दावतों के बाज़ार में और कोई नहीं थी। और इसके लिए जो तरीक़ेकार हमने अपनाया, उसके अंदर उन चीज़ों में से कोई चीज़ भी नहीं थी जो आजकल दुनिया की दावतों (पैग़ामों) को फैलाने में और लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने में इस्तेमाल की जाती हैं। न जलसे-जुलूस, न नारे-झंडे, न प्रदर्शन, न नुमाइश, न तक़रीरें, न वाज़ (प्रवचन)—लेकिन इसके बावजूद हम देखते हैं और यह देखकर हमारा दिल शुक्र के जज़्बे से लबरेज़ हो जाता है कि लोग दिन-प्रतिदिन भारी तादाद में हमारी इस दावत की तरफ़ खिंच रहे हैं और हमारे बेमज़ा इज्तिमाआत में भाग लेने के लिए दूर-दूर से बग़ैर किसी (दुनियावी) लालच के आते हैं।

हमारे इस इज्तिमा का एलान सिर्फ़ एक मर्तबा 'कौसर' अख़बार में प्रकाशित हुआ और इसके बाद कोई प्रोपेगंडा और किसी क़िस्म की इश्तेहारबाज़ी आम शब्दावली में 'जलसे को कामयाब बनाने के लिए' नहीं की गई। फिर भी एक हज़ार लोग हिन्दुस्तान के विभिन्न इलाक़ों से यहाँ जमा हो गए। यह कशिश बहरहाल हक़ ही की कशिश है, क्योंकि हमारे पास हक़ के सिवा और कोई चीज़ खींचनेवाली सिरे से है ही नहीं।

इज्तिमाआत का मक़सद

हमारे इन इज्तिमाआत का मक़सद कोई प्रदर्शन करना और हंगामा बरपा करके लोगों को अपनी ओर आकर्षित करना नहीं है। हमारी इनसे ग़रज़ सिर्फ़ यह है कि हमारे अरकान एक-दूसरे से परिचित हों और जुड़ें। उनके दर्मियान अजनबियत और अजनबीपन बाक़ी न रहे। वे एक-दूसरे से क़रीब हों और

आपसी मशविरे से सहयोग की सूरतें निकालें और अपने काम को आगे बढ़ाने और कठिनाइयों व समस्याओं को हल करने की तदबीरें सोचें। इसके अलावा हमारे सामने इन इज्तिमाआत से यह फ़ायदा भी है कि हमें अपने काम का जायज़ा लेने और उसकी कमज़ोरियों को समझने व उन्हें दूर करने का समय-समय पर मौक़ा मिलता रहता है। इसके अलाव, जो लोग हमसे हमदर्दी रखते हैं या हमारे ख़यालात से मुतास्सिर हैं, या हमारे काम के बारे में कुछ संदेह रखते हैं, उन्हें भी यह मौक़ा मिल जाता है कि प्रत्यक्ष रूप से हमारी दावत और हमारे काम को समझें और उनका दिल गवाही दे कि हम वाक़ई हक़ पर हैं तो हमारे साथ शरीक हो जाएँ। बहुत-सी ग़लतफ़हमियाँ ऐसी होती हैं कि वे सिर्फ़ दूरी की वजह से पैदा होती हैं और बढ़ती रहती हैं। महज़ क़रीब होना और देखना और व्यक्तिगत संबंध (Personal Contact) ही ऐसी ग़लतफ़हमियों को दूर कर देने के लिए काफ़ी होते हैं।

हम ख़ुदा का शुक्र अदा करते हैं और उन हज़रात के भी शुक्रगुज़ार हैं जो अपना वक़्त और माल ख़र्च करके हमारे इन इज्तिमाआत में महज़ हमारी बात को समझने के लिए तशरीफ़ लाते हैं। हम हक़ की तलाश की उनकी इस कोशिश को निहायत क़द्र की निगाह से देखते हैं कि जहाँ उनकी दिलचस्पी का कोई सामान नहीं है, वहाँ वे महज़ इस वजह से आते हैं कि अल्लाह के कुछ बंदे जो अल्लाह का नाम लेकर यह काम कर रहे हैं, उनके बारे में तहक़ीक़ करें कि वाक़ई उनका काम किस हद तक अल्लाह का है और अल्लाह के लिए है। यह सच्चे दिल से हक़ की तलाश अगर ज़ेहन व दिमाग़ की सफ़ाई के साथ भी हो तो अल्लाह उनकी कोशिश व तलाश को बरबाद न होने देगा। ज़रूर उन्हें हक़ के निशानाते राह दिखा देगा।

चूँकि एक बड़ी तादाद ऐसे लोगों की है जो यह जानना चाहते हैं कि हमारी दावत और हमारा मक़सद क्या है और किस तरीक़े से हम उसे हासिल करना चाहते हैं। इसलिए सबसे पहले मैं इन्हीं दो बिंदुओं पर कुछ अर्ज़ करूँगा।

हमारी दावत क्या है?

हमारी दावत के बारे में आम तौर पर जो बात कही जाती है वह यह है कि हम 'हुकूमते इलाहिया' को क़ायम करने की दावत देते हैं। हुकूमते इलाहिया का लफ़्ज़ कुछ तो ख़ुद ग़लतफ़हमी पैदा करता है और कुछ उसे ग़लतफ़हमी पैदा करने का ज़रिया बनाया जाता है। लोग यह समझते हैं और उन्हें ऐसा समझाया

भी जाता है कि हुकूमते इलाहिया से मुराद महज़ एक सियासी निज़ाम है और हमारा मक़सद इसके सिवा कुछ नहीं है कि मौजूदा व्यवस्था की जगह वह विशेष राजनीतिक व्यवस्था स्थापित हो। फिर चूँकि इस राजनीतिक व्यवस्था को चलानेवाले लाज़िमी तौर पर वही मुसलमान होंगे जो इसकी स्थापना की तहरीक में हिस्सा ले रहे हैं, इसलिए ख़ुद बख़ुद इस धारणा से यह मानी निकल आते हैं या होशियारी से निकाल लिए जाते हैं कि हम महज़ हुकूमत चाहते हैं। इसके बाद एक दीनदाराना वाज़ शुरू हो जाता है और हमसे कहा जाता है कि तुम्हारे सामने सिर्फ़ दुनिया है। हालाँकि मुसलमान के सामने दीन और आख़िरत दोनों होनी चाहिए। और यह कि हुकूमत तलब करने की चीज़ नहीं है बल्कि एक इनाम है जो दीनदाराना ज़िन्दगी के बदले में अल्लाह तआला की तरफ़ से मिल जाता है। ये बातें कहीं तो नासमझी के साथ की जाती हैं और कहीं बड़ी ही होशमंदी के साथ इस ग़रज़ के लिए कि अगर हमें नहीं तो कम से कम आम जनता के बड़े हिस्से को बदगुमानियों और ग़लतफ़हमियों में मुबतिला किया जाए। हालाँकि अगर कोई शख़्स हमारे लिट्रेचर को खुले दिल से पढ़े तो उसपर आसानी से यह बात खुल सकती है कि हमारा मक़सद सिर्फ़ एक सियासी निज़ाम क़ायम करना नहीं है, बल्कि हम चाहते हैं कि पूरी इनसानी ज़िन्दगी—इंफ़िरादी व इज्तिमाई—में वह व्यापक इंक़िलाब बरपा हो जो इस्लाम बरपा करना चाहता है। जिसके लिए अल्लाह ने अपने नबियों को भेजा था और जिसकी दावत देने और जिद्दोजुहद करने के लिए हमेशा नबियों की इमामत व रहनुमाई में उम्मते मुस्लिमा के नाम से एक गिरोह बनता रहा है।

दावते इस्लामी के तीन निकात (सूत्र)

अगर हम अपनी इस दावत को संक्षिप्त रूप में साफ़ और सीधें अलफ़ाज़ में बयान करना चाहें तो ये तीन निकात (Points) पर आधारित होगी—

1. यह कि हम ख़ुदा के बंदों को आम तौर पर और जो पहले से मुसलमान हैं उन्हें ख़ास तौर पर अल्लाह की बंदगी की दावत देते हैं।

2. यह कि जो शख़्स भी इस्लाम क़बूल करने या उसे मानने का दावा या इज़हार करे उसे हम दावत देते हैं कि वह अपनी ज़िन्दगी से मुनाफ़िक़त और विरोधाभास को ख़ारिज करे और जब वह मुसलमान है या बना है तो सच्चा मुसलमान बने और इस्लाम के रंग में रंगकर एकरंग हो जाए।

3. यह कि ज़िन्दगी का निज़ाम जो आज बातिलपरस्तों और फ़ासिक़ (उद्दंड)

लोगों की रहनुमाई व क़यादत में चल रहा है और दुनिया का शासन जो ख़ुदा के बाग़ियों के हाथ में आ गया है, हम यह दावत देते हैं कि इसे बदला जाए और रहनुमाई व नेतृत्व वैचारिक एवं व्यावहारिक दोनों हैसियतों से नेक मोमिनों के हाथों में आ जाए।

ये तीनों निकात (सूत्र) हालाँकि अपनी जगह बिलकुल साफ़ हैं, लेकिन एक लम्बी मुद्दत से इनपर ग़फ़लतों और ग़लतफ़हमियों के पर्दे पड़े रहे हैं। इसलिए बदक़िस्मती से आज ग़ैर-मुस्लिमों के सामने ही नहीं बल्कि मुसलमानों के सामने भी इनकी तशरीह (व्याख्या) करने की ज़रूरत पेश आ गई है।

रब की बंदगी का सही मतलब

अल्लाह की बंदगी की तरफ़ दावत देने का मतलब सिर्फ़ इतना ही नहीं है कि ख़ुदा को ख़ुदा और अपने आपको ख़ुदा का बंदा तो मान लिया जाए, मगर इसके बाद अख़लाक़ी, अमली और इज्तिमाई ज़िन्दगी वैसी की वैसी ही रहे जैसी ख़ुदा को न मानने और उसकी बंदगी का एतिराफ़ न करने की सूरत में होती है। इसी तरह ख़ुदा की बंदगी का यह मतलब भी नहीं है कि ख़ुदा को फ़ितरत से ऊपर हक़ीक़त में तो ख़ालिक़, राज़िक़ और माबूद तसलीम कर लिया जाए, मगर अमली ज़िन्दगी की हुक्मरानी से उसे बेदख़ल कर दिया जाए। इसी तरह ख़ुदा की बंदगी का मतलब यह भी नहीं है कि ज़िन्दगी को मज़हबी और दुनियावी दो अलग-अलग हिस्सों में तक़सीम कर दिया जाए और सिर्फ़ मज़हबी ज़िन्दगी में जिसका ताल्लुक़ अक़ीदों, इबादतों और हलाल व हराम की कुछ सीमित सीमाओं से समझा जाता है, ख़ुदा की बंदगी की जाए। बाक़ी रहे दुयियावी मामले जो संस्कृति, सामाजिकता, राजनीति, अर्थव्यवस्था, ज्ञान-विज्ञान और साहित्य आदि से संबंध रखते हैं—तो इनमें इनसान ख़ुदा की बंदगी से बिलकुल आज़ाद रहे और जिस निज़ाम को चाहे ख़ुद बनाए या दूसरों के बनाए हुए को अपना ले।

रब की बंदगी के इन सब मतलबों को हम सरासर ग़लत समझते हैं, इन्हें मिटाना चाहते हैं और हमारी लड़ाई जितनी शिद्दत के साथ निज़ामे कुफ़्र के साथ है उतनी ही बल्कि उससे ज़्यादा शिद्दत के साथ बंदगी के इन मफ़हूमों और मतलबों के ख़िलाफ़ है, क्योंकि इनकी वजह से दीन का तसव्वुर ही सिरे से बिगड़ गया है। हमारे नज़दीक क़ुरआन और इससे पहले की तमाम आसमानी किताबें और मुहम्मद (सल्ल०) और आप (सल्ल०) से पहले के तमाम पैग़म्बर जो दुनिया के विभिन्न इलाक़ों में आए, उनकी एक ही दावत रब की जिस बंदगी की

तरफ़ थी वह यह थी कि इनसान ख़ुदा को पूरे मानी में इलाह, रब, माबूद, हाकिम, आक़ा, मालिक, रहनुमा, क़ानूनसाज़, मुहासिब और मुजाज़ी (बदला देनेवाला) तसलीम करे और अपनी पूरी ज़िन्दगी को चाहे वह शख़्सी (Individual) हो या इज्तिमाई, अख़लाक़ी हो या मज़हबी, सांस्कृतिक व राजनीतिक और आर्थिक हो या बौद्धिक व वैचारिक, उसी एक ख़ुदा की बंदगी में सुपुर्द कर दे। यही मुतालबा है जो क़ुरआन में इस तरह किया गया है—"उदख़ुलू फ़िस्सिल्मि काफ़्फ़ा' (तुम पूरे के पूरे इस्लाम में दाख़िल हो जाओ) यानी अपनी ज़िन्दगी के किसी पहलू और किसी क्षेत्र को रब की बंदगी से महफ़ूज़ (Reserve) करके न रखो।

अपने पूरे वजूद और हस्ती के साथ ख़ुदा की ग़ुलामी व इताअत में आ जाओ। ज़िन्दगी के किसी मामले में भी तुम्हारा यह तर्ज़ेअमल न हो कि अपने आपको ख़ुदा की बंदगी से आज़ाद समझो और उसकी रहनुमाई व हिदायत से बेपरवाह होकर और उसके मुक़ाबले में ख़ुदमुख़्तार बनकर या किसी ख़ुदमुख़्तार बने हुए बंदे के आज्ञापालक या पैरवी करनेवाले बनकर उस राह पर चलने लगो जिसकी हिदायत ख़ुद ख़ुदा ने न दी हो। बंदगी का यही वह मतलब है, जिसकी हम तबलीग़ करते हैं और जिसे क़बूल करने की मुसलमानों और सभी ग़ैर-मुस्लिमों को दावत देते हैं।

मुनाफ़िक़त की हक़ीक़त

दूसरी चीज़ जिसकी हम दावत देते हैं वह यह है कि इस्लाम की पैरवी का दावा करनेवाले या इस्लाम क़बूल करनेवाले सब लोग मुनाफ़िक़ाना (पाखंडपूर्ण) रवैये को भी छोड़ दें और अपनी ज़िन्दगी को विरोधाभासों से भी पाक करें। मुनाफ़िक़ाना रवैये से हमारी मुराद यह है कि आदमी जिस दीन की पैरवी का दावा करे उसके बिलकुल विपरीत जीवन-व्यंवस्था को अपने ऊपर हावी और मुसल्लत पाकर राज़ी और संतुष्ट रहे। उसे बदलकर अपने दीन को उसकी जगह क़ायम करने की कोई कोशिश न करे, बल्कि इसके विपरीत उसी फ़ासिक़ाना व बाग़ियाना निज़ामे ज़िन्दगी को अपने लिए साज़गार बनाने और उसमें अपने लिए आराम की जगह पैदा करने की फ़िक्र करता रहे। या अगर उसे बदलने की कोशिश भी करे तो उसका मक़सद यह न हो कि इस फ़ासिक़ाना निज़ामे ज़िन्दगी की जगह दीने हक़ क़ायम हो। बल्कि सिर्फ़ यह कोशिश करे कि एक फ़ासिक़ाना निज़ाम हटकर दूसरा फ़ासिक़ाना निज़ाम उसकी जगह क़ायम हो जाए।

हमारे नज़दीक यह तर्ज़ेअमल सरासर मुनाफ़िक़ाना है। इसलिए कि हमारा एक निज़ामे ज़िन्दगी पर ईमान रखना और दूसरे निज़ामे ज़िन्दगी पर राज़ी रहना बिलकुल एक-दूसरे के विपरीत हैं। सच्चे ईमान का अव्वलीन तक़ाज़ा यह है कि हम जिस तरीक़े ज़िन्दगी पर ईमान रखते हैं उसे ही हम अपना क़ानूने हयात (जीवन-विधान) देखना चाहें और हमारी रूह अपनी आख़िरी गहराइयों तक हर उस रुकावट के पेश आ जाने पर बेचैन हो जाए जो इस तरीक़े ज़िन्दगी के मुताबिक़ जीने में बाधक बन रही हो। ईमान तो ऐसी किसी छोटी रुकावट को भी बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं हो सकता, बजाए इसके कि उसका पूरा का पूरा दीन किसी दूसरे निज़ामे ज़िन्दगी के अधीन हो गया हो। इस दीन के कुछ अंशों पर अमल होता भी हो तो सिर्फ़ इस वजह से कि स्थापित जीवन-व्यवस्था ने उन्हें अहानिकारक समझकर रियायत के साथ बाक़ी रखा हो और इन रियायतों (Concessions) के सिवा सारी ज़िन्दगी के मामले दीन की बुनियादों से हटकर स्थापित जीवन-व्यवस्था की बुनियादों पर चल रहे हों, और फिर भी ईमान अपनी जगह न सिर्फ़ ख़ुश व मुत्मइन हो बल्कि जो कुछ भी सोचे उसी कुफ्र के ग़लबे (वर्चस्व) को सिद्धांत: स्वीकार करके सोचे।

इस क़िस्म का ईमान चाहे फ़िक़्ही एतिबार से मोतबर हो लेकिन दीनी लिहाज़ से तो इसमें और निफ़ाक़ में कोई फ़र्क़ नहीं है, और क़ुरआन की बहुत-सी आयतें इस बात की गवाही देती हैं कि यह हक़ीक़त में निफ़ाक़ ही है। हम चाहते हैं कि जो लोग भी अपने आपको रब की बंदगी के इस मतलब और मफ़हूम के मुताबिक़, जिसकी अभी मैंने तशरीह की है, एक ख़ुदा की बंदगी में देने का इक़रार करें, उनकी ज़िन्दगी इस निफ़ाक़ से पाक हो। हक़ की बंदगी के इस मफ़हूम का तक़ाज़ा यह है कि हम सच्चे दिल से यह चाहें कि जो जीवन-विधान, जो तरीक़े-ज़िन्दगी, संस्कृति, नैतिकता, सामाजिकता व राजनीति के जो उसूल, जो वैचारिक व व्यावहारिक व्यवस्था अल्लाह ने अपने नबियों के ज़रिए से हमें दी है, हमारी ज़िन्दगी का पूरा कारोबार उसी की पैरवी में चले और हम एक लम्हे के लिए भी अपनी ज़िन्दगी के किसी छोटे से छोटे विभाग में भी इस निज़ामे हक़ के ख़िलाफ़ किसी दूसरे निज़ाम के तसल्लुत (वर्चस्व) को बर्दाश्त करने के लिए तैयार न हों। अब आप ख़ुद समझ लें कि निज़ामे बातिल के तसल्लुत को बर्दाश्त करना भी जबकि ईमान के तक़ाज़े के ख़िलाफ़ हो तो उसपर राज़ी व मुत्मइन रहना और उसे क़ायम करने और उसे बाक़ी रखने की जिद्दोजुहद में हिस्सा लेना या एक निज़ामे बातिल की जगह दूसरे निज़ामे बातिल को लाने की

कोशिश करना ईमान के साथ कैसे मेल खा सकता है।

तनाक़ुज़ (अन्तर्विरोध) की हक़ीक़त

इस निफ़ाक़ के बाद दूसरी चीज़ जिसे हम हर पुराने और नए मुसलमान की ज़िन्दगी से बाहर निकालना चाहते हैं और जिसे निकाल बाहर करने की ईमान के हर दावेदार को दावत देते हैं, वह तनाक़ुज़ (अन्तर्विरोध) है। तनाक़ुज़ से हमारी मुराद यह है कि आदमी जिस चीज़ का ज़बान से दावा करे अमल से उसका विरोध करे। यह भी तनाक़ुज़ है कि आदमी का अपना अमल एक मामले में कुछ और हो और दूसरे मामले में कुछ और। अगर कोई शख़्स यह दावा करता है कि उसने अपनी पूरी ज़िन्दगी को ख़ुदा की बंदगी में दे दिया है तो उसे जान-बूझकर कोई हरकत भी ऐसी नहीं करनी चाहिए जो रब की बंदगी के विपरीत हो। और अगर इनसानी कमज़ोरी की वजह से ऐसी कोई हरकत उससे हो जाए तो उसे अपनी ग़लती का एतिराफ़ करके फिर अपने रब की तरफ़ पलटना चाहिए। ईमान के तक़ाज़ों में से यह भी एक अहम तक़ाज़ा है कि पूरी ज़िन्दगी सिब्ग़तुल्लाह (अल्लाह के रंग) में रंगी हुई हो। पचरंगी और चौरंगी ज़िन्दगी तो दरकिनार दोरंगी ज़िन्दगी भी ईमान के दावे के साथ मेल नहीं खाती। हमारे नज़दीक यह बात बहुरूपियेपन से कुछ कम नहीं है कि हम एक तरफ़ तो ख़ुदा, आख़िरत, वह्य, नुबूवत और शरीअत के मानने का दावा करें और दूसरी तरफ़ दुनिया की तलब में लपके हुए उन दर्सगाहों की तरफ़ ख़ुद दौड़ें, इनसान को उनका शौक़ दिलाएँ और ख़ुद अपने एहतिमाम में ऐसी दर्सगाहें चलाएँ जिनमें इनसान को ख़ुदा से दूर करनेवाली, आख़िरत को भुला देनेवाली, माद्दापरस्ती (भौतिकवादिता) में ग़र्क़ कर देनेवाली तालीम दी जाती हो। एक तरफ़ हम ख़ुदा की शरीअत पर ईमान रखने का दावा करें और दूसरी तरफ़ उन अदालतों के वकील और जज बनें और उन्हीं अदालतों के फ़ैसलों पर हक़ और ग़ैर-हक़ के फ़ैसले का दारोमदार रखें जो शरीअते इलाही को एवाने अदालत से बेदख़ल करके शरीअते ग़ैर-इलाही की बुनियाद पर क़ायम की गई हों।

एक तरफ़ हम मस्जिद में जा-जाकर नमाज़ें पढ़ें और दूसरी तरफ़ मस्जिद से बाहर निकलते ही अपने घर की ज़िन्दगी में, अपने लेन-देन में, अपनी रोज़ी-रोटी में, अपनी शादी-विवाह में, अपनी वरासत की तक़सीम में, अपनी सियासी तहरीकों में और अपने सारे दुनियावी मामलों में ख़ुदा और उसकी शरीअत को भूलकर कहीं अपने नफ़्स के क़ानून की, कहीं अपनी बिरादरी के रिवाज की, कहीं

अपनी सोसायटी के तौर-तरीक़ों की, और कहीं ख़ुदा से फिरे हुए शासकों के क़ानूनों की पैरवी (मार्गदर्शन) में काम करने लगें। एक तरफ़ हम अपने ख़ुदा को बार-बार यक़ीन दिलाएँ कि हम तेरे ही बंदे हैं और तेरी ही इबादत करते हैं, और दूसरी तरफ़ हर उस बुत की पूजा करें जिसके साथ हमारे मफ़ाद (हित), हमारी दिलचस्पियाँ और हमारी मुहब्बतें व आसाइशें (सुख-सुविधाएँ) कुछ भी वाबस्तगी (लगाव) रखती हों। ये और ऐसे बेशुमार तनाक़ुज़ात जो आज मुसलमानों की ज़िन्दगी में पाए जाते हैं, जिनके मौजूद होने से कोई ऐसा शख़्स जो आँखें रखता हो, इनकार नहीं कर सकता। हमारे नज़दीक वह असली घुन है जो मुस्लिम उम्मत की सीरत व अख़लाक़ को और उसके दीन व ईमान को अंदर ही अंदर खाए जाते हैं और आज ज़िन्दगी के हर पहलू में मुसलमानों से जिन कमज़ोरियों का इज़हार हो रहा है, उनकी अस्ल जड़ यही तनाक़ुज़ात यानी विरोधाभास हैं। एक मुद्दत तक मुसलमानों को यह इतमीनान दिलाया जाता रहा है कि तुम तौहीद व रिसालत की गवाही ज़बान से देने और रोज़ा व नमाज़ वग़ैरह कुछ मज़हबी आमाल कर लेने के बाद चाहे कितने ही ग़ैर-दीनी और ग़ैर-ईमानी तरीक़े अपनाओ बहरहाल न तुम्हारे इस्लाम पर कोई आँच आ सकती है और न तुम्हारी निजात को कोई ख़तरा पैदा हो सकता है। यहाँ तक कि इस ढील (Allowance) की हदें इस सीमा तक बढ़ीं कि नमाज़, रोज़ा भी मुसलमान होने के लिए शर्त न रहा और मुसलमानों में आम तौर पर यह सोच पैदा कर दी गई कि अगर एक तरफ़ ईमान व इस्लाम का इक़रार हो और दूसरी तरफ़ सारी ज़िन्दगी इसके विपरीत हो तब भी कुछ नहीं बिगड़ता। "हम दोज़ख़ में नहीं होंगे, सिवाए कुछ दिनों के" (क़ुरआन)।

इसी चीज़ का नतीजा हम आज यह देख रहे हैं कि इस्लाम के नाम के साथ हर फ़िस्क़ (बुराई), हर कुफ़्र, हर मासियत (कुकर्म) व नाफ़रमानी, ज़ुल्म व ज़्यादती का जोड़ आसानी से लग जाता है और मुसलमान मुश्किल ही से यह महसूस करते हैं कि जिन राहों में वे अपना समय, अपनी मेहनतें, अपने माल, अपनी क़ुव्वतें, क़ाबिलियतें और अपनी जानें खपा रहे हैं और जिन मक़सदों के पीछे उनकी इंफ़िरादी और इज्तिमाई कोशिशें सर्फ़ हो रही हैं वे अक्सर उनके उस ईमान के विपरीत हैं, जिसका वे दावा रखते हैं। यह सूरतेहाल जब तक जारी रहेगी, इस्लाम के दायरे में नव-मुस्लिमों का दाख़िला भी कोई मुफ़ीद नतीजा पैदा न कर सकेगा। क्योंकि जो बिखरे लोग इस नमक की खान में आते जाएँगे, वे उसी तरह नमक बनते जाएँगे। अत: हमारी दावत का एक लाज़िमी चीज़ यह है

कि हम ईमान के हर दावेदार की ज़िन्दगी को इन तनाक़ुज़ात (विरोधाभासों) से पाक देखना चाहते हैं। हमारा मुतालबा हर मोमिन से यह है कि वह हनीफ़ (यानी सबसे कटकर एक ख़ुदा का हो गया) हो, यकसू (एकाग्रचित्त) व यकरंग मोमिन व मुस्लिम हो। हर उस चीज़ से कट जाए और न कट सकता हो तो बराबर कटने की जिद्दोजुहद करता रहे जो ईमान के विपरीत और मुस्लिमाना तरीक़े ज़िन्दगी के विपरीत हो, और ख़ूब अच्छी तरह ईमान के तक़ाज़ों में से एक-एक तक़ाज़े को समझे और उसे पूरा करने की बराबर कोशिश करता रहे।

इमामत में तब्दीली की ज़रूरत

अब हमारी दावत के तीसरे नुक़ते (सूत्र) को लीजिए। अभी जिन दो नुक़तों की तशरीह मैं आपके सामने कर चुका हूँ, यह तीसरा नुक़ता इनसे बिलकुल एक तार्किक परिणाम के रूप में निकलता है। हमारा अपने आपको रब की बंदगी के हवाले कर देना और इस हवालगी और सुपुर्दगी में हमारा मुनाफ़िक़ न होना, बल्कि मुख़्लिस होना और फिर हमारा अपनी ज़िन्दगी के तनाक़ुज़ात से पाक करके मुस्लिमे हनीफ़ बनने की कोशिश करना, लाज़िमी तौर पर इस बात का तक़ाज़ा करता है कि हम इस निज़ामे ज़िन्दगी में इंक़िलाब चाहें जो आज कुफ़्र, दहरियत (नास्तिकता), शिर्क, फ़िस्क़ व फ़ुजूर और बदअख़लाक़ी की बुनियादों पर चल रहा है और जिसके नक़्शे और ख़ाके बनानेवाले विचारक और जिसका व्यावहारिक प्रबंध करनेवाले प्रबन्धक सब के सब ख़ुदा से फिरे हुए और उसकी सीमाओं का उल्लंघन करनेवाले लोग हैं। जब तक शासन की बागडोर इन लोगों के हाथों में रहेगी और जब तक ज्ञान-विज्ञान, कला, साहित्य, शिक्षा-दीक्षा, संचार-माध्यम, क़ानून बनाना और उसे लागू करना, अर्थ-तंत्र, उद्योग-व्यापार, देश का प्रशासन और अन्तर्राष्ट्रीय संबंध हर चीज़ की बागडोर ये लोग सँभाले रहेंगे—किसी शख़्स के लिए दुनिया में मुसलमान की हैसियत से ज़िन्दगी बसर करना और ख़ुदा की बंदगी को अपनी जीवन-प्रणाली (ज़ाब्त-ए-हयात) बनाकर रहना न सिर्फ़ यह कि अमली तौर पर नामुमकिन है, बल्कि यह भी नामुमकिन है कि हम अपनी आइन्दा आनेवाली नस्लों को इस हाल में छोड़ सकें कि वे सिर्फ़ ईमान और यक़ीन की हद तक ही इस्लाम की पैरवी करनेवाले हों। इसके अलावा सही मानों में जो शख़्स रब का बंदा हो उसपर दूसरी बहुत-सी ज़िम्मेदारियों के अलावा एक निहायत अहम ज़िम्मेदारी यह भी आती है कि वह ख़ुदा की ख़ुशी के मुताबिक़ दुनिया के इन्तिज़ाम को फ़साद (बिगाड़) से पाक करे और सुधार पर क़ायम करे। और यह ज़ाहिर बात है कि यह मक़सद उस वक़्त

तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक कि शासन की बागडोर नेक लोगों के हाथों में न हो। फ़ासिक़, फ़ाजिर, ख़ुदा के बाग़ी और शैतान के अनुयायी, दुनिया के नायक और प्रबंधक रहें और फिर दुनिया में ज़ुल्म, फ़साद, बदअख़लाक़ी और गुमराही का दौर-दौरा न हो; यह अक़्ल व फ़ितरत के ख़िलाफ़ है—और आज अनुभव व अवलोकन से दिन के सूरज की तरह साबित हो चुका है कि ऐसा नामुमकिन है। अतः हमारा मुस्लिम होना ख़ुद इस बात का तक़ाज़ा करता है कि हम दुनिया की गुमराहियों के पेशवाओं की पेशवाई ख़त्म कर देने और कुफ़्र व शिर्क के ग़लबे को मिटाकर दीने हक़ को उसकी जगह क़ायम करने की जिद्दोजुहद करें।

इमामत (नेतृत्व) में तब्दीली कैसे आती है?

मगर यह तब्दीली सिर्फ़ चाहने से नहीं आ सकती। अल्लाह की मशीयत बहरहाल दुनिया का इन्तिज़ाम चाहती है और दुनिया के इन्तिज़ाम के लिए कुछ सलाहियतें, क़ुव्वतें और सिफ़ात की ज़रूरत होती हैं, जिनके बग़ैर कोई गिरोह इस निज़ाम को हाथ में लेने और चलाने के क़ाबिल नहीं हो सकता। अगर नेक मोमिनों का एक मुनज़्ज़म जत्था ऐसा मौजूद न हो जो दुनिया का इन्तिज़ाम चलाने की क़ाबिलियत रखता हो तो फिर अल्लाह की मशीयत ग़ैर-मोमिन और बुरे लोगों को अपनी दुनिया का इन्तिज़ाम सौंप देती है। लेकिन अगर कोई गिरोह ऐसा मौजूद हो जाए जो ईमान भी रखता हो, नेक भी हो और उन सलाहियतों, क़ुव्वतों व सिफ़ात में भी कुफ़्फ़ार से बढ़ जाए जो दुनिया का इन्तिज़ाम चलाने के लिए ज़रूरी हैं तो मशीयते इलाही न ज़ालिम है और न फ़सादपसंद कि फिर भी अपनी दुनिया का इन्तिज़ाम फ़ासिक़ों, फ़ाजिरों और काफ़िरों ही के हाथ में रहने दे।

अतः हमारी दावत सिर्फ़ इसी हद तक नहीं है कि दुनिया का शासन फ़ासिक़ों और फ़ाजिरों के हाथों से निकलकर मोमिनों व नेक लोगों के हाथों में आए, बल्कि सकारात्मक रूप से (इजेगूनत्ल) हमारी दावत यह है कि नेक लोगों का एक ऐसा गिरोह संगठित किया जाए जो न सिर्फ़ अपने ईमान में पुख़्ता, न सिर्फ़ अपने इस्लाम में सच्चा व यकरंग और न सिर्फ़ अपने अख़लाक़ में नेक व पाकीज़ा हो, बल्कि इसके साथ उसके अन्दर वे सिफ़ात और क़ाबिलियतें भी मौजूद हों जो दुनिया की व्यवस्था को बेहतरीन तरीक़े पर चलाने के लिए ज़रूरी हैं। और इस गिरोह में सिर्फ़ ये ख़ूबियाँ मौजूद ही नहीं, बल्कि व्यवस्था

चलानेवाले मौजूद लोगों और कारकुनों से उन ख़ूबियों और क़ाबिलियतों में अपने आपको ऊँचा साबित कर दे।

विरोध और उसके कारण

यह है हमारी दावत का ख़ुलासा ! अब आप ताज्जुब करेंगे अगर मैं आपको बताऊँ कि इस दावत का विरोध और प्रतिरोध सबसे पहले जिस गिरोह की तरफ़ से हुआ है, वह मुसलमानों का गिरोह है। इस वक़्त तक ग़ैर-मुस्लिमों की तरफ़ से हमारे ख़िलाफ़ न कोई आवाज़ उठी है, न अमली तौर पर कोई विरोध हुआ है। यह हम नहीं कह सकते कि आइंदा भी यही सूरतेहाल रहेगी, न यह अंदाज़ा कर सकते हैं कि कब तक यह सूरतेहाल रहेगी। मगर बहरहाल यह हक़ीक़त अपनी जगह निहायत दर्दनाक और अफ़सोसनाक है कि इस दावत को सुनकर नाक-भौं चढ़ानेवाले, इसे अपने लिए ख़तरा समझनेवाले और इसके प्रतिरोध (मुख़ालिफ़त) में सबसे आगे रहनेवाले ग़ैर-मुस्लिम नहीं, बल्कि मुसलमान हैं। शायद ऐसी ही कुछ सूरतेहाल होगी जिसमें अहले किताब से फ़रमाया गया है—

"सबसे पहले इनकार करनेवाले न बनो।" (क़ुरआन)।

हमें हिन्दुओं, सिखों और अंग्रेज़ों तक से बातचीत का मौक़ा मिला है, मगर बहुत कम ऐसा इत्तिफ़ाक़ हुआ है कि उन लोगों में से किसी ने हमारे लिट्रेचर को पढ़कर, हमारे मक़सद को तफ़सील के साथ हमारी ज़बान से सुनकर यह कहा हो कि यह 'हक़' नहीं है, या यह कि अगर तुम इस चीज़ को क़ायम करने की कोशिश करोगे तो हम ऐड़ी से चोटी तक का ज़ोर तुम्हारे विरोध में लगा देंगे। बहुत-से ग़ैर-मुस्लिम हमें ऐसे भी मिले हैं जिन्होंने बेइख़्तियार होकर कहा कि काश ! यही इस्लाम हिन्दुस्तान में पेश किया गया होता और इसी को क़ायम करने के लिए बाहर से आनेवाले और अन्दर से क़बूल करनेवाले मुसलमानों ने कोशिश की होती तो आज हिन्दुस्तान का यह हाल न होता और इस देश का इतिहास कुछ और ही होता।

कुछ ग़ैर-मुस्लिमों ने हमसे यहाँ तक कहा कि अगर वास्तव में ऐसी एक सोसायटी मौजूद हो जो पूरी ईमानदारी के साथ इन्हीं उसूलों पर चले और जिसका जीना-मरना इसी एक मक़सद के लिए हो तो हमें उसके अंदर शामिल होने में कोई झिझक न होगी।

लेकिन इसके विपरीत हमारे विरोध में सरगर्म और हमारे बारे में बदगुमानियाँ फैलाने और हमपर हर तरह के इलज़ाम लगानेवाले, अगर किसी

गिरोह में सबसे पहले उठे तो वह मुसलमानों का गिरोह है। और इनमें भी सबसे ज़्यादा यह शर्फ़ मज़हबी तबक़े के हज़रात को हासिल हुआ। फिर मज़े की बात यह है कि आज तक किसी को यह कहने की जुर्रत नहीं हुई कि जिस चीज़ की दावत तुम लोग देते हो वह बातिल है। शायद इस दावत पर सामने से हमला (Frontal Attack) मुमकिन ही नहीं है। इसलिए मजबूरन कभी पीछे से, कभी दाएँ से और कभी बाएँ से छापे मारने की कोशिश की जाती है। कभी कहा जाता है कि बात तो हक़ है, मगर उसकी तरफ़ दावत देनेवाला ऐसा और ऐसा है। कभी कहा जाता है कि इसके हक़ होने में तो शुबह नहीं, मगर इस ज़माने में यह चलनेवाली चीज़ नहीं है। कभी कहा जाता है कि हक़ तो यही है, मगर इसका अलम (झंडा) बुलंद करने के लिए सहाबा किराम (रज़ि०) जैसे लोग होने चाहिएँ, और वे भला अब कहाँ आ सकते हैं। कभी कहा जाता है कि इसके सही और हक़ होने में कोई शुबह नहीं, मगर मुसलमान अपनी मौजूदा सियासी (राजनैतिक) और मआशी (आर्थिक) पोज़ीशन में इस दावत को अपनी वाहिद (एकमात्र) दावत कैसे बना सकते हैं? ऐसा करें तो उनकी दुनिया तबाह हो जाए और तमाम सियासी और मआशी ज़िन्दगी पर ग़ैर-मुस्लिम क़ाबिज़ होकर उनके लिए सांस लेने तक की जगह न छोड़ें।

फिर जब इस मुसलमान क़ौम में से कोई अल्लाह का बंदा ऐसा निकल आता है जो हमारी इस दावत को क़बूल करके अपनी ज़िन्दगी को वाक़ई निफ़ाक़ (कपट) व तनाक़ुज़ (विरोधाभास) से पाक करने की कोशिश करता है और अपनी पूरी ज़िन्दगी को रब की बंदगी में दे डालने का पक्का इरादा कर लेता है तो सबसे पहले उसकी मुख़ालिफ़त करने के लिए उसके अपने भाई-बंद, माँ-बाप, संबंधी, रिश्तेदार, बिरादरी के लोग और दोस्त खड़े हो जाते हैं। अच्छे-अच्छे मुत्तक़ी और दीनदार आदमी भी जिनकी पेशानियों पर नमाज़ें पढ़ते-पढ़ते गट्टे पड़ चुके हैं और जिनकी ज़बानें दीन की बातों से हर वक़्त तर रहती हैं, इस बात को गवारा करने के लिए तैयार नहीं होते कि उनका बेटा या भाई या कोई रिश्तेदार जिसका दुनियावी फ़ायदा उन्हें किसी दर्जे में भी महबूब हो, अपने आपको इस ख़तरे में डाले।

यह बात कि इस दावत (आह्वान) का विरोध सबसे पहले मुसलमानों ने किया और उनके भी अहले दुनिया ने नहीं, बल्कि अहले दीन ने किया, एक बहुत बड़ी बीमारी का पता देती है, जो मुद्दतों से पल-बढ़ रही थी, मगर ज़ाहिर फ़रेब पर्दों के पीछे छिपी हुई थी। आज अगर हम सिर्फ़ इल्मी रंग में इस दावत को

पेश करते और यह न कहते कि आओ इस चीज़ को अमल में लाने और अमली तौर पर क़ायम करने की कोशिश करें तो आप देखते कि विरोध और मुख़ालिफ़त के बजाए इन मज़ेदार इल्मी बातों पर हर तरफ़ से तारीफ़ ही की सदाएँ बुलंद होतीं। भला कोई मुसलमान ऐसा भी हो सकता है जो यह कह सके कि बंदगी ख़ुदा के सिवा किसी और की होनी चाहिए, या यह कि मुसलमानों को निफ़ाक़ की हालत में और ईमान के ख़िलाफ़ आमाल में मुब्तिला रहना चाहिए। या यह कि शासन मुसलमानों के हाथ में नहीं, बल्कि कुफ़्फ़ार ही के हाथ में रहना चाहिए। या यह कि इलाही शरीअत को नहीं कुफ़्र के क़ानूनों को दुनिया में लागू रहना चाहिए। मैं पूरे यक़ीन के साथ कह सकता हूँ कि अब तक जिन चीज़ों की हमने दावत दी है उनमें से कोई एक चीज़ भी ऐसी नहीं है जिसे हम अमल की दावत के बग़ैर सिर्फ़ इल्मी हैसियत से पेश करते तो मुसलमानों में से कोई गिरोह बल्कि कोई फ़र्द इसके ख़िलाफ़ ज़बान खोलने पर आमादा होता।

लेकिन जिस चीज़ ने लोगों को मुख़ालिफ़त पर आमादा किया वह सिर्फ़ यह है कि हम इन बातों को महज़ इल्मी रंग में ही पेश नहीं करते, बल्कि हमारा मुतालबा यह है कि आओ जिस चीज़ को हक़ के मुताबिक़ जानते हो, उसे अमली तौर पर पहले अपनी ज़िन्दगी में और फिर अपने आस-पास की दुनिया की ज़िन्दगी में क़ायम व जारी करने की कोशिश करो। यह ठीक वही सूरतेहाल है जो इससे पहले नबी करीम (सल्ल०) के आने के वक़्त पेश आ चुकी है।

जो लोग अरब जाहिलियत के लिट्रेचर पर निगाह रखते हैं उनसे यह बात छिपी नहीं है कि नबी करीम (सल्ल०) ने जिस तौहीद की दावत दी थी और जिन नैतिक-नियमों को आप पेश फ़रमाते थे, वे अरब में बिलकुल कोई नई चीज़ नहीं थी। इसी क़िस्म के तौहीदवाले ख़यालात अज्ञानताकाल के बहुत-से शायर और ख़तीब (वक्ता) पेश कर चुके थे, और इसी तरह इस्लामी अख़लाक़ियात में से भी अधिकतर वे थे जिन्हें अहले अरब के बुद्धिजीवी, वक्ता और शायर बयान करते रहते थे। मगर फ़र्क़ जो कुछ था वह यह कि नबी करीम (सल्ल०) ने एक तरफ़ तो बातिल (असत्य) की मिलावटों से पाक करके ख़ालिस हक़ को एक मुकम्मल व मुरत्तब निज़ामे ज़िन्दगी की शक्ल में लोगों के सामने पेश किया और दूसरी तरफ़ आपने यह भी चाहा कि जिस तौहीद को हम हक़ कहते हैं उसके मुख़ालिफ़ चीज़ों (तत्वों) को हम अपनी ज़िन्दगी से ख़ारिज कर दें और सारे निज़ामे ज़िन्दगी को उसी तौहीद की बुनियाद पर तामीर करें। साथ ही जिन उसूल व अख़लाक़ को हम मेयार (मापदंड) तस्लीम करते हैं, हमारी पूरी ज़िन्दगी का निज़ाम भी इन्हीं

उसूलों पर अमलन क़ायम हो। यही सबब था कि जिन बातों के कहने पर अज्ञानकाल के किसी वक्ता, किसी शायर और किसी हकीम (बुद्धिजीवी) का विरोध नहीं किया गया बल्कि उल्टा उन्हें सराहा गया, उन्हीं बातों को जब नबी (सल्ल०) ने पेश किया तो हर तरफ़ से विरोधों का तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। क्योंकि लोग इस बात के लिए तैयार नहीं थे कि शिर्क (बहुदेववाद) पर जो निज़ामे ज़िन्दगी क़ायम था, उसे बिलकुल उधेड़कर नये सिरे से तौहीद की बुनियादों पर क़ायम किया जाए और इस तरह उन तमाम तास्सुबात (विद्वेष), बाप-दादा की रस्मों, ख़ुसूसियतों, अधिकारों, पदों, मान-सम्मान, प्रतिष्ठा और आर्थिक हितों का एक झटके में ख़ात्मा हो जाए जो सदियों से अज्ञानकाल में ज़िन्दगी की बुनियाद बने हुए थे और जिनमें कुछ वर्गों और ख़ानदानों के हित निहित थे। इसी तरह लोग इस बात के लिए भी तैयार नहीं थे कि बुरे अख़लाक़ के रिवाज से जो सुख-सुविधाएँ मज़े और फ़ायदे और आज़ादियाँ उन्हें हासिल हैं उनसे हाथ धो डालें और अच्छे अख़लाक़ की बंदिशों में अपने आपको ख़ुद कसवा लें।

यह मामला सिर्फ़ नबी (सल्ल०) ही के साथ पेश नहीं आया, बल्कि नबी (सल्ल०) से पहले जितने नबी गुज़रे हैं उनकी मुख़ालिफ़त भी ज़्यादातर इसी बात पर हुई है। अगर अंबिया (अलैहि०) सिर्फ़ इल्मी और अदबी हैसियत से तौहीद, आख़िरत और नेक अख़लाक़ का ज़िक्र करते तो उनके ज़माने के समाज उसी तरह उन्हें बर्दाश्त करते बल्कि सिर आँखों पर बिठाते, जिस तरह उन्होंने विभिन्न शायरों, दार्शनिकों और साहित्यकारों को सिर आँखों पर बिठाया। लेकिन हर नबी का मुतालबा इन बातों के साथ यह भी था कि—

> "अल्लाह से डरो और मेरी इताअत करो।"—और "हद से गुज़रनेवालों की इताअत न करो।"
>
> और
>
> "'जो हिदायत तुम्हारी तरफ़ तुम्हारे रब की तरफ़ से नाज़िल हुई है, उसकी पैरवी करो और अपने रब के सिवा दूसरे सरपरस्तों की पैरवी न करो।"

और फिर नबियों ने इसपर भी बस नहीं किया बल्कि एक मुस्तक़िल तहरीक इसी मक़सद को पूरा करने के लिए जारी की और अपने अनुयायियों के जत्थे मुनज़्ज़म करके अमली तौर पर सभ्यता, संस्कृति और आचरण को अपने मूल उद्देश्य (नस्बुलऐन) के मुताबिक़ बदल डालने की जिद्दोजुहद शुरू कर दी। बस

यही वह बिंदु था जहाँ से उन लोगों द्वारा विरोध का आरंभ हुआ, जिनके हित अज्ञानतावादी व्यवस्था से पूर्ण या आंशिक रूप से जुड़े हुए थे। और आज हम देख रहे हैं कि ठीक यही बिंदु है जहाँ से हमारा विरोध शुरू हुआ है। मुसलमानों ने एक लंबी मुद्दत से अपनी पूरी ज़िन्दगी की इमारत उन बहुत-से समझौतों (Compromise) पर क़ायम कर रखी है जो अज्ञानतावादी व्यवस्था और उनके बीच तय हो चुके हैं। ये समझौते सिर्फ़ दुनियादाराना ही नहीं हैं, बल्कि उन्होंने अच्छी-ख़ासी मज़हबी हैसियत भी अपना ली है। बड़े-बड़े मुक़द्दस लोग, जिनके तक़द्दुस (पवित्रता) की क़समें खाई जाती हैं, समझौते में फंसे हुए हैं। बातिल निज़ाम से जुड़ाव के साथ तक़वा और इबादत की कुछ ज़ाहिरी शक्लें इतनी काफ़ी समझ ली गई हैं कि बड़ी तादाद में लोग इन्हीं महदूद (सीमित) परहेज़गारियों और इबादतगुज़ारियों पर अपनी निजात की तरफ़ से मुतमइन बैठे हुए हैं। बहुत-से प्रतिष्ठित धार्मिक लोग ऐसे मौजूद हैं जिनकी बुज़ुर्गी और रूहानियत और जिनके ऊँचे मर्तबे, जाहिलियत के निज़ाम के साथ समझौता कर लेने के बावजूद क़ायम हैं। ज़बान से कुफ़्र, जाहिलियत, फ़िस्क़ व फ़ुजूर, बदएतिक़ादियों और ज़लालतों की मज़म्मत कर लेना और सहाबा किराम (रज़ि०) के नक़्शे ज़बान की महारत के साथ अपने वाज़ों (भाषणों) और तहरीरों में खींच देना इस्लाम का हक़ अदा कर देने के लिए काफ़ी हो चुका है और इसके बाद इन हज़रात के लिए बिलकुल हलाल है कि ख़ुद अपने आपको और अपनी औलाद को, अपने संबंधियों और पैरवों को उसी बातिल निज़ाम की ख़िदमत में लगा दें जिसके लाए हुए ज़लालत और गुमराही के सैलाब और फ़िस्क़ व फ़ुज़ूर के तूफ़ान की ये रात-दिन निंदा करते रहते हैं।

इन हालात में जब हम दीने हक़ और उसके मुतालबों व तक़ाज़ों को सिर्फ़ इल्मी हैसियत ही में पेश करने पर बस नहीं करते, बल्कि यह दावत भी देते हैं कि ग़लत निज़ाम के साथ वे तमाम समझौते ख़त्म कर दो जो तुमने कर रखे हैं और पूरी यकसूई व यकरंगी के साथ हक़ की पैरवी इख़्तियार करो और फिर इस बातिल की जगह उस हक़ को क़ायम करने के लिए जान व माल और वक़्त व मेहनत की कुरबानी दो जिसपर तुम ईमान लाए हो... तो ज़ाहिर है कि यह क़ुसूर ऐसा नहीं है जिसे माफ़ किया जा सके। अगर सीधी तरह यह तस्लीम कर लिया जाए कि वाक़ई दीन के मुतालबे और तक़ाज़े यही हैं और हक़ीक़त में हनीफ़ियत (दीन के लिए यकसूई और ख़ुलूस) इसी को कहते हैं, और अस्ल बात यही है कि निज़ामे बातिल के साथ मोमिन का ताल्लुक़ मुसालिहत (समझौता) का नहीं बल्कि

नज़ाअ (प्रतिरोध) और कशमकश का होना चाहिए तो फिर दो सूरतों में से एक सूरत को अपनाना लाज़िमी हो जाता है—या तो अपने मफ़ादात (हितों) की क़ुरबानी गवारा करके इस जिद्दोजुहद में हिस्सा लिया जाए. . . और ज़ाहिर है कि यह बहुत कठिन बात है या फिर तस्लीम कर लिया जाए कि हक़ तो यही है मगर हम अपनी कमज़ोरी की वजह से इसका साथ नहीं दे सकते। लेकिन यह एतिराफ़ भी मुश्किल है, क्योंकि ऐसा करने से सिर्फ़ यही नहीं कि निजात की वह गारंटी ख़तरे में पड़ जाती है जिसके इतमीनान पर अब तक ज़िन्दगी बसर की जा रही थी; बल्कि इस तरह वह मक़ामे तक़द्दुस भी ख़तरे में पड़ जाता है जो मज़हबी और रूहानी हैसियत से इन हज़रात को हासिल रहा है। और यह चीज़ भी बहरहाल ठंडे पेटों गवारा नहीं की जा सकती। इसलिए एक बड़े गिरोह ने मजबूरन यह तीसरी राह अपनाई है कि साफ़-साफ़ हमारी इस दावत को बातिल न कहा जाए, क्योंकि बातिल कहने के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। लेकिन साफ़-साफ़ इसके हक़ होने का भी एतराफ़ न किया जाए। और अगर कहीं इसकी सच्चाई को तस्लीम करना ही पड़े तो फिर उसूल को छोड़कर किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को बदगुमानियों और इलज़ामात का निशाना बनाया जाए, ताकि ख़ुद अपने ही माने हुएं हक़ का साथ न देने के लिए बहाना पैदा हो जाए।

काश ! ये हज़रात कभी इस बात पर ग़ौर फ़रमाते कि जो हुज्जतें और दलीलें आज बंदों का मुँह बंद करने के लिए वे पेश करते हैं, कल क़ियामत के दिन क्या वे ख़ुदा का मुँह भी बंद कर देंगी ?

हमारा तरीक़ेकार (कार्य-पद्धति)

अब मैं आपके सामने संक्षेप में उस तरीक़ेकार को पेश करूँगा जो हमने अपनी इस दावत के लिए अपनाया है। हमारी दावत की तरह हमारा यह तरीक़ेकार भी दरअस्ल क़ुरआन और नबियों के तरीक़े से लिया हुआ है। जो लोग हमारी दावत को क़बूल करते हैं उनसे हमारा सबसे पहला मुतालिबा यही होता है कि अपने आपको अमली तौर पर और पूरी तरह रब की बंदगी में दे दो और अपने अमल से अपने इख़लास और अपनी यकसूई का सुबूत दो और उन तमाम चीज़ों से अपनी ज़िन्दगी को पाक करने की कोशिश करो जो तुम्हारे ईमान की ज़िद (विपरीत) हैं। यहीं से उनके अख़लाक़ व सीरत की तामीर और उनकी आज़माइश का सिलसिला शुरू हो जाता है। जिन लोगों ने बड़ी-बड़ी उमंगों (Ambitions) के साथ उच्च शिक्षा प्राप्त की थी उन्हें अपने ऊँचे-ऊँचे सपनों की

इमारतें अपने हाथ से ढा देनी पड़ती हैं और उस ज़िन्दगी में क़दम रखना पड़ता है जिसमें उच्च पदों और आर्थिक ख़ुशहालियों की संभावनाएँ उन्हें अपनी ज़िन्दगी में तो दरकिनार अपनी दूसरी और तीसर नस्ल में भी दूर-दूर तक नज़र नहीं आतीं। जिन लोगों की आर्थिक ख़ुशहाली किसी गिरवी रखी हुई सम्पत्ति, हड़प की हुई किसी जायदाद या किसी ऐसी मीरास पर क़ायम थी जिसमें हक़दारों के हक़ मारे गए थे, उन्हें कभी-कभी दामन झाड़कर इस ख़ुशहाली को त्याग देना पड़ा है। सिर्फ़ इसलिए कि जिस ख़ुदा को उन्होंने अपना आक़ा तस्लीम किया है, उसकी मंशा के ख़िलाफ़ किसी का माल खाना उनके ईमान के मनाफ़ी (विरुद्ध) है।

जिन लोगों के जीविका के साधन ग़ैर-शरई थे या बातिल निज़ाम से जुड़े हुए थे उन्हें तरक़्क़ियों के ख़्वाब देखना तो दरकिनार, मौजूदा साधनों से हासिल की हुई रोटी का भी एक टुकड़ा हलक़ से उतारना नागवार लगने लगा—और वे इन जीविका के साधनों की जगह पाक जीविका के साधनों को अपनाने के लिए कोशिश करने लगे, चाहे वे अत्यंत तुच्छ ही क्यों न हों। फिर जैसा कि अभी मैं आपके सामने बयान कर चुका हूँ, इस रास्ते को अमली तौर पर अपनाते ही आदमी का क़रीबतरीन माहौल उसका दुश्मन हो जाता है। उसके अपने माँ-बाप, भाई-बंद, बीवी-बच्चे और उसके जिगरी दोस्त सबसे पहले उसके ईमान से शक्ति-परीक्षण (क़ुव्वत आज़माई) करते हैं, और कभी-कभी इस रास्ते का पहला असर ज़ाहिर होते ही आदमी का अपना गहवारा जिसमें वह लाड़-प्यार से पाला गया था, उसके लिए यातनागृह बनकर रह जाता है।

यह है वह इब्तिदाई तरबियतगाह जो नेक, मुख़्लिस और क़ाबिले एतिमाद सीरत के कारकुन तैयार करने के लिए क़ुदरते इलाही ने हमारे लिए ख़ुद-बख़ुद पैदा कर दी है। इन शुरुआती आज़माइशों में जो लोग नाकाम हो जाते हैं, वे आपसे आप छटकर अलग हो जाते हैं और हमें उन्हें छाँट फेंकने की परेशानी उठानी नहीं पड़ती। और जो लोग इनमें पूरे उतरते हैं, वे साबित कर देते हैं कि उनके अन्दर कम से कम इतना इख़लास, इतनी यकसूई, इतवा सब्र व अज़्म, इतनी मुहब्बते हक़ और इतनी सीरत की मज़बूती ज़रूर मौजूद है जो ख़ुदा की राह में क़दम रखने और इम्तिहान के पहले मरहले से कामयाब गुज़र जाने के लिए ज़रूरी है। इस मरहले के कामयाब लोगों को हम अपेक्षाकृत ज़्यादा भरोसे और इतमीनान के साथ लेकर दूसरे मरहले की तरफ़ पेशक़दमी कर सकते हैं जो आगे आनेवाले हैं और जिसमें इससे ज़्यादा आज़माइशें पेश आनेवाली हैं। ये

आज़माइशें फिर एक दूसरी भट्टी तैयार करेंगी जो इसी तरह खोटे सिक्कों को छाँटकर फेंक देगी और ख़ालिस धातु को अपनी गोद में रख लेगी। जहाँ तक हमारा इल्म साथ देता है, हम यक़ीन के साथ कह सकते हैं कि इनसानी ख़दानों से काम के तत्वों को छाँटने और उन्हें ज़्यादा कारआमद बनाने के लिए यही तरीक़ा पहले भी अपनाया जाता रहा है और ज़ो तक़वा इन भट्टियों में तैयार होता है, चाहे वह फ़िक़्ही नाप-तौल में पूरा न उतरे और ख़ानक़ाही मापदंडों पर भी नाक़िस निकले, मगर सिर्फ़ इसी तर्ज़ पर तैयार किए हुए तक़वे में यह ताक़त हो सकती है कि दुनिया के प्रबंध की भारी ज़िम्मेदारियों का बोझ सँभाल सके, और उन अज़ीमुश्शान अमानतों का भार उठा सके जिनके एक छोटे से छोटे अंश का वज़न भी ख़ानक़ाही तक़वे की बर्दाश्त से बाहर है।

इसके साथ दूसरी चीज़ जो हम अपने अरकान पर लाज़िम कर लेते हैं यह है कि जिस हक़ की रौशनी उन्होंने पाई है, उससे वे अपने क़रीबी माहौल को और उन सब लोगों को जिनसे उनकी रिश्तेदारी, दोस्ती, पड़ोस या लेनदेन का ताल्लुक़ है; परिचित कराने की कोशिश करें और उन्हें इसकी तरफ़ आने की दावत दें। यहाँ फिर आज़माइशों का एक सिलसिला शुरू होता है। सबसे पहले तो इस तबलीग़ (प्रचार) की वजह से मुबल्लिग़ (प्रचारक) की अपनी ज़िन्दगी दुरुस्त होती है। क्योंकि यह काम शुरू करते ही बेशुमार सूक्ष्मदर्शी उपकरण और सर्च लाइटें उसकी ओर लग जानी हैं और मुबल्लिग़ की ज़िन्दगी में अगर कोई छोटी से छोटी चीज़ भी उसके ईमान और उसकी दावत के मनाफ़ी मौजूद हो तो ये मुफ़्त के निरीक्षक उसे नुमायाँ करके मुबल्लिग़ के सामने रख देते हैं और कोड़े लगा-लगाकर उसे मजबूर करते हैं कि अपनी ज़िन्दगी को इससे पाक करे। अगर मुबल्लिग़ वास्तव में इस दावत पर सच्चे दिल से ईमान लाया हो तो वह इन तंक़ीदों पर झुंझलाने और बहानों से अपने अमल की ग़लती छुपाने की कोशिश नहीं करेगा, बल्कि उन लोगों की सेवाओं से लाभ उठाएगा जो विरोध की नीयत ही से सही मगर बहरहाल उसके सुधार में बग़ैर किसी मुआवज़े के कोशिश व मेहनत करते रहते हैं। ज़ाहिर है कि जिस बर्तन को बीसियों हाथ माँझने में लग जाएँ और माँजते ही चले जाएँ, वह चाहे कितना ही गंदा हो आख़िरकार साफ़ और चमकदार होकर रहेगा।

फिर इस तबलीग़ से हमारे कारकुनों में बहुत-सी वे ख़ूबियाँ परवान चढ़ती हैं जिन्हें आगे चलकर दूसरे मैदानों में किसी अन्य रूप में हमें इस्तेमाल करना है। जब मुबल्लिग़ को दिल तोड़नेवाले तरह-तरह के हालात से गुज़रना पड़ता है,

कहीं उसकी हँसी उड़ाई जाती है, कहीं उसपर ताने और आवाज़ें कसी जाती हैं, कहीं गालियों और दूसरी जहालतों से उसका सत्कार किया जाता है, कहीं उसपर आरोपों की बौछार की जाती है, कहीं उसे फ़ितनों में उलझाने की नित नई तदबीरें की जाती हैं, कहीं उसे घर से निकाल दिया जाता है, मीरास से महरूम कर दिया जाता है, दोस्तियाँ और रिश्तेदारियाँ उससे तोड़ ली जाती हैं और उसके लिए अपने माहौल में सांस लेना तक मुश्किल हो जाता है, तो इन हालात में जो कारकुन न हिम्मत हारे, न हक़ से फिरे, न बातिलपरस्तों के आगे झुके, न उत्तेजित होकर अपने दिमाग़ का संतुलन खोए; बल्कि इसके विपरीत हिकमत, सूझबूझ, साबितक़दमी, सच्चाई, परहेज़गारी और एक सच्चे हक़परस्त की-सी हमदर्दी व ख़ैरख़्वाही के साथ अपने रास्ते पर क़ायम और अपने माहौल के सुधार में बराबर कोशिश करता रहे तो उसके अंदर उन उच्च गुणों का पैदा होना और विकसित होना यक़ीनी है जो आगे चलकर हमारी इस जिद्दोजुहद के दूसरे मरहलों में इससे बहुत ज़्यादा बड़े पैमाने पर दरकार होंगे।

इस तबलीग़ के सिलसिले में हमने वही तरीक़ेकार अपने कारकुनों को सिखाने की कोशिश की है जो क़ुरआन मजीद में बताया गया है यानी यह कि हिकमत और अच्छी नसीहत के साथ ख़ुदा के रास्ते की तरफ़ दावत दें। क्रम और फ़ितरी तरतीब को सामने रखते हुए लोगों के सामने दीन के अव्वलीन बुनियादी उसूलों को और फिर धीरे-धीरे उनके तक़ाज़ों और लवाज़िम को पेश करें। किसी को उसकी पाचन-शक्ति से ज़्यादा ख़ुराक़ देने की कोशिश न करें। अमौलिक बातों को मूल-सिद्धांतों पर और अंशों को कुल पर वरीयता न दें। बुनियादी ख़राबियों को दूर किए बग़ैर ज़ाहिरी बुराइयों और बाहर की शाखाओं को छाँटने और काटने में अपना वक़्त बरबाद न करें। ग़फ़लत और एतक़ादी व अमली गुमराहियों में फँसे हुए लोगों के साथ नफ़रत और नापसंदीदगी का बर्ताव करने के बजाए एक डाक्टर की-सी हमदर्दी व ख़ैरख़्वाही के साथ उनके इलाज की फ़िक्र करें। गालियों और पत्थरों के जवाब में दुआ-ए-ख़ैर करना सीखें। ज़ुल्म व तकलीफ़ों पर सब्र करें। जाहिलों से बहसों, मुनाज़रों, बेकार की बहसों में न उलझें। गंदी और बेहूदा बातों से बड़ा हौसला रखनेवाले और शरीफ़ लोगों की तरह दरगुज़र करें। जो लोग हक़ के प्रति उदासीन बने हुए हैं उनके पीछे पड़ने के बजाए उन लोगों की तरफ़ तवज्जोह करें जिनके अंदर कुछ हक़ की तलब पाई जाती है, चाहे वे दीनी एतिबार से कितने ही नाक़ाबिले तवज्जोह समझे जाते हों।

अपनी इन तमाम जिद्दोजुहद में दिखावे व नुमाइश से बचें। अपने कारनामों को गिनाने और फ़ख़्र के साथ उनको बयान करने और लोगों का ध्यान अपनी तरफ़ खींचने की ज़र्रा बराबर भी कोशिश न करें, बल्कि जो कुछ करें इस नीयत, यक़ीन और इतमिनान के साथ करें कि उनका सारा अमल ख़ुदा के लिए है और ख़ुदा बहरहाल उनकी ख़िदमात से भी वाक़िफ़ है और इन ख़िदमात की क़द्र भी उसके यहाँ होनी है, चाहे दुनिया उससे वाक़िफ़ हो या न हो और दुनिया की तरफ़ से सज़ा मिले या जज़ा। यह तरीक़ेकार ग़ैर-मामूली सब्र, विनम्रता और लगातार मेहनत चाहता है। इसमें एक लंबी मुद्दत तक लगातार काम करते रहने के बाद भी शानदार नतीजों की वह हरी-भरी फ़सल लहलहाती नज़र नहीं आती जो सतही और नुमाइशी काम शुरू करते ही दूसरे दिन से तमाशाइयों और मदारियों का दिल लुभाना शुरू कर देती है। इसमें एक तरफ़ ख़ुद कारकुन के अन्दर वह गहरी बसीरत (दूरदर्शिता, सूझबूझ), संजीदगी, पुख़्ताकारी और वह मामलाफ़हमी पैदा होती है, जो इस तहरीक के ज़्यादा सब्रआज़मा और ज़्यादा मेहनत व हिकमत चाहनेवाले मरहलों में दरकार होनेवाली है। और दूसरी तरफ़ इससे तहरीक अगरचे धीमी रफ़्तार से चलती है, मगर उसका एक-एक क़दम मुस्तहकम (मज़बूत) होता चला जाता है। सिर्फ़ तबलीग़ के ऐसे तरीक़े से सोसायटी का मक्खन निकालकर तहरीक में जज़्ब किया जा सकता है। ओछे और सतही लोगों की भीड़ जमा करने के बजाए तबलीग़ के इस तरीक़े से सोसायटी के सबसे नेक अनासिर (तत्व) तहरीक की तरफ़ खिंचते हैं और गंभीर (Serious) कारकुन तहरीक को हासिल होते हैं, जिनमें से एक-एक आदमी की शिर्कत हज़ार बेकार लोगों की भीड़ से ज़्यादा क़ीमती होती है।

हमारे तरीक़ेकार का एक बड़ा और अहम हिस्सा यह है कि हमने अपने आपको निज़ामे बातिल की क़ानूनी और अदालती हिफ़ाज़त से ख़ुद-बख़ुद महरूम (वंचित) कर लिया है[1] और एलानिया दुनिया को बता दिया है कि हम अपने मानवाधिकार, जान-माल, इज़्ज़त-आबरू किसी चीज़ की इस्मत (अस्मिता) भी क़ायम रखने के लिए उस निज़ाम की मदद हासिल करना नहीं चाहते, जिसे हम बातिल समझते हैं। लेकिन इस चीज़ को हमने तमाम अरकान पर लाज़िम नहीं किया है, बल्कि उनके सामने एक बुलंद मेयार (मापदंड) रख देने के बाद उन्हें इख़्तियार दे दिया है कि चाहें तो इस मेयार की इन्तिहाई बुलंदियों तक

---

1. वाज़ेह रहे कि यह पॉलिसी अविभाजित भारत में थी, जबकि एक धर्म-विहीन सरकार क़ायम थी।

पहुँच जाएँ वरना हालात की मजबूरियों से हार मानकर जितनी पस्ती में गिरना चाहें गिरते चले जाएँ। अलबत्ता पस्ती की एक हद हमने मुक़र्रर कर दी है कि उससे गिर जानेवाले को हम अपनी जमाअत में नहीं रखेंगे। यानी ऐसा शख़्स जो झूठा मुक़द्दमा बनाए, या झूठी गवाही दे, या ऐसी मुक़दमेबाज़ी में उलझे जिसके लिए किसी मजबूरी को न पेश किया जा सके, बल्कि वह सरासर लाभ-प्राप्ति या नफ़्सानियत की तस्कीन या दोस्ती और रिश्तेदारी की अस्बियत (विद्वेष) ही पर आधारित हो, हमारी जमाअत में जगह नहीं पा सकता।

बज़ाहिर लोग हमारे इस तरीक़ेकार की हिकमतों को, जो हमने क़ानून व अदालत के मामले में अपनाया है, पूरी तरह नहीं समझते। इसलिए वे तरह-तरह के सवाल हमारे सामने पेश करते हैं। लेकिन हक़ीक़त में इसके बेशुमार फ़ायदे हैं। इसका सबसे पहला फ़ायदा यह है कि हम अपना एक बाउसूल जमाअत होना अपने अमल से और ऐसे अमल से साबित कर सकते हैं जो सिर्फ़ तफ़रीह नौइयत ही नहीं रखता बल्कि स्पष्ट रूप से निहायत तल्ख़ और इनतिहाई सख़्त आज़माइशें अपने दामन में लिए हुए है। जब हम यह कहते हैं कि ख़ुदा के सिवा किसी को इनसानी ज़िन्दगी के लिए क़ानून बनाने का हक़ नहीं है और जब हमारा यह दावा है कि हाकिमियत (Sovereinty) सिर्फ़ ख़ुदा का हक़ है और ख़ुदा की इताअत और उसके क़ानून की पाबंदी के बग़ैर कोई ज़मीन में हुक्म चलाने का हक़ नहीं रखता है, और जब हमारा यह अक़ीदा है कि जो इलाही क़ानून की सनद के बग़ैर इनसानी मामलों का फ़ैसला करे वह काफ़िर, फ़ासिक़ और ज़ालिम है तो हमारे इस अक़ीदे और हमारे इस दावे से ख़ुद-बख़ुद यह बात लाज़िम आ जाती है कि हम अपने हुक़ूक़ की बुनियाद किसी ग़ैर-इलाही क़ानून पर न रखें और हक़ व ग़ैर-हक़ किसी ऐसे हाकिम की हुकूमत पर न छोड़ें जिसे हम बातिल समझते हैं।

अपने अक़ीदे के इस तक़ाज़े को अगर हम सख़्त से सख़्त नुक़्सानात और इनतिहाई ख़तरों के मुक़ाबलों में भी पूरा करके दिखा दें तो यह हमारी सच्चाई और हमारी सीरत की मज़बूती और हमारे अक़ीदे व अमल की मुताबक़त (एकरूपता) का ऐसा खुला सुबूत होगा, जिससे बढ़कर किसी दूसरे सुबूत की ज़रूरत नहीं रहती। और अगर किसी फ़ायदे की उम्मीद या किसी नुक़सान का ख़तरा या किसी ज़ुल्म व सितम की चोट हमें मजबूर करे कि हम अपने अक़ीदे के ख़िलाफ़ काम कर गुज़रें तो यह हमारी कमज़ोरी का और हमारी सीरत के बौदेपन का भी एक सबसे नुमायाँ सुबूत होगा, जिसके बाद किसी दूसरे सुबूत की

ज़रूरत न रहेगी।

इसका दूसरा फ़ायदा यह है कि अपने अरकान की पुख़्तगी और उनके क़ाबिले एतिमाद या नाक़ाबिले एतिमाद होने का अंदाज़ा करने के लिए हमारे पास यह एक ऐसी कसौट होगी जिससे हम आसानी से यह मालूम करते रहेंगे कि हममें से कौन लोग कितने पुख़्ता हैं और किससे किस क़िस्म की आज़माइशों में साबितक़दमी की उम्मीद की जा सकती है।

इसका तीसरा और अज़ीमुश्शान फ़ायदा यह है कि हमारे अरकान ये मस्लक अपनाने के बाद आपसे आप इस बात पर मजबूर हो जाएँगे कि सोसाइटी के साथ अपने ताल्लुक़ात को क़ानून की बुनियादों पर क़ायम करने के बजाए अख़लाक़ की बुनियादों पर क़ायम करें। उन्हें अपना अख़लाक़ी मेयार (स्तर) इतना बुलंद करना पड़ेगा, अपने आपको अपने माहौल में इतना सच्चा, इतना दीनदार, इतना अमानतदार, इतना ख़ुदातरस और अपने को भलाई का ऐसा पुतला बनाना पड़ेगा कि लोग ख़ुद बख़ुद उनके हुक़ूक़, इज़्ज़त, जान-माल का एहतिराम करने पर मजबूर हो जाएँगे। क्योंकि इस अख़लाक़ी सुरक्षा के सिवा दुनिया में उनके लिए और कोई सुरक्षा न होगी, और क़ानूनी सुरक्षा से महरूम होने और फिर अख़लाक़ी सुरक्षा भी हासिल न करने की सूरत में उनकी हैसियत दुनिया में बिलकुल ऐसी होकर रह जाएगी जैसे जंगल में एक बकरी भेड़ियों के बीच रहती है।

इसका चौथा फ़ायदा यह है और यह भी कुछ कम अहम नहीं है कि हम इस तरह अपने आपको और अपने मफ़ाद और हुक़ूक़ को ख़तरे में डालकर मौजूदा सोसाइटी की अख़लाक़ी हालत को बिलकुल खोलकर दुनिया के सामने रख दें। जब ये लोग यह जानने के बाद कि हम पुलिस और अदालत से अपनी हिफ़ाज़त के लिए कोई मदद लेनेवाले नहीं हैं, हमारे हुक़ूक़ पर एलानिया डाके डालेंगे, तो यह इस बात का सबसे खुला सुबूत होगा कि हमारे देश की और हमारी सोसाइटी की अख़लाक़ी हालत कितनी खोखली है। कितने आदमी हैं जो सिर्फ़ इस वजह से शरीफ़ बने हुए हैं कि क़ानून ने उन्हें शरीफ़ बना रहने पर मजबूर कर रखा है। कितने आदमी हैं जो हर क़िस्म की ख़ियानत और बेईमानी करने पर आमादा हो सकते हैं, बशर्ते कि उन्हें इतमीनान हो जाए कि दुनिया में कोई उनकी पकड़ करनेवाला नहीं है। कितने आदमी हैं जिन्होंने मज़हब, अख़लाक़ और इनसानियत के झूठे लबादे ओढ़ रखे हैं। हालाँकि अगर मौक़ा मिल जाए और कोई रुकावट मौजूदा न हो तो उन बदतरीन बदअख़लाक़ी, लामज़हबियत

और हैवानियत का प्रदर्शन बड़ी आसानी के साथ हो सकता है। यह अख़लाक़ी नासूर जो छुपा हुआ है और अन्दर ही अन्दर हमारी क़ौमी सीरत को गला-सड़ा रहा है हम इसे सबके सामने खोलकर रख देंगे, ताकि हमारे देश का इज्तिमाई ज़मीर (सामूहिक अन्तरात्मा) चौंक पड़े और उसे ठीक-ठीक अंदाज़ा हो कि जिस मर्ज़ से वह अब तक ग़फ़लत बरत रहा है, वह कितनी दूर पहुँच चुका है।

भाइयो! अपनी दावत और अपने तरीक़ेकार की यह मुख़्तसर तशरीह मैंने आपके सामने पेश कर दी है। आप इसे जाँचें और परखें और इसपर कड़ी से कड़ी तंक़ीद (आलोचना) करें और देखें कि हम किस चीज़ की तरफ़ बुला रहे हैं, और बुलाने के लिए हमने जो ढंग अपनाया है वह कहाँ तक सही है, किस हद तक ख़ुदा और रसूल की तालीमात के मुताबिक़ है, किस हद तक मौजूदा इंफ़रादी व इज्तिमाई मर्ज़ों का सही इलाज है और किस हद तक इससे यह उम्मीद की जा सकती है कि हम अपने आख़िरी मक़सद यानी अल्लाह के कलिमे के बुलंद और बातिल कलिमे के पस्त हो जाने को, हासिल कर सकते हैं। अब मैं उन शुबहात और एतिराज़ों पर कुछ अर्ज़ करूँगा जो इसी इज्तिमा के दौरान कुछ रुफ़क़ा और हमदर्दों के ज़रिए से मुझ तक पहुँचाए गए हैं।

उलेमा और मशाइख़ की आड़

एक एतिराज़ जो पहले भी बार-बार सुन चुका हूँ और आज भी मेरे पास तहरीरी शक्ल में आया है, यह है कि ऐसे बड़े-बड़े उलेमा और दीन के पेशवा (जिनके कुछ नाम भी गिनाए गए हैं) क्या दीन से इतने नावाक़िफ़ थे कि न सिर्फ़ यह कि ख़ुद उन्होंने दीन के उन तक़ाज़ों को, जो तुम बयान करते हो, नहीं समझा और पूरा करने की तरफ़ तवज्जोह नहीं की। बल्कि तुम्हारे बयान करने के बाद भी उन्होंने तस्लीम नहीं किया और न तुम्हारे साथ सहयोग करना क़बूल किया? क्या यह इस बात का सबूत है कि वे सब दीन से नावाक़िफ़ हैं? या यह इस बात का सबूत है कि तुमने ख़ुद दीन के नाम से एक ऐसी चीज़ पेश की है जो दीन के तक़ाज़ों में से नहीं है?

इस सवाल का बहुत मुख़्तसर (संक्षिप्त) जवाब मेरे पास यह है कि मैंने दीन को हाल या माज़ी (अतीत) के लोगों से समझने के बजाए हमेशा क़ुरआन व सुन्नत ही से समझने की कोशिश की है। इसलिए मैं कभी यह मालूम करने के लिए कि ख़ुदा का दीन मुझसे या हर मोमिन से क्या चाहता है, यह देखने की कोशिश नहीं करता कि फ़लाँ और फ़लाँ बुज़ुर्ग क्या कहते हैं और क्या करते हैं।

बल्कि सिर्फ़ यह देखने की कोशिश करता हूँ कि क़ुरआन मजीद क्या कहता है और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने क्या किया? इस मालूमात के ज़रिए की तरफ़ से मैं आप लोगों को भी तवज्जोह दिलाना चाहता हूँ। आप यह देखिए कि जिस चीज़ की तरफ़ मैं आपको दावत दे रहा हूँ और जो तरीक़ेकार इसके लिए पेश कर रहा हूँ, क्या क़ुरआन की दावत वही है और नबियों का तरीक़ेकार वही रहा है या नहीं। अगर क़ुरआन व सुन्नत से यह बात साबित हो जाए और आपके नज़दीक क़ुरआन व सुन्नत ही अस्ल हिदायत का ज़रिया हो तो मेरी बात मानिए और मेरे साथ आ जाइए और अगर इस दावत और इस तरीक़ेकार में कोई चीज़ क़ुरआन व सुन्नत से हटी हुई हो तो बेझिझक उसे ज़ाहिर कर दीजिए। जिस वक़्त मुझे और मेरे रुफ़क़ा को पता चल जाएगा कि हम कहीं बाल बराबर भी क़ुरआन व सुन्नत से हटे हैं तो आप इंशाअल्लाह देख लेंगे कि हम हक़ की तरफ़ रुजू करने में एक लम्हे के लिए भी देरी करनेवाले नहीं हैं। लेकिन अगर आप हक़ व बातिल का फ़ैसला ख़ुदा की किताब और उसके रसूल (सल्ल०) की सुन्नत के बजाए लोगों पर रखना चाहते हैं तो आपको पूरा इख़्तियार है कि आप अपने आपको और अपने मुस्तक़बिल (भविष्य) को लोगों ही के हवाले कर दीजिए और ख़ुदा के यहाँ भी यही जवाब दीजिएगा कि हमने अपना दीन तेरी किताब और तेरे रसूल (सल्ल०) की सुन्नत के बजाए फ़लाँ और फ़लाँ लोगों के हवाले कर दिया था। यह जवाबदेही अगर आपको ख़ुदा के यहाँ बचा सकती है तो इसी पर इतमीनान से काम करते रहिए।

ज़ुहद (ईश-साधना) का ताना

एक और एतिराज़ जिसके बारे में मुझे लिखा गया है कि एक मुख़्लिस हमदर्द ने उसे पेश किया है वह यह है कि 'तुम्हारी जमाअत सिर्फ़ कुछ ज़ाहिदों (इबादतगुज़ारों, साधकों) और दुनिया त्याग देनेवालों की एक जमाअत है, जो दुनिया के मामलों से बेताल्लुक़ होकर एक तरफ़ बैठ गई है और जिसे वर्तमान सियासत से कोई दिलचस्पी नहीं है। हालाँकि मुसलमानों को हालात ने मजबूर कर दिया है कि बग़ैर एक लम्हा बरबाद किए उन राजनीतिक समस्याओं को हल करें जिनके हल पर पूरी क़ौम का मुस्तक़बिल निर्भर है, और सिर्फ़ मुसलमान ही नहीं बल्कि ग़ैर-मुस्लिम भी मजबूर हैं कि सबसे पहले अपने देश के राजनीतिक भविष्य की फ़िक्र करें, क्योंकि इसी पर उनकी सफलता निर्भर है। अतः इस देश में जो लोग भी ज़िन्दगी के अमली मसाइल से दिलचस्पी और ताल्लुक़ रखते हैं वे तो तुम्हारी ओर आकर्षित नहीं हो सकते, अलबत्ता कुछ एकांतप्रिय (गोशानशीन) और

अलग-थलग रहनेवाले लोग जो मज़हबी ज़ेहनियत रखते हों, तुम्हें ज़रूर मिल जाएँगे।' यह एतिराज़ दरअस्ल उस तंगनज़री का नतीजा है जिससे हमारे आजकल के सियासी लोग मामलों को देखने और समझने में काम ले रहे हैं। ये लोग सिर्फ़ राजनीतिक स्वरूपों और सूरतों की तबदीलियों को देखते हैं और उन्हीं में अपनी समस्याओं का हल तलाश करते हैं। लेकिन सियासत की इमारत जिन बुनियादों पर क़ायम होती है उन तक उनकी निगाह नहीं पहुँचती। आपके मौजूदा सियासी मसाइल जिनकी फ़िक्र में आजकल आप लोग उलझे हुए हैं, किस चीज़ के पैदा किए हुए हैं? सिर्फ़ इस चीज़ के कि जिन अख़लाक़ी, एतिक़ादी, फ़िक्री (वैचारिक), तहज़ीबी और तमद्दुनी (सांस्कृतिक) बुनियादों पर इस मुल्क की सोसायटी क़ायम थी, वह इतनी कमज़ोर साबित हुई कि एक दूसरी क़ौम अगरचे कि वह निहायत ही गुमराह और ग़लतकार थी, मगर बहरहाल अपनी अख़लाक़ी ख़ूबियों, अपनी तहज़ीबी व तमद्दुनी ताक़त और अपनी अमली क़ाबिलियतों के लिहाज़ से वह आपसे इतनी ज़्यादा उच्च साबित हुई कि हज़ारों मील दूर से आकर उसने आपको ग़ुलाम बना लिया। फिर आप मुद्दतों की ग़फ़लतों और कमज़ोरियों की वजह से इस हद तक गिरे कि ख़ुद इस महकूमी के अंदर भी आपकी पड़ोसी क़ौमें आपके मुक़ाबले में ज़्यादा ताक़तवर हो गईं और आपके लिए यह सवाल पैदा हो गया कि अपने आपको पहले किससे बचाएँ, घरवाले से या बाहरवाले से?

यह है आपके तमाम मौजूदा सियासी मसाइल का ख़ुलासा! और इन मसाइल को आप भी और आपकी पड़ोसी दूसरी हिन्दुस्तानी क़ौमें भी, सिर्फ़ इस तरह हल करना चाहती हैं कि मुल्क का सियासी निज़ाम जिस शक्ल पर क़ायम है उसमें बस कुछ ऊपरी फेर-बदल हो जाए। मैं इस सियासत को और सियासी तरीक़ेकार को बिलकुल बेकार (निरर्थक) समझता हूँ और इसमें अपना वक़्त बरबाद करने का कुछ हासिल नहीं पाता। फिर सिर्फ़ हिन्दुस्तान में ही नहीं बल्कि सारी दुनिया में जो सियासी मसाइल इस वक़्त सामने हैं, उनका ख़ुलासा भी मेरे नज़दीक सिर्फ़ यह है कि इनसान को जो हैसियत दुनिया में वास्तव में हासिल नहीं थी, उसे ख़ामख़ाह अपनी हैसियत बना लेने पर उसने इसरार किया और अपने अख़लाक़, तहज़ीब, तमद्दुन, मईशत (अर्थ-तंत्र) और अपनी सियासत की बुनियाद ख़ुदा से ख़ुदमुख़्तारी और आज़ादी पर रख दी जिसका अंजाम आज एक भयानक फ़साद और एक ज़बरदस्त फ़िस्क़ व फ़ुजूर के तूफ़ान की शक्ल में सामने आ रहा है। इस अंजाम को दुनिया के इन्तिज़ाम की सिर्फ़ ज़ाहिरी शक्लों के रद्दोबदल से दूर करने की जो कोशिशें आज की जा रही हैं, उन्हीं का नाम

आज 'सियासत' है—और मेरे नज़दीक, बल्कि हक़ीक़त में इस्लाम के नज़दीक यह सियासत सरासर बकवास और बेहासिल है। मैंने इस्लाम से जिन हक़ीक़तों को समझा है उनके आधार पर मेरे नज़दीक हिन्दुस्तान के मुसलमानों की और हिन्दुस्तान के सारे नागरिकों की और तमाम दुनिया के मुस्लिमों और ग़ैर-मुस्लिमों की सियासत का हल सिर्फ़ यह है कि हम सब ख़ुदा की बंदगी अपनाएँ। उसके क़ानून को अपना जीवन-विधान स्वीकारें और दुनिया के इंतिज़ाम की बागडोर फ़ासिक़ों और फ़ाजिरों (ख़ुदा के नाफ़रमानों) के बजाए ख़ुदा के नेक बंदों के हाथों में हो। यह सियासत अगर आपको अपील नहीं करती और आप कुछ दूसरी सियासतबाज़ियों से अपने मसाइल हल करना चाहते हैं तो आपका रास्ता अलग है और मेरा रास्ता अलग। जाइए और जिन-जिन तरीक़ों से अपने मसाइल को हल करना चाहते हैं, हल करके देख लीजिए। मगर मैं और मेरे रुफ़क़ा (साथी) ख़ूब पक्के यक़ीन और विश्वास के साथ जिस चीज़ में अपनी क़ौम, मुल्क और सारी दुनिया की कामयाबी देखते हैं, उसी पर हम अपनी सारी कोशिशें लगाते रहेंगे। अगर दुनिया के लोग हमारी बातों की तरफ़ ध्यान देंगे तो उनके अपने लिए भला है और ध्यान न देंगे तो अपना कुछ बिगाड़ेंगे, हमारा कुछ नुक़सान न कर सकेंगे।

रही यह ग़लतफ़हमी कि हम ज़ाहिदों और गोशानशीनों का एक गिरोह बना रहे हैं तो अगर यह जान-बूझकर वास्तविकता की ग़लत ताबीर (व्याख्या) नहीं है और वाक़ई ग़लतफ़हमी ही है तो इसे हम साफ़-साफ़ दूर कर देना चाहते हैं। हम दरअस्ल ऐसा गिरोह तैयार करना चाहते हैं जो एक तरफ़ ज़ुहद व तक़वा में इस्तिलाही ज़ाहिदों और मुत्तक़ियों से बढ़कर हो और दूसरी तरफ़ दुनिया के इन्तिज़ाम को चलाने की क़ाबिलियत और सलाहियत भी आम दुनियादारों से ज़्यादा और बेहतर रखता हो। हमारे निकट दुनिया की तमाम ख़राबियों का एक बड़ा सबब यह है कि नेक लोग नेकी के सही मफ़हूम और मतलब से अनजान होने के सबब गोशे में बैठ जाते हैं और परहेज़गारी इसी को समझते हैं कि दुनिया के मामलों ही से परहेज़ करें, और दूसरी तरफ़ दुनिया के सारे कारोबार बुरे लोगों के हाथों में आ जाते हैं, जिनकी ज़बान पर नेकी का नाम अगर कभी आता भी है तो सिर्फ़ दुनिया को धोखा देने के लिए। इस ख़राबी का इलाज सिर्फ़ यही हो सकता है कि नेक लोगों की एक ज़माअत मुनज़्ज़म की जाए जो ख़ुदातरस, रास्तबाज़ और दीनदार भी हो। ख़ुदा की पसंदीदा अख़लाक़ी ख़ूबियाँ भी रखती हो और इसके साथ दुनिया के मामलों को दुनियादारों से ज़्यादा अच्छी

तरह समझे और ख़ुद दुनियादारी ही में अपनी महारत और क़ाबिलियत से उन्हें मात दे सके। हमारे नज़दीक इससे बड़ा और कोई सियासी काम नहीं हो सकता और न इससे ज़्यादा कामयाब सियासी तहरीक और कोई हो सकती है कि एक नेक गिरोह को मुनज़्ज़म कर लिया जाए। बदअख़लाक़ और बेउसूल लोगों के लिए दुनिया की चरागाह में बस उसी वक़्त तक चरने-चुगने की मोहलत है जब तक ऐसा गिरोह तैयार नहीं हो जाता और जब ऐसा गिरोह तैयार हो जाएगा तो आप यक़ीन रखिए कि न सिर्फ़ आपके इस मुल्क बल्कि क्रमशः सारी दुनिया की राजनीति, अर्थव्यवस्था, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य और न्याय-व्यवस्था की बागडोरें इसी गिरोह के हाथ में आ जाएँगी और फ़ासिक़ों, फ़ाजिरों का चिराग़ उनके आगे न जल सकेगा। यह मैं नहीं कह सकता कि यह इंक़िलाब किस तरह रूनुमा होगा, लेकिन मुझे जितना कल के सूरज उगने का यक़ीन है, उतना ही मुझे इस बात का भी यक़ीन है कि यह इंक़िलाब बहरहाल रूनुमा होकर रहेगा, शर्त यह है कि हमें नेक लोगों के ऐसे गिरोह को मुनज़्ज़म करने में सफलता मिल जाए।

जमाअत के रुफ़क़ा से ख़िताब (संबोधन)

अब मैं आप लोगों से इजाज़त चाहूँगा कि थोड़ी देर के लिए आम ख़िताब को छोड़कर ख़ास तौर पर कुछ बातें अपने रुफ़क़ा (साथियों) से अर्ज़ करूँ :

मुहतरम रुफ़क़ा! सबसे पहले आपसे ख़िताब करते हुए मैं उसी बात को दोहराना ज़रूरी समझता हूँ जिसे हर इज्तिमा के मौक़े पर दोहराता रहा हूँ कि अपनी इस अज़ीमुश्शान ज़िम्मेदारी को महसूस कीजिए, जिसे आपने शऊरी तौर पर अपने ख़ुदा से अहद व मीसाक़ (प्रण एवं प्रतिज्ञा) मज़बूत करके अपने ऊपर आयद कर लिया है। आपके इस अहद का तक़ाज़ा सिर्फ़ यही नहीं है कि आप इलाही क़ानून के ज़्यादा से ज़्यादा पाबंद हों और आपके अक़ीदे और क़ौल व अमल (कथनी व करनी) में पूर्ण समानता हो, और आपकी ज़िन्दगी का कोई पहलू ऐसा न रह जाए जिसमें आपके अफ़कार व आमाल उस इस्लाम से भिन्न हों जिसपर आप ईमान लाए हैं। बल्कि उसके साथ आपके उसी अहद का तक़ाज़ा और बहुत ही सख़्त तक़ाज़ा यह भी है कि जिस इस्लाम पर आप ईमान लाए और जिसे आप अपने बादशाह का दीन समझते हैं और जिसे आप सारे ही इनसानों के लिए हक़ जानते हैं और एक मात्र फ़लाह का ज़रिया भी समझते हैं उसे सभी अन्य धर्मों और मस्लकों (वैचारिक सम्प्रदायों) और निज़ामों के मुक़ाबले में सरबुलंद करने के लिए, और इनसानों को असत्य धर्मों की उपद्रवादी

तबाहकारियों से बचाकर दीने हक़ की रहमतों और भलाइयों से मालामाल करने के लिए आपमें कम से कम इतनी बेचैनी पाई जाए जितनी आज असत्य-धर्म के अनुयायी अपने-अपने झूठे और भ्रष्ट धर्मों के समर्थन और उनका बोलबाला करने के लिए दिखा रहे हैं।

आपकी आँखो के सामने उन लोगों की मिसालें मौजूद हैं जो सख़्त से सख़्त ख़तरों, बड़े से बड़े नुक़सानों, जान-माल की बरबादी, मुल्कों की तबाही और अपनी औलाद, अपने रिश्तेदारों और दिल के टुकड़ों की क़ुरबानी को सिर्फ़ इसलिए गवारा कर रहे हैं कि जिस जीवन-पद्धति को वे सही समझते हैं और जिस व्यवस्था में अपने लिए सफलता की उम्मीद उन्हें नज़र आती है, उसे न सिर्फ़ अपने देश पर बल्कि सारी दुनिया पर ग़ालिब करके छोड़ें। उनके सब्र, उनकी क़ुरबानियों, मेहनतों और कठिनाइयों पर उनका धैर्य और बरदाश्त और अपने मक़सद के साथ उनके इश्क़ की तुलना आप अपने अमल से करके देखिए और महसूस कीजिए कि आप इस मामले में उनके साथ क्या निस्बत रखते हैं। अगर वास्तव में कभी आप उनके मुक़ाबले में सफल हो सकते हैं तो सिर्फ़ उसी वक़्त जबकि इन हैसियतों में आप उनसे बढ़ जाएँ, वरना आपके माली ईसार (त्याग), आपके वक़्त और मेहनत के ईसार और अपने मक़सद के साथ आपकी मुहब्बत और इसके लिए आपकी क़ुरबानी का जो हाल इस वक़्त है, उसे देखते हुए तो आप यह अधिकार भी नहीं रखते कि अपने दिल में इस तमन्ना को पालें कि आपके हाथों यह झंडा बुलंद हो।

दूसरी चीज़ जिसकी तरफ़ मुझे आपको तवज्जोह दिलाने की बार-बार ज़रूरत महसूस होती है, वह यह है कि आप लोग दीन के उसूली और बुनियादी मामलों की अहमियत को समझें और अमौलिक (गौण) बातों के साथ जो एहतिमाम अब तक करते रहे हैं और जिस एहतिमाम की बीमारी आपके सारे मज़हबी माहौल को लगी हुई है, उससे बचने की कोशिश करें। मैं देखता हूँ कि मेरी और जमाअत के कुछ दूसरे इल्म व नज़र रखनेवाले रुफ़क़ा की कोशिशों के बावजूद हमारी जमाअत में अभी तक उन जुज़यात (अंशों) के साथ अच्छा-ख़ासा लगाव, बल्कि ग़ुलू (अति) पाया जाता है, जिनपर एक मुद्दत से फ़िरक़ाबंदियाँ और गिरोही कशमकशें होती रही हैं—और यह कैफ़ियत कभी-कभी इतनी बढ़ जाती है कि हमारे समझाने-बुझाने से इस तरीक़े को छोड़ने के बजाए हमारे कुछ रुफ़क़ा उल्टा हमें ही इन बहसों में उलझाने की कोशिश करते हैं। ख़ूब अच्छी तरह समझ लीजिए कि जिन जुज़यात और ग़ैर-बुनियादी बातों पर आप लोग बहसें

करते हैं, वे चाहे कितनी ही अहमियत रखती हों, मगर बहरहाल ये वे चीज़ें नहीं हैं जिन्हें क़ायम करने के लिए अल्लाह ने अपने पैग़म्बरों को भेजा हो और अपनी किताबों को नाज़िल किया हो। नबियों के आने और अल्लाह की किताबों के नाज़िल होने का मक़सद इन जुज़यात को क़ायम करना नहीं है। उनका अस्ल मक़सद यह रहा है कि मानव-जाति अपने हक़ीक़ी मालिक के सिवा किसी के आदेशाधीन (ताबअ-फ़रमान) न रहे। क़ानून सिर्फ़ ख़ुदा का क़ानून हो, तक़वा सिर्फ़ ख़ुदा से हो। हुक्म सिर्फ़ ख़ुदा का माना जाए। हक़ और बातिल का फ़र्क़ और ज़िन्दगी में राहेरास्त (सन्मार्ग) की हिदायत सिर्फ़ वही तस्लीम हो जिसे ख़ुदा ने वाज़ेह किया है, और दुनिया में उन ख़राबियों का ख़ात्मा किया जाए जो अल्लाह को नापसंद हैं। और उन ख़ूबियों और अच्छाइयों को क़ायम किया जाए जो अल्लाह को पसन्द हैं।

यह है दीन और इसी को क़ायम करना हमारा मक़सद है और मुसलमान होने की हैसियत से इसी काम पर हमें लगाया गया है। इस काम की अहमियत अगर आप पूरी तरह महसूस कर लें और अगर आपको इस बात का भी एहसास हो कि इस काम के मुअत्तल हो जाने और बातिल निज़ामों के दुनिया पर छा जाने से दुनिया की मौजूदा हालत कितनी शिद्दत से अल्लाह के ग़ज़ब की मुस्तहिक़ हो चुकी है, और अगर आप यह भी जान लें कि इस हालत में हमारे लिए अल्लाह के ग़ज़ब से बचने और अल्लाह की ख़ुशी पाने की कोई सूरत इसके सिवा नहीं है कि हम अपनी तमाम क़ुव्वत चाहे वह माल की हो या जान की, दिमाग़ की हो या ज़बान की—सिर्फ़ इक़ामते दीन की जिद्दोजुहद में सर्फ़ कर दें तो आपसे कभी ये फ़िज़ूल बहसें और व्यर्थ बातें न हो सकेंगी, जिनमें अब तक आपमें से बहुत-से लोग लगे हुए हैं। —मेरे नज़दीक ये तमाम मशग़ले सिर्फ़ एक चीज़ का नतीजा हैं कि लोगों ने अभी तक इस बात को पूरी तरह समझा नहीं है कि दीन हक़ीक़त में किस चीज़ का नाम है? और इसके वाक़ई मुतालबे अपने माननेवालों से क्या हैं?

एक और ख़ामी जो हमारे कुछ रुफ़क़ा में पाई जाती है और जो अक्सर हमारे लिए परेशानी का सबब बनती है, वह यह है कि ये लोग उसूल और नज़रिए की हद तक तो इस जमाअत के मस्लक (विचारधारा) को समझ गए हैं, लेकिन तरीक़ेकार (कार्य-पद्धति) को अच्छी तरह नहीं समझे हैं। इसलिए बार-बार उनका ध्यान अन्य जमाअतों के तरीक़ों की तरफ़ फिर जाता है और वे किसी न किसी तरह खींच-तान करके ख़ुद से हमारे नस्बुलऐन और दूसरों के तरीक़ेकार

का एक मिश्रण बनाने की कोशिश करते हैं और जब उन्हें इससे रोका जाता है तो वे समझने लगते हैं कि हम बिला वजह एक अच्छे चलते हुए असरदार तरीक़ेकार को सिर्फ़ इस तास्सुब के आधार पर नहीं अपनाना चाहते कि वह हमारा नहीं है, बल्कि दूसरों का पैदा किया हुआ तरीक़ा है। कुछ लोगों ने तो सितम ही कर दिया कि जब हमारी तरफ़ से उन्हें रोका गया तो उन्होंने हमें यह इत्मीनान दिलाने की कोशिश की कि नाम आप ही का लिया जाएगा, दूसरों का नहीं लिया जाएगा। मानो उनके नज़दीक हमारी सारी जिद्दोजुहद सिर्फ़ अपना रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क चलाने के लिए है। और लुत्फ़ यह है कि यह समझते हुए भी वे हमारे साथ इस जमाअत में शरीक हैं। हमारी जमाअत की कुछ मक़ामी (स्थानीय) शाखाएँ इस वबा से ख़ास तौर से बहुत ज़्यादा मुतास्सिर हुई हैं। लेकिन जहाँ तास्सुर इतना ज़्यादा नहीं है, वहाँ भी विभिन्न तरीक़ों से इस बात का इज़हार होता रहता है कि कोई तेज़ रफ़्तार तरीक़ेकार अपनाकर जल्दी से कुछ चलता-फिरता काम दुनिया के सामने पेश कर दिया जाए।

ये सब अमल बिना विचारधारा की उस पुरानी बीमारी के नतीजे हैं जो मुसलमानों में बहुत दिनों से परवरिश पा रही है और व्यवहार-विहीन विचारधारा से कुछ कम ख़तरनाक नहीं है। मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि अगर इन मज़हबी और सियासी तहरीकों में से किसी में भी वास्तव में कोई जान होती जो इस वक़्त मुसलमानों में चल रही है तो शायद हम इस जमाअत की तासीस (गठन) में अभी कुछ ताख़ीर से काम लेते और अपनी पूरी क़ुव्वत इन नुस्ख़ों को आज़माने में लगा देते। मगर जो थोड़ी बहुत नज़र व बसीरत (सूझ-बूझ) अल्लाह ने हमें अता की है, उसकी बुनियाद पर हम ख़ूब अच्छी तरह यह समझ चुके हैं कि वक़्त की चलती हुई तहरीकों और उनकी क़यादतों (नेतृत्व) में से एक भी मुसलमानों के मर्ज़ का सही इलाज नहीं है, और न इस्लाम के अस्ल मंशा को पूरा करनेवाली है। सिर्फ़ जुज़वी (आंशिक) तौर पर मुसलमानों के रोगों की नाकाफ़ी और सतही पहचान की गई है और इस्लाम के अस्ल तक़ाज़ों को भी सही तौर पर नहीं जाना गया है। फिर यह भी अच्छी तरह नहीं समझा गया कि कुफ़्र व फ़िस्क़ का यह ग़लबा और दीन की यह बेबसी और मग़लूबी जो आज मौजूद है, हक़ीक़त में किन असबाब का नतीजा है, और अब इस हालत को बदलने के लिए किस तर्तीब व क्रम से किन-किन मैदानों में क्या-क्या काम करना है। इन सब चीज़ों को सोचे और समझे बग़ैर जो सतही और जुज़वी तहरीकें जारी की गई हैं और उन्हें चलाने के लिए जो असरदार और फ़ौरी नतीजा सामने

ले आनेवाले तरीक़े अपनाए गए हैं, वे सब हमारे नज़दीक चाहे ग़लत न हों, चाहे उनकी निंदा हम न करें, चाहे उनकी और उनके पीछे काम करनेवाले इख़्लास (निष्ठा) की हम दिल से क़द्र करें—मगर हम इनको लाहासिल समझते हैं और हमें पूरी तरह यक़ीन है कि इस क़िस्म की तहरीकें अगर सदियों तक भी पूरी कामयाबी और शोर-हंगामे के साथ चलती रहें तब भी निज़ामे ज़िन्दगी में कोई हक़ीक़ी इंक़िलाब रूनुमा नहीं हो सकता। हक़ीक़ी इंक़िलाब अगर किसी तहरीक से रूनुमा हो सकता है तो वह सिर्फ़ हमारी तहरीक है और उसके लिए फ़ितरी तौर पर यही एक तरीक़ेकार है जो हमने ख़ूब सोच-समझकर और इस दीन के मिज़ाज और उसके इतिहास का जायज़ा लेकर अपनाया है। इसमें शक नहीं कि हमारा तरीक़ेकार निहायत सब्र चाहता है, सुस्त रफ़्तार है, जल्दी से कोई महसूस नतीजा इससे रूनुमा नहीं हो सकता और इसमें सालों तक लगातार ऐसी मेहनत करनी पड़ती है जिसके असरात और जिसके अमली नतीजों को कभी-कभी ख़ुद मेहनत करनेवाला भी महसूस नहीं कर सकता। लेकिन इस राह में कामयाबी का रास्ता यही है और इसके सिवा कोई दूसरा तरीक़ेकार इस मक़सद के लिए मुमकिन नहीं है। जिन लोगों को हमारे मस्लक, तरीक़ेकार या इन दोनों में से किसी एक पर भी इत्मीनान हासिल न हो, उनके लिए यह रास्ता तो खुला हुआ है कि जमाअत से बाहर जाकर अपनी राय और ख़्वाहिश से जिस तरह चाहें काम करें। लेकिन यह इख़्तियार उन्हें किसी तरह नहीं दिया जा सकता कि वे ख़ुद से इन दोनों में से या इनमें से किसी एक चीज़ में जो तबदीली चाहें कर लें। हमारे साथ जिसको चलना है उसे पूरे इत्मीनान के साथ हमारे मसलक और तरीक़ेकार को ठीक समझकर चलना चाहिए और जो शख़्स कुछ भी रुझान दूसरी तहरीकों और जमाअतों की तरफ़ रखता हो उसे पहले उन रास्तों को आज़माकर देख लेना चाहिए। फिर अगर उसका ज़ेहन इसी फ़ैसले पर पहुँचे जिसपर हम पहुँचे हुए हैं तो वह दिली इत्मीनान के साथ हमारे साथ आ जाए।

सतहियत (ऊपरी काम), मुज़ाहिरापसंदी और जल्दबाज़ी की जो कमज़ोरी मुसलमानों में आम तौर पर पैदा हो गई है, उसका एक सबूत मुझे हाल ही में यह मिला कि अवाम में तालीमे बालिग़ान (प्रौढ़ शिक्षा) के ज़रिए से काम करने का जो तरीक़ा कुछ महीने पहले मैंने पेश किया था उसने तो बहुत कम लोगों को अपील किया, मगर गिरोह बना-बनाकर बस्तियों में गश्त लगाने और फ़ौरी नतीजा दिखानेवाली कार्य-शैली के लिए (चाहे उसका असर कितना ही नापाएदार हो) विभिन्न स्थानों से हमारे रुफ़क़ा के तक़ाज़े बराबर चले आ रहे हैं और किसी

समझाने-बुझाने पर भी उनका सिलसिला टूटने में नहीं आता। हालाँकि एक तरफ़ यह तरीक़ेकार है कि एक साल तक या इससे ज़्यादा मुद्दत तक निरक्षर जनता में से कुछ आदमियों को निरंतर तालीम-तर्बियत देकर ख़ूब पुख़्ता कर लिया जाए और उनके अक़ाइद, अख़लाक़, आमाल, मक़सदे ज़िन्दगी, मूल्यों हर चीज़ को पूरी तरह बदल डाला जाए—और फिर उनको अपनी जमाअत का मुस्तक़िल कारकुन बनाकर मज़दूरों, किसानों और दूसरे आम तबक़ों में काम करने के लिए इस्तेमाल किया जाए।

दूसरी कार्य-शैली यह है कि एक छोटी-सी मुद्दत में हज़ारों आदमियों को एक ही वक़्त में कुछ दीन की इब्तिदाई बातें सिखाई जाएँ और फ़ौरी तौर पर उनमें एक हरकत पैदा करके छोड़ दिया जाए, चाहे दूसरे चक्कर के वक़्त पहली हरकत का कोई असर ढूँढ़ने से भी न मिल सके। इन दोनों तरीक़ों में से जब मैं देखता हूँ कि लोग पुख़्ता नतीजे पैदा करनेवाले देर-तलब मेहनत-तलब और सब्रआज़मा तरीक़े को सुनते हैं और उसकी तरफ़ कोई तवज्जोह नहीं करते—और दूसरे तरीक़े की तरफ़ बार-बार दौड़ चलने की कोशिश करते हैं तो मेरे सामने मुसलमानों की वे कमज़ोरियाँ बिलकुल बेनक़ाब हो जाती हैं जिनकी वजह से अब तक वे ख़ामकारियों (कच्चे कामों) ही में अपनी क़ुव्वतें, मेहनतें, माल, वक़्त नष्ट करते रहे हैं। मैं इस सिलसिले में ज़्यादा से ज़्यादा इतना ही कह सकता हूँ कि जब तक इस जमानत की बागें मेरे हाथ में हैं, अपने रुफ़क़ा को सही और हक़ीक़ी नतीजाख़ेज़ कामों ही पर लगाने की कोशिश करूँगा और बेहासिल कोशिशों में जानते-बूझते उन्हें मशग़ूल नहीं होने दूँगा।

अपनी तक़रीर को ख़त्म करने से पहले एक आख़िरी बात की तरफ़ मैं आप लोगों को तवज्जोह दिलाना ज़रूरी समझता हूँ। हमारे रुफ़क़ा (साथियों) के हलक़े में एक अच्छा ख़ासा गिरोह ऐसा पाया जाता है जिसने तबलीग़ व इस्लाह के काम में शिद्दत और सख़्तगीरी का रंग अपना लिया है। जो सवालात उनकी तरफ़ से अक्सर मेरे पास आते रहे हैं उनसे मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि उनके अन्दर बिगड़े हुए लोगों को सँवारने की बेताबी इतनी ज़्यादा नहीं है जितनी उन्हें अपने से काट फेंकने की बेताबी है। दीनी हरारत ने उनमें हमदर्दी और ख़ैरख़्वाही का ज़ज़्बा इतना नहीं उभारा जितना नफ़रत और ग़ुस्से का जज़्बा उभार दिया है। इसी वजह से वे अक्सर यह तो पूछते हैं कि जो लोग ऐसे और ऐसे हैं उनसे हम ताल्लुक़ात क्यों न तोड़ लें और उनके साथ नमाज़ें क्यों पढ़ें और उन्हें काफ़िर व मुशरिक क्यों न कहें। लेकिन यह पूछने का उन्हें बहुत कम ख़याल आता है कि

हम अपने उन भटके हुए भाइयों को सीधे रास्ते पर कैसे लाएँ, उनकी ग़फ़लत और बेख़बरी को कैसे दूर करें, उन्हें टेढे रास्ते से हटाकर सीधे रास्ते पर कैसे लाएँ और उन्हें हिदायत के नूर से फ़ायदा उठाने पर कैसे आमादा करें।

मुझे ऐसा महसूस होता है कि जिन लोगों ने अल्लाह के फ़ज़्ल से और अपनी ख़ुशक़िस्मती से हक़ को पा लिया है, उनके अंदर हक़ के इस जज़्बे ने शुक्र के बजाय घमंड का जज़्बा पैदा कर दिया है और इसी का इज़हार इन शक्लों में हो रहा है। ख़ुदा न करे कि मेरा यह गुमान सही हो। लेकिन मैं इसे साफ़-साफ़ इसलिए बयान कर रहा हूँ कि हमारे रफ़ीक़ों (साथियों) में से हर शख़्स पूरी ख़ुदातरसी के साथ अपने नफ़्स का जायज़ा लेकर तहक़ीक़ करने की कोशिश करे कि कहीं शैतान ने यह मर्ज़ तो उनको नहीं लगा दिया है। वाक़िया यह है कि बिगड़ी हुई सोसायटी के बीच सही इल्म और स्वालेह (नेक) अमल रखनेवालों की मिसाल ऐसी है कि जैसे एक महामारी में मुब्तिला हो जानेवाली बस्ती के बीच चंद तंदरुस्त लोग मौजूद हों, जो कुछ मेडिकल की जानकारी भी रखते हों और कुछ दवाइयों का भंडार भी उनके पास हो। मुझे बताइए कि इस महामारीग्रस्त बस्ती में ऐसे कुछ लोगों का हक़ीक़ी फ़र्ज़ क्या है? क्या ये मरीज़ों से और उनसे लगे हुए रोगों से नफ़रत करें या उन्हें अपने से दूर भगाएँ और उन्हें छोड़कर निकल जाने की कोशिश करें। या यह कि अपने आपको ख़तरे में डालकर उनका इलाज और उनकी तीमारदारी करने की फ़िक्र करें, और इस कोशिश में अगर कुछ गंदगी उनके जिस्म व लिबास को लग भी जाए तो उसे बर्दाश्त कर लें। शायद मैं पूरे यक़ीन के साथ यह दावा कर सकता हूँ कि अगर ये लोग पहली सूरत अपनाएँगे तो ख़ुदा के सामने उल्टे मुजरिम क़रार पाएँगे और उनकी अपनी तंदरुस्ती और उनकी मेडिकल की जानकारी और उनके पास दवाइयों का भण्डार होना, उन्हें फ़ायदा पहुँचाने के बजाय उल्टा उनके जुर्म को और ज़्यादा सख़्त बना देगा। इसी आधार पर आप गुमान कर लें कि जिन लोगों को दीनी तंदरुस्ती हासिल है और जो दीन का इल्म और इस्लाह के ज़रिए भी रखते हैं, उनके लिए कौन-सा तरीक़ा अल्लाह की मर्ज़ी के मुताबिक़ है।

इस तक़रीर के बाद इज्तिमा का पहला इज्लास ख़त्म हुआ और अस्र की नमाज़ से मग़रिब की नमाज़ तक का वक़्फ़ा दिया गया।

दूसरा इज्लास

(19 अप्रैल 1945 ई०, मग़रिब की नमाज़ के बाद)

इन इज्लास में सूबा बिहार की रिपोर्ट सय्यद मुहम्मद हसनैन साहब (क़य्यिम जमाअत सूबा बिहार) ने और सूबा सरहद की रिपोर्ट ताजुलमुलूक साहब ने पेश की। इसके बाद अमीर जमाअत ने इन रिपोर्टों पर तबसिरा करते हुए फ़रमाया—

1. जिन मक़ामात से जमाअत के अरकान इज्तिमा में शरीक होने के लिए नहीं आए और उन्होंने कोई मजबूरी भी पेश नहीं की, उनके बारे में यह समझना चाहिए कि वे बिना मजबूरी के नहीं आए। ऐसे अरकान से मक़ामी जमाअतों के अमीरों (अध्यक्षों) को पूछ-गछ करनी चाहिए, ताकि आइंदा उनसे यह कमज़ोरी न हो, और अगर पहले से उनका तर्ज़ेअमल जमाअत के कामों में दिलचस्पी के अभाव का रहा हो तो उनसे साफ़ कह देना चाहिए कि वे जमाअत की रुकनियत से अलग हो जाएँ। उज्र के लिए हमने 'उज्रे शरई' (शरई मजबूरी) की जो शर्त रखी है, उसके लिहाज़ से कारोबार का हरज या माली नुक़सान कोई मायने नहीं रखता। अगर हमारे रुफ़क़ा इस वक़्त इतनी क़ुरबानी भी नहीं दे सकते तो आइंदा उनसे क्या उम्मीद की जा सकती है। हमारे रुफ़क़ा में बहुत-से ऐसे लोग भी तो हैं जो सर्विस में हैं और उन्हें छुट्टी न मिल सकी, मगर वे फिर भी इज्तिमा में शरीक होने के लिए आ गए और अब वे इसके नतीजे भुगतने के लिए तैयार हैं। ऐसे ही लोग हमारे ख़याल से भरोसे के क़ाबिल हैं। जो अरकाने जमाअत सिर्फ़ करोबारी नुक़सान के ख़तरे से नहीं आए हैं, उनसे साफ़ कह देना चाहिए कि अब आप अपने कारोबार ही की ख़िदमत करते रहें। इस अज़ीमुश्शान (महान) नस्बुलऐन की ख़िदमत का नाम लेना आपके लिए कुछ मुनासिब नहीं है। अलबत्ता जमाअत के जो अरकान माली कमज़ोरी की वजह से नहीं आ सके, उनकी मजबूरी समझ में आती है। मगर दूसरे अरकान उनका ख़र्च बर्दाश्त करने के क़ाबिल थे और उन्हें अपने भाइयों की मजबूरी का इल्म भी था और फिर भी उन्होंने अपने भाइयों को साथ लाने की कोशिश नहीं की; उनपर ऐसे अरकाने जमाअत का इज्तिमा में शरीक न होने का ज़ाब्ते की रू से चाहे कोई भार न हो, लेकिन अख़लाक़ी तौर पर वे इसके ज़िम्मेदार हैं। ऐसे हज़रात को अपनी तंगदिली को दूर करने की फ़िक्र करनी चाहिए। वरना जिनसे आज यह

थोड़ा-थोड़ा माली ईसार (त्याग) भी बर्दाश्त नहीं हो सकता, उनसे कल किसी बड़े ईसार की क्या उम्मीद की जा सकती है।

2. जिन हलक़ों के लिए क़य्यिमे जमाअत बना दिए गए हैं, उनकी जमाअतें अपनी रिपोर्टें बराहेरास्त मर्कज़ भेजने के बजाय अपने हलक़े के क़य्यिम (सेक्रेट्री) को भेजें और क़य्यिमे जमाअत पूरे हलक़े की रिपोर्ट मर्कज़ में रवाना करें।

3. जहाँ-जहाँ जमाअतें क़ायम हैं, वहाँ के अरकान अपनी ज़कात मक़ामी बैतुलमाल में जमा करें और बाक़ायदा हिसाब दें कि उनका कितना माल था और उसपर उन्होंने कितनी ज़कात अदा की। जमाअती बैतुलमाल की मौजूदगी में लोगों को अपनी ज़कात इंफ़रादी (व्यक्तिगत) तौर पर निकालकर अदा नहीं करनी चाहिए। जो लोग साहिबे निसाब हों और बाक़ायदा ज़कात अदा न करें, उनकी शरई हैसियत वही है जो नमाज़ न पढ़नेवालों की है और ऐसे लोग हमारी जमाअत में नहीं रह सकते।

4. जिन हज़रात ने कुछ उलेमा से अपनी बातचीत का ज़िक्र किया है, उन्हें मैं अपनी इस हिदायत की तरफ़ तवज्जोह दिलाना चाहता हूँ जो मैंने जमाअत की तशकील के शुरू में दी थी और रूदाद जमाअत (अव्वल) में उसे फिर देखा जा सकता है। मैंने उसमें कहा था कि हर आदमी को उसी हलक़े में जाना चाहिए, जिस हलक़े के लोगों से ख़िताब करने की उसमें क़ाबिलियत हो। ख़ास तौर से ग़ैर-आलिम लोगों को उलेमा के पास जाकर अपनी दावत पेश करने में तो बहुत ज़्यादा एहतियात करनी चाहिए। क्योंकि उन हज़रात के मसाइल बड़े पेचीदा और नाज़ुक हैं और फ़ितना हर वक़्त उनके पास हाज़िर रहता है। उनकी नफ़्सियात कुछ वही लोग समझ सकते हैं जो दीन में गहरी बसीरत (सूझबूझ) रखने के साथ उनके 'दीनियात' से भी वाक़िफ़ हैं। उन्हें राहे हक़ की तरफ़ दावत देना आधुनिक शिक्षा प्राप्त लोगों के बस की बात नहीं है। वे उनके पास जाएँगे तो कुछ काम बनाने के बजाय उल्टा कोई ख़तरा मोल ले आएँगे।

5. आज की रिपोर्ट में यह बयान किया गया है और इससे पहले भी यह एतिराज़ मैं अक्सर सुनता रहा हूँ कि कुछ हलक़ों में जब हमारी दावत पहुँचती है तो उसका जवाब यह कहकर दिया जाता है कि 'तुम्हारी तहरीक में कोई न कोई चीज़ मुश्तबह (संदिग्ध) ज़रूर है वरना कैसे मुमकिन था कि तुम यह दावत देते और फ़लाँ ताक़त उसे ठंडे दिल से बर्दाश्त कर लेती।' दरअस्ल इस क़िस्म की बातें वे लोग करते हैं जिनके अंदर ख़ुद हक़ व बातिल को पहचानने की कोई सलाहियत नहीं है और उन्होंने सिर्फ़ किसी दुश्मन ताक़त को हक़ के पहचानने

का काम सौंप दिया है। वे समझते हैं कि जिस चीज़ पर दुश्मन भड़के वह हक़ है और जिस चीज़ को वह बर्दाश्त कर ले वह बातिल है। इस हक़ और बातिल के मेयार (मापदंड) पर जो लोग तकिया किए बैठे हैं, हमें यह देखकर अफ़सोस होता है कि उनमें से एक अच्छा-ख़ासा गिरोह दीन के उलेमा का भी है। हम उनसे अर्ज़ करते हैं कि अगर वाक़ई आपके पास दीन का इल्म मौजूद है तो सबसे पहले क़ुरआन व हदीस के मेयार पर परखकर यह देखिए कि जिस चीज़ की दावत हम दे रहे हैं, वह ख़ुद में हक़ है या नहीं। इसके बाद फिर इस बात पर ग़ौर कीजिए कि अगर यह हक़ है तो आख़िर बात क्या है कि शैतान और शैतान के दोस्त उसे बर्दाश्त करने लगे हैं? क्या हक़ की फ़ितरत बदल गई है या शैतान अब वह नहीं रहा है जो पहले था?

इस पहलू पर जब आप ग़ौर करेंगे तो आप पर ख़ुद यह बात खुल जाएगी कि इतना बड़ा इनक़िलाब यानी ख़ालिस तौहीद की दावत का शैतान के लिए क़ाबिले बर्दाश्त होना ख़ुद आप हज़रात की अपनी ग़लतियों का नतीजा है। आप ही ने तमाम उन अल्फ़ाज़ और इस्तेलाहात (शब्दावलियों) की जान निकाल दी है जिनके ज़रिए से दीन की दावत क़ुरआन व सुन्नत में पेश की गई थी। इलाह, रब, दीन, इबादत, शिर्क, तौहीद, तागूत, फ़ितना, फ़साद, मारूफ़ व मुन्कर, ख़ैर व इस्लाह ग़रज़ ऐसे तमाम अल्फ़ाज़ जो इस्लाम की रूह को पेश करने के लिए शरीअत में इख़्तियार किए गए थे, आज आप ही हज़रात के इस्तेमाल के कारण इतने बेमाने हो गए हैं कि तागूत की छावनियों तक में 'अश्हदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाहु' का पाँच वक़्त एलान होता है और वहाँ उससे ज़र्रा बराबर भी कोई खलबली नहीं मचती, बल्कि ख़ुद तागूत अपने जांनिसारों के लिए इमाम, मुअज़्ज़िन और ख़तीब पूरे इतमीनान के साथ मुहय्या करता है और उसके सरफ़रोश ख़ादिमों में अगर पूरे का पूरा क़ुरआन भी मुफ़्त तक़्सीम कर दिया जाए तो वह इससे कोई ख़तरा महसूस नहीं करता।

इस तरह दीन को शैतान के लिए बिलकुल ग़ैर-नुक़सानदेह और बेख़तर बना चुकने के बाद अब आप लोग दूसरी ख़िदमत यह अंजाम देना चाहते हैं कि अगर दीन की वही दावत क़ुरआन व सुन्नत की इन्हीं अस्ल इस्तिलाहों में पेश की जाए और शैतान व उसके दोस्त उसपर न भड़कें तो आप उसे इस बात का सुबूत क़रार देते हैं कि यह दीन की दावत ही नहीं है या यह हक़ नहीं है। हम इस वक़्त इस कोशिश में लगे हुए हैं कि इस्लाम की उन तमाम इस्तिलाहों (शब्दावलियों) में फिर वही मानी और भावार्थ पैदा करें जो वास्तव में उनमें

निहित थे और इस्लाम के कलिमे को मानने और बोलनेवाले इसके पूरे मानी के साथ न सिर्फ़ मानें और बोलें, बल्कि अपनी पूरी ज़िन्दगी में उसी शऊर का इज़हार भी करें। हमारी इस कोशिश को पूरी तरह कामयाब होने में ज़ाहिर है कि अभी देर लगेगी, और जब तक इसके नतीजे सामने नहीं आते शैतान और उसके दोस्त मुतमइन रहेंगे और दूसरे मोर्चों पर अपनी ताक़त लगाते रहेंगे। ख़ास तौर से जबकि उन्हें यह भी इत्मीनान है कि एह्या-ए-दीन (दीन के पुनरुत्थान) की इस कोशिश को मिटाने के लिए आप हज़रात काफ़ी हो सकते हैं तो फिर वे शहीदों का ख़ून अपनी गर्दन पर क्यों लें? अलबत्ता अगर अपनी इस जिद्दोजुहद में हम कामयाब हो गए और आपके फ़ितनों से बख़ैर बच निकले तो नामुमकिन नहीं कि सूरतेहाल इससे भी ज़्यादा सख़्त हो जितना सख़्त आप इसे देखना चाहते हैं। मगर अंदेशा है और ख़ुदा करे कि हमारा यह अंदेशा ग़लत निकले कि आप उस वक़्त भी हमारा साथ न देने के लिए इस क़िस्म का कोई बहाना तलाश कर लेंगे, जैसा कि आज आपने तलाश कर लिया है।

6. सूबा सरहद के अरकान ने अपने रास्ते की जिन रुकावटों का ज़िक्र किया है वे बेशक बहुत वज़नी रुकावटें हैं और हर ऐसे इलाक़े में जहाँ तास्सुब, ज़िद और गर्ममिज़ाजी का ज़ोर हो, ऐसी रुकावटों का मौजूदा होना फ़ितरी है। लेकिन मैं अपने रुफ़क़ा को यह अच्छी तरह समझा देना चाहता हूँ कि हिकमत के साथ तबलीग़ जबकि वह सब्र और बरदाश्त और लगातार मेहनतों के साथ हो, वह ज़बरदस्त हथियार है जिससे विरोधों के बड़े-बड़े पहाड़ कट जाते हैं और रास्ता हमवार हो जाता है। जिन लोगों को रूसी-तुर्किस्तान के हालात का इल्म है, वे जानते हैं कि अब से पच्चीस साल पहले वहाँ इस्लाम के ख़िलाफ़ ज़रा-सी भी भाप भी मुँह से नहीं निकाली जा सकती थी, लेकिन कम्युनिस्टों ने जिस हिकमत व सब्र के साथ अपने इलहाद (नास्तिकता) और माद्दापरस्ताना प्रोग्राम की तबलीग़ की, उसका नतीजा यह हुआ कि कुछ सालों के ही भीतर इस्लाम के इस पुराने क़िले की जड़ें हिल गईं और ख़ुद उन्हीं मुसलमानों ने जो बज़ाहिर इस्लाम में बड़े पुख़्ता थे, कम्युनिज़्म के प्रचार से प्रभावित होकर अपने हाथों से इस्लाम की बुनियादें ढा दीं।

अगर हिकमत व सब्र के साथ बातिल यह सब कुछ कर सकता है, जबकि वह इनसानी फ़ितरत के प्रतिकूल है, तो मैं नहीं समझता कि हक़ कम से कम इतना ही कुछ क्यों नहीं कर सकता, जबकि वह इनसानी फ़ितरत के अनुकूल है। अतः हालात इस वक़्त चाहे कितने ही मुख़ालिफ़ हों इनसे हिम्मत न हारिए।

किताब व सुन्नत से और दुनिया के तजुर्बों से तबलीग़ (प्रचार-प्रसार) की हिकमत सीखिए और वे ख़ूबियाँ अपने अंदर पैदा कीजिए जिनसे बंजर ज़मीनों को फ़सल के लिए तैयार किया जा सकता है। इसके बाद आप देखेंगे कि ख़ुदा के फ़ज़्ल से सारी रुकावटें दूर होकर रहेंगी।

नोट : सूबा सरहद में इस वक़्त तक बाक़ायदा जमाअत नहीं थी। सिर्फ़ कुछ अरकान थे जो अकेले-अकेले अलग-अलग जगहों पर रह रहे थे। मगर इस इजलास के बाद अमीर जमाअत की हिदायत के मुताबिक़ बाक़ायदा जमाअत की तशकील कर दी गई और जनाब सरदार अली साहब (मोज़ा सेरे, डाकख़ाना तख़्त भाई, ज़िला पेशावर) इस सूबे के लिए क़य्यिम मुक़र्रर किए गए।

तीसरा इज्लास

(7 जमादुल अव्वल 1364 हिजरी तदनुसार 20 अप्रैल 1945 दिन जुमा 9 बजे सुबह)

यह इज्लास ठीक वक़्त पर मस्जिद में हुआ। सबसे पहले चौधरी ग़ुलाम मुहम्मद साहब ने सूबा सिंध के हालात संक्षेप में बयान किए और उन कारणों को भी संक्षेप में पेश किया जिनकी वजह से अब तक सिंध के लोग हमारी तहरीक से अप्रभावित रहे हैं। इसके बाद जे. बशीर अहमद साहब ने बम्बई (मुम्बई) की रिपोर्ट पढ़कर सुनाई। फिर रियासत हैदराबाद के विभिन्न स्थानों की रिपोर्टें पेश हुईं। इसके बाद सूबा मद्रास, मालावार और मैसूर की रिपोर्टें पढ़ी गईं। आख़िर में अमीर जमाअत ने इन रिपोर्टों पर निम्न तबसिरा किया—

1. रात से अब तक जो रिपोर्टें पेश हुई हैं उन्हें सुनने से यह अंदाज़ा हुआ कि हमारे जमाअत के रुफ़क़ा अपनी रिपोर्टें पेश करने में ग़ैर-ज़रूरी तफ़्सीलात शामिल कर देते हैं और ज़रूरी तफ़्सीलात कभी-कभी छोड़ जाते हैं। इस तरीक़े का सुधार होना चाहिए। रिपोर्टों में ऐसी चीज़ें नहीं आनी चाहिएँ जो सिर्फ़ मक़ामी हैसियत रखती हों और जिन्हें बयान करने या न करने का अस्ल मामलात को समझने में कोई फ़ायदा न हो। इसी तरह रिपोर्टों में लोगों या जमाअतों के नाम भी कम से कम आने चाहिएँ, न शिकायत के पहलू से और न तारीफ़ के पहलू से। मरकज़ को जो रिपोर्टें भेजी जाती हैं उनमें तो ऐसी चीज़ें आने में कोई हरज नहीं, लेकिन इज्तिमा में पेश करने के लिए जो रूदादें तैयार की जाएँ, उन्हें ऐसी चीज़ों से ख़ाली रहना चाहिए। दरअस्ल जिस ग़रज़ के लिए हम इज्तिमा में रूदादें पेश करते हैं, वह सिर्फ़ यह है कि हमारे अरकान को यह मालूम रहे कि विभिन्न इलाक़ों में यह तहरीक किस रफ़्तार से चल रही है। कहाँ किस-किस क़िस्म की रुकावटें आ रही हैं। विभिन्न मक़ामात के अरकान किन-किन तरीक़ों से काम कर रहे हैं। किन-किन हलक़ों में हमारे ख़यालात फैल रहे हैं और कहाँ-कहाँ हालात पुरउम्मीद या मायूसकुन हैं।

2. जहाँ हमारी मक़ामी जमाअतों या इंफ़िरादी तौर पर हमारे किसी मक़ामी रुक्न ने 'दारुल मुताला' (अध्ययन-केन्द्र) क़ायम किया हो वहाँ उन्हें लोगों को सिर्फ़ किताबें देने पर ही बस नहीं करना चाहिए, बल्कि इसपर भी निगाह रखनी

चाहिए कि कौन लोग क्या पढ़ते हैं और किस हद तक दिलचस्पी लेते हैं। फिर उन लोगों से व्यक्तिगत रूप से मिलने और विचार-विमर्श करने की भी कोशिश होनी चाहिए, ताकि उन्हें धीरे-धीरे अपनी विचारधारा से क़रीब लाया जाए। अगर उनके कुछ सन्देह हों तो वे दूर किए जाएँ और यह अंदाज़ा होता रहे कि किस क़िस्म के लोग किस-किस हद तक हमारे ख़यालात से मुतास्सिर हैं और उनकी हमदर्दी और हमख़याली से कहाँ तक फ़ायदा उठाया जा सकता है। 'दारुल मुताला' क़ायम करना तो बिलकुल ऐसा है जैसे बीज बोना। लेकिन आप हवा की तरह सिर्फ़ बीज फैलाने ही पर बस न करें, बल्कि किसान की-सी हैसियत अपनाएँ जो ज़मीन में बीज डालने के बाद बराबर उसे सींचता है और उसकी देख-रेख करता रहता है, यहाँ तक कि खेती पककर तैयार हो जाए।

3. मुझे ऐसा महसूस होता है कि कुछ मक़ामी जमाअतों में अमीर के चुनाव में कुछ अंजुमनों की सदारत (अध्यक्षता) का-सा रंग अपना लिया गया है। यह मंसब दरअस्ल मक़ामी लीडरशिप का मंसब है। जो शख़्स जमाअत में सबसे योग्य नज़र आए उसे चुनना चाहिए। मगर किसी के सिर ज़बरदस्ती इस मंसब को चिपकाना न चाहिए। इसी तरह जिस शख़्स को अपने अंदर इस मंसब को सँभालने की योग्यता नज़र आए या महसूस हो कि कोई दूसरा इतनी योग्यता भी नहीं रखता जितनी उसके अंदर है तो उसे बिला वजह इंकिसार करके ज़िम्मेदारी सँभालने से इनकार नहीं करना चाहिए। यह काम बहरहाल करने का है और हममें से हर एक में यह जज़्बा होना चाहिए कि अगर कोई इसकी ज़िम्मेदारी सँभालने के लिए नहीं उठता तो उसे उठना है।

4. सिंध के हालात पर ग़ौर करने से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि जब तक सिंधी भाषा में काफ़ी लिट्रेचर तैयार न हो जाए, हमें उर्दू ज़बान के ज़रिए से उस पंजाबी वर्ग को जो सिंध में आबाद है, या उन थोड़े से उर्दू-भाषी सिंधी लोगों को जो वहाँ मिल सकें मुतास्सिर करने की कोशिश करनी चाहिए। फिर उनके ज़रिए ख़ालिस सिंधी बोलनेवाले लोगों में अपने विचारों को फैलाया जा सकता है। सिंधी जनता की जिहालत और उनकी क़बाइली अस्बियत (विद्वेष) और उनके अंदर ज़रपरस्ती (धन-लोलुपता) का ज़ोर होना, बिला शुबह बड़ी रुकावटें हैं। लेकिन इन चीज़ों से घबराना नहीं चाहिए। काम करने का ढंग आ जाने और तबलीग़ की हिकमत सीख लेने के बाद अगर आप सब्र, तहम्मुल (धैर्य) और लगातार मेहनत के साथ काम करेंगे तो आप ख़ुद देख लेंगे कि ये रुकावटें दूर होती चली जाएँगी और वही पब्लिक जो आज आपकी बात सुनने को तैयार नहीं

है, ख़ुद इन रुकावटों को रास्ते से हटाने में आपकी मददगार बन जाएगी।

5. लोगों से अपने कामों में आर्थिक सहयोग हम किस हालत में क़बूल कर सकते हैं—इस बारे में जमाअत की पॉलिसी को मैं फिर बयान कर देना चाहता हूँ, क्योंकि कुछ रिपोर्टों से अंदाज़ा हुआ कि हमारे जमाअत के अरकान अभी इस पॉलिसी को अच्छी तरह नहीं समझे हैं। हम माली इआनत सिर्फ़ उन लोगों से क़बूल कर सकते हैं जो अव्वल तो हमारे मक़सद से अच्छी तरह वाक़िफ़ हों और इसके साथ पूरी हमदर्दी रखते हों। दूसरे, उन्हें हमारे तरीक़ेकार से पूरा इत्तिफ़ाक़ हो और हम पर व्यक्तियों के रूप में और जमाअत की हैसियत से भरोसा हो। तीसरे, यह कि वे रुपया या किसी शक्ल में माल देने के बाद किसी क़िस्म की कोई शर्त हम पर न लगाएँ; न अपने रुपये के ज़रिए से हमारे काम में किसी तरह का हस्तक्षेप करने की कोशिश करें और न हमारी स्कीम से बाहर कोई काम हमारे लिए तय करें कि वह काम उनके रुपये से किया जाए। अलबत्ता हमारे अपने प्रस्तावित कामों में से किसी के बारे में वे यह इच्छा प्रकट कर सकते हैं कि उनका धन फ़लाँ काम में ख़र्च हो। चौथे, यह कि उनके अंदर इस क़िस्म की कोई ख़्वाहिश न पाई जाए कि उनके नाम की शोहरत हो, या हमारा कोई काम उनके नाम से मंसूब हो, या शख़्सी तौर पर हममें से कोई उनका शुक्रगुज़ार हो, या जमाअती तौर पर हम उनके एहसानमंद हों। जिसे भी हमारे काम में धन देना हो वह ख़ालिस ख़ुदा के लिए दे, ख़ुदा ही से बदले का उम्मीदवार हो और अल्लाह के कलिमे की सरबुलंदी के सिवा और किसी चीज़ को अपने माली ईसार (त्याग) का बदला न समझे। यह हमारी मुस्तक़िल पॉलिसी है और इसमें किसी बड़े से बड़े इनसान की ख़ातिर या किसी बड़ी से बड़ी रक़म की ख़ातिर भी कोई तब्दीली नहीं की जा सकती।

6. जो तालीमी, तबलीग़ी, इस्लाही (सुधारवादी) या किसी और क़िस्म के इदारे (संस्थाएँ) मुल्क में क़ायम हैं या आइंदा क़ायम हों, उनके बारे में भी मैं जमाअत की पॉलिसी की तशरीह कर देना ज़रूरी समझता हूँ। क्योंकि इस मामले में भी मुझे कुछ अरकाने जमाअत का व्यवहार सुधारने योग्य नज़र आया है। इस क़िस्म के इदारे अगर पूरी तरह से हमारी जमाअत के हवाले कर दिए जाएँ और हमारी पॉलिसी के मुताबिक़ चल सकें, यहाँ तक कि अगर हम उन्हें ग़ैर-ज़रूरी समझकर या ग़ैर-मुफ़ीद पाकर तोड़ना चाहें तो तोड़ भी सकें. . . तब तो हमारी जमाअत का कोई रुक्न उन्हें चलाने की ज़िम्मेदारी अपने हाथ में ले सकता है। लेकिन अगर यह सूरत न हो तो किसी जमाअत के रुक्न को उन्हें

चलाने की ज़िम्मेदारी क़बूल नहीं करनी चाहिए। वह अगर आर्थिक कारणों से मजबूर हो तो इस क़िस्म के किसी इदारे में मुलाज़िम की हैसियत से काम कर सकता है। लेकिन उनका ज़िम्मेदार (पदाधिकारी) जमाअत का रुक्न नहीं बन सकता, क्योंकि इस सूरत में वह इदारा बिला वजह हमारी तरफ़ मंसूब होगा। उसके कामों की जवाबदेही जमाअत पर आयद होगी और इन इदारों को चलाने में जो नामुनासिब तरीक़े आम तौर पर अपनाए जाते हैं उन्हें न चाहते हुए भी हमारे रुक्न को अपनाने पड़ेंगे और इससे जमाअत की अख़लाक़ी पोज़ीशन मुतास्सिर होगी।

इसके बाद इज्लास बर्ख़ास्त हुआ और लोग जुमा और खाने की तैयारी में लग गए।

क़ानूनी और हक़ीक़ी इस्लाम का फ़र्क़

ठीक डेढ़ बजे जुमे की दूसरी अज़ान हुई और अमीर जमाअत ने हम्द व सना के बाद जुमे का ख़ुतबा इरशाद फ़रमाया, जो यह है—

दीनी भाइयो ! अल्लाह तआला अपनी पाक किताब क़ुरआन मजीद में फ़रमाता है—

> "ऐ मुहम्मद कहो, मेरी नमाज़ और मेरी तमाम इबादतें, मेरा जीना और मेरा मरना सब कुछ अल्लाह के लिए है। जो सारी कायनात का मालिक है। उसका कोई शरीक़ नहीं और इसी का मुझे हुक्म दिया गया है और सबसे पहले मैं उसकी इताअत में सिर झुकता हूँ।"

इस आयत की तशरीह नबी (सल्ल०) के इस इरशाद से होती है—

> "जिसने किसी से दोस्ती व मुहब्बत की तो ख़ुदा के लिए की और दुश्मनी की तो ख़ुदा के लिए की, किसी को दिया तो ख़ुदा के लिए दिया और किसी से रोका तो ख़ुदा के लिए रोका, उसने अपने ईमान को मुकम्मल कर लिया, यानी वह पूरा मोमिन हो गया।"

पहले जो आयत मैंने आपके सामने पेश की है, उससे मालूम होता है कि इस्लाम का तक़ाज़ा यह है कि इनसान अपनी बंदगी को और अपने जीने-मरने को सिर्फ़ अल्लाह के लिए ख़ालिस कर ले और अल्लाह के सिवा किसी को उसमें शरीक न करे, यानी न तो उसकी बंदगी अल्लाह के अलावा किसी और के लिए हो और न उसका जीना-मरना। इसकी जो तशरीह नबी (सल्ल०) की ज़बान से मैंने आपको सुनाई है, उससे मालूम होता है कि आदमी की मुहब्बत और दुश्मनी और अपनी दुनियावी ज़िन्दगी के मामलात में उसका लेन-देन मुकम्मल तौर पर ख़ुदा के लिए होना ईमान का ऐन तक़ाज़ा है। इसके बग़ैर ईमान ही मुकम्मल नहीं होता, यह तो दूर की बात है कि ईमान के ऊँचे दर्जों का दरवाज़ा खुल सके। जितनी कमी इस मामले में होगी उतनी ही कमी आदमी के ईमान में होगी, और जब इस हैसियत से आदमी मुकम्मल तौर पर ख़ुदा का हो जाए तब कहीं उसका ईमान मुकम्मल होता है।

कुछ लोग यह समझते हैं कि इस क़िस्म की चीज़ें सिर्फ़ ऊँचे मर्तबों का

दरवाज़ा खोलती हैं, वरना ईमान व इस्लाम के लिए इनसान के भीतर यह कैफ़ियत पैदा होना शर्त नहीं है। यानी दूसरे शब्दों में इस कैफ़ियत के बग़ैर भी इनसान मोमिन व मुस्लिम हो सकता है। मगर यह एक ग़लतफ़हमी है और इसके पैदा होने की वजह यह है कि आम तौर पर फ़िक़ही और क़ानूनी इस्लाम तथा उस हक़ीक़ी इस्लाम में जो ख़ुदा के यहाँ मोतबर हैं, फ़र्क़ नहीं करते। फ़िक़ही व क़ानूनी इस्लाम में आदमी के दिल का हाल नहीं देखा जाता और न ही देखा जा सकता है, बल्कि सिर्फ़ उसके ज़बानी इक़रार को और इस बात को देखा जाता है कि वह अपने अंदर उन लाज़िमी अलामतों को नुमायाँ करता है या नहीं, जो ज़बानी इक़रार की पुष्टि के लिए ज़रूरी हैं। अगर किसी शख़्स ने ज़बान से अल्लाह और रसूल (सल्ल०), क़ुरआन और आख़िरत तथा दूसरी ईमानियात को मानने का इक़रार कर लिया और इसके बाद वे ज़रूरी शर्तें भी पूरी कर दीं जिनसे उसके मानने का सुबूत मिलता है तो वह इस्लाम के दायरे में ले लिया जाएगा। और सारे मामले उसके साथ मुसलमान समझकर किए जाएँगे। लेकिन यह चीज़ सिर्फ़ दुनिया के लिए है और दुनियावी हैसियत से वह क़ानूनी व तमद्दुनी (सांस्कृतिक) बुनियाद मौजूद कराती है, जिसपर मुस्लिम सोसायटी की तामीर की गई है। इसका हासिल इसके सिवा कुछ नहीं है कि ऐसे इक़रार के साथ जितने लोग मुस्लिम सोसाइटी में दाख़िल हों उन्हें एक-दूसरे पर शरई, क़ानूनी, अख़लाक़ी और सामाजिक हुक़ूक़ हासिल हो जाएँ। उनके बीच शादी-विवाह के ताल्लुक़ात क़ायम हों, मीरास तक़सीम हो और दूसरे सांस्कृतिक संबंध वुजूद में आएँ। लेकिन आख़िरत में इनसान की निजात और उसका मुस्लिम व मोमिन क़रार दिया जाना और अल्लाह के प्यारे बंदों में शुमार होना इस क़ानूनी इक़रार पर आधारित नहीं है। बल्कि वहाँ अस्ल चीज़ आदमी का दिली इक़रार, उसके दिल का झुकाव और उसका स्वेच्छा से अपने आपको पूरे तौर पर ख़ुदा के हवाले कर देना है। दुनिया में जो ज़बानी इक़रार किया जाता है वह तो सिर्फ़ शरअ के क़ाज़ी, आम इनसानों और मुसलमानों के लिए हैं क्योंकि वे सिर्फ़ जाहिर ही को देख सकते हैं। मगर अल्लाह आदमी के दिल और उसके बातिन (अन्दर) को देखता है और उसके ईमान को नापता है। उसके यहाँ आदमी को जिस हैसियत से जाँचा जाता है वह यह है कि क्या उसका जीना-मरना और उसकी वफ़ादारियाँ और उसकी इताअत व बंदगी और उसकी ज़िन्दगी का पूरा कारनामा अल्लाह के लिए है या किसी और के लिए। अगर अल्लाह के लिए है तो वह मुस्लिम व मोमिन है और अगर किसी और के लिए है तो वह न मुस्लिम

है न मोमिन। इस हैसियत से जो जितना कच्चा है, उतना ही उसका ईमान और इस्लाम कच्चा है, चाहे दुनिया में उसकी गिनती कैसे ही बड़े मुसलमानों में होती हो और उसे कितने ही बड़े मर्तबे दिए जाते हों। अल्लाह के यहाँ क़द्र सिर्फ़ इस चीज़ की है कि जो कुछ उसने आपको दिया है वह सब कुछ आपने उसकी राह में लगा दिया या नहीं। अगर आपने ऐसा कर दिया तो आपको वही हक़ दिया जाएगा जो वफ़ादारों को और बंदगी का हक़ अदा करनेवालों को दिया जाता है। और अगर आपने किसी चीज़ को ख़ुदा की बंदगी से अलग करके रखा तो आपका यह इक़रार कि आप मुस्लिम हुए यानी यह कि आपने अपने आपको पूरी तरह से ख़ुदा के हवाले कर दिया, सिर्फ़ एक झूठा इक़रार है जिससे दुनिया के लोग धोखा खा सकते हैं, जिससे फ़रेब खाकर मुस्लिम सोसायटी आपको अपने अंदर जगह दे सकती है, जिससे दुनिया में आपको मुसलमानों के से तमाम हुक़ूक़ मिल सकते हैं, लेकिन इससे फ़रेब खाकर ख़ुदा अपने यहाँ आपको वफ़ादारों में जगह नहीं दे सकता।

यह क़ानूनी और हक़ीक़ी इस्लाम का फ़र्क़ है जो मैंने आपके सामने बयान किया है। अगर आप इसपर ग़ौर करेंगे तो आपको मालूम होगा कि इसके नतीजे सिर्फ़ आख़िरत ही में भिन्न नहीं होंगे, बल्कि दुनिया में भी एक बड़ी हद तक भिन्न होंगे। दुनिया में जो मुसलमान पाए गए हैं या आज पाए जाते हैं, उन सबको दो क़िस्मों में बाँटा जा सकता है। एक क़िस्म के मुसलमान वे जो ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) का इक़रार करके इस्लाम को एक मज़हब की हैसियत से मान लें मगर अपने इस मज़हब को अपनी कुल ज़िन्दगी का महज़ एक जुज़ (अंश) और एक शोबा (विभाग) ही बनाकर रखें। इस ख़ास जुज़ और शोबे में तो इस्लाम के साथ अक़ीदत, इबादतगुज़ारियाँ हो, तस्बीह व मुसल्ला हो, ख़ुदा का ज़िक्र हो, खाने-पीने और कुछ समाजी मामलों में परहेज़गारियाँ हों और वह सब कुछ हो जिसे मज़हबी तर्ज़ेअमल कहा जाता है, मगर इस शोबे के सिवा उनकी ज़िन्दगी के दूसरे तमाम पहलू उनके मुस्लिम होने की हैसियत से आज़ाद हों। वह मुहब्बत करें तो अपने नफ़्स, मफ़ाद, मुल्क, क़ौम या किसी और की ख़ातिर करें। वह दुश्मनी करें और किसी से जंग करें तो वह भी ऐसे ही किसी दुनियावी या नफ़्सानी ताल्लुक़ के आधार पर करें। उनके कारोबार, लेन-देन, मामलात, ताल्लुक़ात, उनका अपने बाल-बच्चों, अपने ख़ानदान, सोसाइटी और अपने मुहल्लेवालों के साथ बर्ताव सबका सब एक बड़ी हद तक दीन से आज़ाद और दुनियावी हैसियतों पर आधारित हो। एक ज़मीनदार की हैसियत से, एक

ताजिर की हैसियत से, एक शासक की हैसियत से उनकी अपनी एक स्थाई अलग हैसियत हो, जिससे उनके मुसलमान होने की हैसियत से चाहे आंशिक तौर पर मुतास्सिर या मंसूब होना दिखाई दे, लेकिन हक़ीक़त में उन्हें इस्लाम से कोई ताल्लुक़ न हो।

दूसरी क़िस्म के मुसलमान वे हैं जो अपनी पूरी शख़्सियत को और अपने सारे वुजूद को इस्लाम के अंदर पूरी तरह दे दें। उनकी सारी हैसियतें उनके मुसलमान होने की हैसियत में गुम हो जाएँ। वे बाप हों तो मुसलमान की हैसियत से, बेटे हों तो मुसलमान होने की हैसियत से, शौहर या बीवी हों तो मुसलमान की हैसियत से; ताजिर, ज़मींदार, मज़दूर, मुलाज़िम या पेशेवर हों तो मुसलमान की हैसियत से। उनके जज़बात, ख़्वाहिशें, नज़रियात, ख़यालात और उनकी रायें; उनकी नफ़रत और रग़बत, उनकी पसंद और नापसंद सब कुछ इस्लाम के अधीन हो। उनके दिल व दिमाग़ पर, उनकी आँखों और कानों पर, उनके पेट और शर्मगाहों पर, हाथ-पैरों पर, जिस्म व जान पर इस्लाम का मुकम्मल क़ब्ज़ा हो। न उनकी मुहब्बत इस्लाम से आज़ाद हो, न दुश्मनी। किसी से मिलें तो इस्लाम के लिए मिलें और किसी से लड़ें तो इस्लाम के लिए लड़ें। किसी को दें तो इसलिए दें कि इस्लाम का तक़ाज़ा यही है कि उसे दिया जाए और किसी से रोकें तो इसलिए रोकें कि इस्लाम यही कहता है कि इससे रोका जाए। उनका यह तर्ज़ेअमल सिर्फ़ इंफ़िरादी हद तक न हो, बल्कि उनकी इज्तिमाई ज़िन्दगी भी सरासर इस्लाम की बुनियाद ही पर क़ायम हो। एक जमाअत की हैसियत से उनकी हस्ती सिर्फ़ इस्लाम के लिए क़ायम हो और उनका सारा इज्तिमाई बर्ताव इस्लाम के उसूलों ही पर आधारित हो।

ये दो क़िस्म के मुसलमान हक़ीक़त में एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं चाहे क़ानूनी तौर पर दोनों पर मुसलमान शब्द लागू होता हो। पहली क़िस्म के मुसलमानों का कोई कारनामा इस्लाम के इतिहास में उल्लेखनीय या गर्व करने योग्य नहीं है। उन्होंने हक़ीक़त में कोई ऐसा काम नहीं किया है जिसने विश्व-इतिहास पर कोई इस्लामी चिह्न छोड़ा हो। इस्लाम को अगर अवनति प्राप्त हुई है तो ऐसे ही लोगों के कारण हुई है। ऐसे ही मुसलमानों की बहुलता मुस्लिम सोसायटी में हो जाने का नतीजा इस रूप में प्रकट हुआ कि दुनिया के निज़ाम की बागडोर कुफ़्र के क़ब्ज़े में चली गई और मुसलमान उसके मातहत रहकर सिर्फ़ एक सीमित मज़हबी ज़िन्दगी की आज़ादी पर संतुष्ट हो गए। ख़ुदा को ऐसे मुसलमान हरगिज़ नहीं चाहिए थे। उसने अपने नबियों को दुनिया में

इसलिए नहीं भेजा था, न अपनी किताबें इसलिए नाज़िल की थीं कि सिर्फ़ इस तरह के मुसलमान दुनिया में बना डाले जाएँ। दुनिया में ऐसे मुसलमानों के न होने से किसी हक़ीक़ी क़द्र व क़ीमत रखनेवाली चीज़ की कमी नहीं थी, जिसे पूरा करने के लिए वह्य के सिलसिले व नुबूवत को जारी करने की ज़रूरत पेश आई। दरहक़ीक़त जो मुसलमान ख़ुदा को मतलूब (अपेक्षित) हैं, जिन्हें तैयार करने के लिए नबियों को भेजा गया और किताबें उतारी गईं, और जिन्होंने इस्लामी दृष्टिकोण से कभी कोई उल्लेखनीय काम किया है या आज कर सकते हैं वे सिर्फ़ दूसरे ही क़िस्म के मुसलमान हैं।

यह चीज़ कुछ इस्लाम ही के लिए ख़ास नहीं है, बल्कि दुनिया में किसी विचारधारा (मसलक) का झंडा भी ऐसे अनुयाइयों के हाथों कभी बुलंद नहीं हुआ है जिन्होंने अपने मसलक के इक़रार और उसके उसूलों की पाबंदी को अपनी कुल ज़िन्दगी के साथ सिर्फ़ ज़मीमा (परिशिष्ठ) बनाकर रखा हो और जिनका जीना-मरना अपने मसलक के सिवा किसी और चीज़ के लिए हो।

आज भी आप देख सकते हैं कि एक मसलक के हक़ीक़ी और सच्चे अनुयायी सिर्फ़ वही लोग होते हैं जो दिल व जान से उसके वफ़ादार हैं, जिन्होंने अपनी पूरी शख़्सियत को उसमें गुम कर दिया है और जो अपनी किसी चीज़ को यहाँ तक कि अपनी जान और औलाद तक को उसके मुक़ाबले में कुछ नहीं समझते। दुनिया का हर मसलक ऐसे ही अनुयायी माँगता है, और अगर किसी मसलक को दुनिया में ग़लबा (वर्चस्व) नसीब हो सकता है तो वह सिर्फ़ ऐसे ही अनुयाइयों की बदौलत हो सकता है। अलबत्ता इस्लाम में और दूसरे मसलकों में फ़र्क़ यह है कि दूसरे मसलक अगर अपने माननेवालों से इस तरह मर-मिटने और वफ़ादारी का मुतालबा करते हैं तो यह हक़ीक़त में इनसान पर उनका हक़ नहीं है, बल्कि यह उनका इनसान से एक बेजा मुतालबा है। इसके विपरीत इस्लाम अगर इनसान से इसका मुतालबा करता है तो यह उसका बिलकुल हक़ है।

वे जिन चीज़ों की ख़ातिर इनसान से कहते हैं कि तू अपने आपको और अपनी ज़िन्दगी को और अपनी पूरी शख़्सियत को इनपर क़ुरबान कर दे, उनमें से कोई भी चीज़ ऐसी नहीं है जिसका वास्तव में इनसान पर यह हक़ हो कि उसकी ख़ातिर इनसान अपनी किसी चीज़ को क़ुरबान करे। लेकिन इस्लाम जिस ख़ुदा के लिए इनसान से यह क़ुरबानी माँगता है वह हक़ीक़त में इसका हक़ रखता है कि उसपर सब कुछ क़ुरबान कर दिया जाए। आसमान और ज़मीन में जो कुछ है

अल्लाह का है। इनसान ख़ुद अल्लाह का है, जो कुछ इनसान के पास है और जो कुछ इनसान के अंदर है सब अल्लाह का है और जिन चीज़ों से इनसान दुनिया में काम लेता है वे सब भी अल्लाह की हैं। इसलिए इनसाफ़ और अक़्ल का बिलकुल सही तक़ाज़ा है कि जो कुछ अल्लाह का है वह अल्लाह ही के लिए हो। दूसरों के लिए या ख़ुद अपने मफ़ाद और अपने नफ़्स की पसंद के लिए इनसान जो क़ुरबानी भी करता है, वह दरअस्ल एक ख़यानत है, यह और बात है कि वह ख़ुदा की इजाज़त से हो, और ख़ुदा के लिए जो क़ुरबानी करता है हक़ीक़त में वह हक़ की अदायगी है।

लेकिन इस पहलू को अलग करते हुए मुसलमानों के लिए इन लोगों के तर्ज़ेअमल में एक बड़ा सबक़ है जो अपने बातिल मसलकों की ख़ातिर और अपने नफ़्स के झूठे माबूदों की ख़ातिर अपना सब कुछ क़ुरबान कर रहे हैं और इस दृढ़ता और मज़बूती का सुबूत दे रहे हैं जिसकी मिसाल मुश्किल ही से इनसानी इतिहास में मिलती है। कितनी अजीब बात होगी अगर बातिल के लिए इनसानों की तरफ़ से मर-मिटने और क़ुरबान हो जाने का ऐसा जज़्बा सामने आए और हक़ के लिए उसका हज़ारवाँ हिस्सा भी न हो सके!

ईमान और इस्लाम का यह मेयार जो इस आयत और हदीस में बयान हुआ है, मैं चाहता हूँ कि हम सब अपने आपको इसपर परखकर देखें और इसकी रौशनी में अपना जायज़ा लें। अगर आप कहते हैं कि आपने इस्लाम क़बूल किया और ईमान ले आए तो देखिए कि क्या वाक़ई आपका जीना और मरना ख़ुदा के लिए है? क्या आप इसलिए जी रहे हैं और आपके दिल व दिमाग़ की सारी क़ाबिलियतें, आपके जिस्म व जान की सारी क़ुव्वतें, आपका समय, आपकी मेहनतें क्या इसी कोशिश में लग रही हैं कि ख़ुदा की मरज़ी आपके हाथों पूरी हो और आपके ज़रिए से यह काम अंजाम पाए जो ख़ुदा अपनी मुस्लिम उम्मत से लेना चाहता है? फिर क्या आपने अपनी इताअत और बंदगी को ख़ुदा ही के लिए ख़ास कर दिया है? क्या नफ़्स की बंदगी, ख़ानदान, बिरादरी, दोस्तों, सोसाइटी और हुकूमत की बंदगी, आपकी ज़िन्दगी से बिलकुल ख़ारिज हो चुकी है? क्या आपने अपनी पसंद और नापसंद को सरासर अल्लाह की ख़ुशी के अधीन कर दिया है? फिर देखिए कि वाक़ई आप जिससे मुहब्बत करते हैं ख़ुदा के लिए करते हैं? जिससे नफ़रत करते हैं ख़ुदा के लिए करते हैं? और इस नफ़रत और मुहब्बत में आपके अपने नफ़्स के रुझान का कोई हिस्सा शामिल नहीं रहा है? फिर क्या आपका देना और रोकना भी ख़ुदा की ख़ातिर हो चुका

है? अपने पेट और अपने नफ़्स सहित दुनिया में आप जिसे जो कुछ दे रहे हैं इसी लिए दे रहे हैं कि ख़ुदा ने उसका हक़ मुक़र्रर किया है और उसे देने में सिर्फ़ ख़ुदा की ख़ुशी आपका मक़सद है? और इसी तरह जिससे आप जो कुछ रोक रहे हैं वह भी इसलिए रोक रहे हैं कि ख़ुदा ने उसे रोकने का हुक्म दिया और उसके रोकने में आपको ख़ुदा की ख़ुशनूदी हासिल होने की तमन्ना है?

अगर आप यह कैफ़ियत अपने अंदर पाते हैं तो अल्लाह का शुक्र कीजिए कि उसने आप पर ईमान की नेमत मुकम्मल कर दी है। और अगर इस हैसियत से आप अपने अंदर कमी महसूस करते हैं तो सारी फ़िक्रें छोड़कर बस इसी कमी को पूरा करने की फ़िक्र कीजिए और अपनी तमाम कोशिशों और मेहनतों को इसी पर लगा दीजिए, क्योंकि इसी कमी के पूरा होने पर दुनिया में आपकी कामयाबी और आख़िरत में आपकी निजात का दारोमदार है। आप दुनिया में चाहे कुछ भी हासिल कर लें, उसकी प्राप्ति से उस नुक़सान की भरपाई (क्षतिपूर्ति) नहीं हो सकती जो इस कमी की बदौलत आपको पहुँचेगा। लेकिन अगर यह कमी आपने पूरी कर ली तो चाहे आपको दुनिया में कुछ हासिल न हो, फिर भी आप घाटे में नहीं रहेंगे।

चौथा इज्लास

(7 जमादल अव्वल 1364 हिजरी, जुमा, बाद नमाज़ जुमा)

जुमे की नमाज़ के बाद, फिर इज्लास आयोजित हुआ। चूँकि अमीर जमाअत की तबीअत ख़राब हो गई थी इसलिए इज्लास की कार्रवाई मौलाना अमीन अहसन साहब इस्लाही की निगरानी में शुरू हुई और दक्षिण भारत की बाक़ी रिपोर्टें पेश की गईं। इन रिपोर्टों पर तबसिरा करते हुए मौलाना अमीन साहब ने फ़रमाया—

जो मुश्किलें दक्षिण भारत की जमाअतों ने बयान की हैं, वे कोई बड़ी अहमियत नहीं रखतीं, न उनसे परेशान होने की कोई वजह है, बल्कि हक़ीक़त में ऐसी रुकावटों का तो दिल से इस्तिक़बाल करना चाहिए। जो लोग हमारे लिट्रेचर से दूसरों को रोकते हैं वे तो एक तरह से उसके फैलने में मददगार बन रहे हैं। क्योंकि इनसानी फ़ितरत की ख़ास बात यह है कि जिससे उसे रोका जाता है उसकी तरफ़ वह और ज़्यादा बढ़ती है।

इसके बाद एक साहब ने अपने एक कम्युनिस्ट दोस्त का ख़त पढ़कर सुनाया जिसमें उन्होंने जमाअत के लिट्रेचर से मुतास्सिर होने के बाद अपने विचारों की तब्दीली का हाल तफ़्सील से बयान किया था। इसी दौरान अमीरे जमाअत तशरीफ़ ले आए और बाक़ी कार्रवाई उनकी रहनुमाई में जारी रही।

इसके बाद दिल्ली और उत्तर प्रदेश की रिपोर्टें पेश हुईं। इन रिपोर्टों के सिलसिले में कुछ मशहूर उलेमा के वे फ़तवे भी पढ़कर सुनाए गए जो उन्होंने 'रिसाला दीनियात' के बारे में जारी किए थे। और जिन्हें एक गिरोह इसलिए इस्तेमाल कर रहा था कि यह किताब स्कूलों की दीनी तालीम के पाठ्यक्रमों से ख़ारिज की जाए।

इन रिपोर्टों पर तबसिरा करते हुए अमीरे जमाअत ने फ़रमाया—

1. जैसा कि आप हज़रात ने अपनी रिपोर्टों के दौरान बयान किया है और मैं भी देख रहा हूँ कि कुछ गिरोह बिला वजह यह समझने लगे हैं कि हमारी उनसे कोई दुश्मनी है और इस बिना पर जगह-जगह उन्होंने हमारे रास्ते में रुकावटें डालने और हमारे ख़िलाफ़ बदगुमानियाँ फैलाने का सिलसिला शुरू कर दिया है। हालाँकि हमारी न उनसे कोई लड़ाई है और न हमने कभी उन्हें अपना

मुख़ालिफ़ समझा है। इसमें शक नहीं कि हमने मुसलमानों की विभिन्न जमाअतों के तरीक़ेकार और उनकी सियासी पॉलिसी पर अपने लिट्रेचर में तंक़ीद (समालोचना) की है लेकिन इस तंक़ीद का मक़सद लड़ाई नहीं था, बल्कि सिर्फ़ यह था कि ये जमाअतें हमारे दृष्टिकोण से वाक़िफ़ हों और अगर उनका दिल गवाही दे कि हमारा दृष्टिकोण सही है तो उसे सामने रखते हुए अपने तर्ज़ेअमल को सुधारें। इस क़िस्म की तंक़ीद बहरहाल इस्लाह (सुधार) के लिए ज़रूरी होती है और इसके बग़ैर दुनिया में कहीं भी हालात की इस्लाह नहीं हुआ करती। ऐसी तंक़ीद को हमेशा तरक़्क़ीपसंद और माक़ूलियतपसंद जमाअतें बर्दाश्त करती हैं बल्कि इससे फ़ायदा उठाने की भी कोशिश करती हैं। मगर अफ़सोस है कि हिन्दुस्तान में तंक़ीद को हमेशा दुश्मनी समझा जाता है। आप चाहे किसी पर कितना ही ख़ुलूस और हमदर्दी के साथ तंक़ीद करें और आपकी नीयत ख़ालिस इस्लाह ही क्यों न हो मगर किसी पर तंक़ीद करने के बाद मुश्किल ही से यह आशा की जा सकती है कि वह इसके जवाब में आपको काट खाने पर आमादा न हो जाएगा।

यह सब हिन्दुस्तान के नैतिक एवं बौद्धिक पतन का नतीजा है और अगर इसके कारणों को हम अच्छी तरह समझ लें तो इस तरह की प्रतिक्रियाओं को देखकर हम कभी उत्तेजित न हों, बल्कि उन लोगों के साथ हमदर्दी का या कम से कम सब्र का रवैया अपनाएँ। मैं देखता हूँ कि कहीं-कहीं आप हज़रात की रिपोर्टों में इन विरोधों पर ग़ुस्से और नाराज़गी का रंग पाया जाता है। इस चीज़ को अपने अंदर से निकाल दीजिए। जहाँ-जहाँ आपको इन विरोधों का सामना पेश आए वहाँ निहायत मुनासिब अन्दाज़ से और ठंडे तरीक़े से विरोधियों को समझा दीजिए कि हमारी अस्ल लड़ाई तुमसे नहीं है, बल्कि बातिल निज़ाम से है। हम इसे ग़लत समझते हैं और इसी पर चोट लगाना चाहते हैं। अगर तुमने अपने आपको इस निज़ाम से जोड़ रखा है तो जिस हद तक तुम्हारा उससे जुड़ाव है उसी हद तक कुछ न कुछ तुमपर भी चोट लगेगी। लेकिन हमारा अस्ल निशाना तुम न होगे, बल्कि बातिल निज़ाम ही होगा। लेकिन अगर तुम्हारा इस निज़ाम से कोई रिश्ता नहीं है तो हमारी किसी सरगर्मी से तुम्हें परेशान होने की कोई वजह नहीं है। जो तीर दूसरी तरफ़ छोड़ा जा रहा हो उसे तुम बिला वजह अपने सीने की तरफ़ क्यों खींचना चाहते हो?

इस समझाने-बुझाने के बाद जो लोग अपनी विरोधपूर्ण हरकतों से न रुकें तो उन्हें उनके हाल पर छोड़ दीजिए। उनकी बातों का न जवाब दीजिए, न उनपर

उत्तेजित होइए। ख़ूब समझ लीजिए कि उनकी विरोधपूर्ण हरकतें, उनकी इश्तेहारबाज़ियाँ, उनके निराधार आरोप और उनकी तमाम मुख़ालिफ़ाना तदबीरें ख़ुद उन्हीं के लिए नुक़सानदेह साबित होंगी; बशर्ते कि आपका रवैया बहुत ही सज्जनतापूर्ण, नर्मी और बरदाश्तवाला हो और आप बिलकुल सदाचारी की तरह सीधे-सीधे अपना काम करते चले जाएँ। जब एक तरफ़ आपकी रविश यह होगी और दूसरी तरफ़ उनका मुख़ालिफ़ाना रवैया अख़लाक़ और सच्चाई से दूर होता चला जाएगा तो आप देखेंगे कि पब्लिक का दिल उनकी हरकतों से ख़ुद ब ख़ुद उठने लगेगा और लोग उनसे कटकर आपकी तरफ़ आने लगेंगे। लेकिन अगर आपने उत्तेजित होकर उनके जवाब में टकराव शुरू कर दिया तो जैसे वे हैं वैसे ही आप होकर रहेंगे और इस लड़ाई में उनकी तरह आप भी खो जाएँगे। दरअस्ल वह शैतान है जो हक़ के अलमबरदारों को उनके रास्ते से हटाने के लिए उत्तेजित करता और नफ़्सानी लड़ाई लड़ने पर आमादा करता है। इस सिलसिले में आप हज़रात मेरे उन हवाशी (फ़ुट नोट्स) को ज़रूर पढ़ें जो मैंने तफ़हीमुल क़ुरआन में सूरा आराफ़ के आख़िरी रुकू पर लिखे हैं। इशाअल्लाह वे बहुत मुफ़ीद साबित होंगे।

2. इससे पहले बहुत-से ख़ुतूत और यहाँ जो रिपोर्टें पेश हुई हैं उनसे भी अंदाज़ा हुआ कि हमारे रुफ़क़ा और हमख़याल लोगों में कम्युनिज़्म के बढ़ते हुए तूफ़ान से एक बेचैनी पैदा हो गई है। इसमें शक नहीं कि कम्युनिज़्म की तहरीक अब रूस की कामयाबी की बदौलत बहुत ज़ोर पकड़ गई है और हुकूमत ने अपने हितों की ख़ातिर उसे सशक्त होने का जो मौक़ा दिया है, वह भी इसके लिए काफ़ी मुफ़ीद साबित हुआ है। लेकिन इन चीज़ों से परेशान होने की कोई ज़रूरत नहीं है। बेचैनी के साथ अगर कोई क़दम उठाया गया तो वह फ़ायदेमंद होने के बजाय उलटा नुक़सानदेह साबित होगा। यह सही है कि कम्युनिज़्म अवाम के घटिया जज़बात और नफ़्स की ख़्वाहिशों से अपील करने के कारण आग की तरह फैलने की ख़ुसूसियत रखता है। यह भी सही है कि एक लंबी मुद्दत से इसका बराबर प्रोपेगंडा होता रहा है, उसके पास एक बहुत ही ताक़तवर लिट्रेचर और बड़ी तादाद में कार्यकर्ता मौजूद हैं। दुनिया के विभिन्न देशों में उसका बहुत कामयाब प्रचार हो चुका है और एक विशाल देश उसका ध्वजावाहक है, जिसे हाल की विजयों ने ग़ैर-मामूली असर प्रदान कर दिया है।

इन कारणों से यह गुमान करना नामुमकिन नहीं है कि एक मर्तबा यह तहरीक एक सैलाब की तरह हमारे देश और अन्य बहुत-से देशों पर छा जाएगी।

लेकिन इन पहलुओं के साथ कुछ दूसरे पहलू भी हैं जिन्हें हम नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते। हिन्दुस्तान में और इस तरह के ग़ुलाम ज़ेहनियत रखनेवाले देशों में इस तहरीक की तरक़्क़ी पूरी तरह रूस की ताक़त पर निर्भर है। जिस वक़्त रूस जर्मनी से पिट रहा था, आपने देखा होगा कि उस वक़्त हिन्दुस्तान में कम्युनिज़्म भी दम तोड़ रहा था। जब रूस नये सिरे से सँभलकर उठा और जर्मनी के मुक़ाबले में कामयाबी हासिल करता चला गया तो यहाँ भी कम्युनिज़्म के जिस्म में रूह दौड़ने लगी। इसलिए यह नतीजा निकालना सही है कि कम्युनिज़्म का गिरना और उठना रूस के दामन के साथ बँधा हुआ है। लेकिन रूस का हाल यह है कि अब वह एक अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की पोज़ीशन से हटते-हटते ठीक उस मक़ाम पर आ रहा है जहाँ नाज़ी जर्मनी खड़ा था, यानी उसका कम्युनिज़्म अब राष्ट्रीय समाजवाद (National Socialism) है और वह बहुत तेज़ी के साथ साम्राज्यवाद (Imperialism) के मैदान में अमेरिका और इंग्लैंड का प्रतिद्वंद्वी बन रहा है। यह चीज़ मुमकिन है कि रूस के साम्राज्यवाद को इतनी जल्दी न ले बैठे, लेकिन एक अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन की हैसियत से कम्युनिज़्म को यक़ीनी तौर पर ले बैठेगी।

एक अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता यक़ीनी तौर पर इस बात पर निर्भर होती है कि उसके ध्वजावाहक व्यक्तिगत, राष्ट्रीय और वर्गीय हितों से ऊपर उठकर समस्त इनसानों को समान रूप से राष्ट्रगत पक्षपात और विद्वेषों के बग़ैर अपना शरीक और हिस्सेदार बनाएँ और सफलता-काल में जो कुछ फ़ायदे उन्हें हासिल हों, उन सबमें अपने तमाम हमख़यालों को बराबर का हिस्सेदार ठहराएँ, यहाँ तक कि उनके भीतर हौसला और कुशादादिली मौजूद हो कि कल तक जिससे उनकी लड़ाई थी, वह भी अगर उनका रास्ता अपना ले तो वे उसके साथ अपने इनतिक़ाम, दुश्मनी और तास्सुबात के सारे जज़बात ख़त्म करके भाइयों का-सा सुलूक करें। ज़ाहिर है कि इसके लिए बहुत ऊँचे दर्जे के अख़लाक़ दरकार हैं। मगर माद्दापरस्त और वह माद्दापरस्त (भौतिकवादी) जिसकी सबसे बड़ी अपील मआशी (आर्थिक) अपील हो, इतने बुलंद अख़लाक़ ला कहाँ से सकता है। यही वजह है कि रूस जितना-जितना दुनियावी कामयाबियों की मंज़िलें तय करता चला गया, उतना ही ज़्यादा क़ौमपरस्त (राष्ट्रवादी) होता चला गया, और आज का रूसी कम्युनिस्ट अपने अंदर इतनी बुलंद हिम्मती नहीं पाता कि जो मुनाफ़े उसे अपनी फ़ौजी कामयाबियों से हासिल हुई हैं उनमें वह अपनी क़ौम के साथ दूसरों को बराबर का शरीक करे। अब वह जो कुछ चाहता है अपनी क़ौम

के लिए चाहता है। अलबत्ता कम्युनिज़्म के लिए अन्तर्राष्ट्रीय अपील को वह सिर्फ़ अपने एक क़ौमी हथियार की हैसियत से इस्तेमाल कर रहा है ताकि विभिन्न क़ौमों में उसके ज़रिए 'फ़िफ़्त कॉलम' पैदा करे और फिर इस फ़िफ़्त कॉलम को हथियार बनाकर अपने राष्ट्रीय साम्राज्यवाद की जड़ें फैलाए। हालाँकि आँखोंवाले उसे अभी से देख रहे हैं, लेकिन जल्द ही वह वक़्त आनेवाला है जब रूस की सियासत इस मामले में बिलकुल नंगी हो जाएगी और उस वक़्त ग़ुलाम क़ौमों के वे लोग जो आज इसे अपना रहनुमा और पेशवा बनाए हुए हैं और इसे मज़लूमों का हिमायती और ग़ुलामों की आज़ादी का अलमबरदार समझ रहे हैं, इससे मायूस हो जाएँगे।

इस बयान से मेरा यह मक़सद नहीं है कि आपको कम्युनिज़्म के ख़तरे से बिलकुल संतुष्ट होकर बैठ जाने का मशविरा दूँ, बल्कि मैं सिर्फ़ यह बताना चाहता हूँ कि कम्युनिज़्म के ख़तरे से जितनी बेचैनी आपमें से कुछ लोग महसूस करते हैं उतनी ज़्यादा बेचैनी की कोई बात नहीं है। इस ख़तरे को जो लोग तेज़ी के साथ क़रीब आता देखते हैं वे चाहते हैं कि जल्दी से कोई जवाबी प्रोपेगंडा शुरू कर दिया जाए या कम्युनिज़्म के ख़िलाफ़ लेखों और किताबों के प्रकाशन का सिलसिला छेड़ दिया जाए या हमारे कारकुन जल्दी से किसानों और मज़दूरों में जाकर कोई ऐसा काम शुरू कर दें जो उन्हें कम्युनिस्टों की गोद से फ़ौरन छीन ले। लेकिन इस तरह जल्दबाज़ी की तदबीरें कारगर नहीं हो सकतीं। मैंने पिछले साल तालीमे बालिग़ान (प्रौढ़ शिक्षा) की स्कीम पेश की थी। वह इसी लिए थी कि हमारे जमाअत के वे अरकान जो अवाम में काम करने की सलाहियत रखते हैं मज़बूत और गहरी बुनियादों पर एक ऐसी अवामी तहरीक की इमारत उठाएँ जो न सिर्फ़ यह कि मेहनतपेशा तबक़ों की अख़लाक़ी और ज़ेहनी इस्लाह करे बल्कि इसके साथ ही उन्हें तमाम आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक फ़ितने फैलानेवाली तहरीकों से भी बचा ले। साथ ही, जिससे धीरे-धीरे हमारे पास आम लोगों में से ऐसे भरोसेमंद कार्यकर्ताओं की एक अच्छी तादाद हासिल होती चली जाए जो बड़े पैमाने पर हमारी अवामी तहरीक को देशभर में फैला सके। जैसा कि मैं इससे पहले इज्तिमा दारुल-इस्लाम और इज्तिमा दिल्ली की तक़रीरों में कह चुका हूँ। इस काम का तरीक़ा यह है कि हमारा हर शिक्षित कार्यकर्त्ता अपने आस-पास की आबादी में से अवाम के तबक़े के आठ-दस आदमियों को तालीम का शौक़ दिलाए और उसे पढ़ाने के लिए बिना मुआवज़ा ख़ुद अपनी ख़िदमात पेश करे। इस शिक्षा के ख़र्च का कोई भार उनपर न डाला जाए। वक़्त तय

करने में भी अपनी सहूलत के बजाय उनकी सहूलत का ज़्यादा ख़याल रखा जाए। जगह भी उनसे न माँगी जाए, बल्कि ख़ुद इसका इन्तिज़ाम किया जाए।

पहले कुछ मुद्दत लगाकर पढ़ने-लिखने के क़ाबिल बना दिया जाए। फिर ख़ुद अपनी जमाअत के लिट्रेचर में से आसान-आसान चीज़ें थोड़ी-थोड़ी पढ़ाई जाएँ। और इस दौरान न सिर्फ़ अपने ख़यालात से उनके ज़ेहन को मुतास्सिर किया जाए बल्कि उनके साथ समानता, हमदर्दी, भाईचारे और आलीज़र्फ़ी का ऐसा बर्ताव किया जाए जिससे उनके दिल को जीता जा सके। उनके दुख-दर्द में शरीक होने की कोशिश कीजिए। उनकी हर मुसीबत और तकलीफ़ में मुमकिन हो तो अमलन काम आइए, वरना कम से कम हमदर्दी का इज़हार अपने व्यवहार से उनपर साबित कीजिए कि आप किसी क़िस्म के भेदभाव के क़ायल नहीं हैं। पढ़े-लिखे और ऊँचे तबक़ों में जो झूठा फ़ख़्र पाया जाता है उसका ज़रा-सा हिस्सा भी आपके अंदर न पाया जाए। इसके साथ-साथ निहायत मुख़्लिसाना तरीक़े से उनकी अख़लाक़ी कमज़ोरियों को दूर करने की कोशिश कीजिए। उनके अन्दर जो इनसान सो रहा है, जिसे आर्थिक तंगी ने, जिहालत ने, सोसायटी की अख़लाक़ी और ज़ेहनीपस्ती ने सुला दिया है उसे जगाइए और उनके अन्दर उस इनसानी अज़मत का शऊर पैदा कीजिए जिसकी बुनियाद इस्लाम और ईमान पर क़ायम होती है।

फिर यह बात भी उनके ज़ेहन में डालिए कि उनकी आर्थिक तंगियों और उनके तमाम दुखों का, जो मौजूदा तहज़ीब ने पैदा कर दिए हैं, सिर्फ़ एक ही इलाज है, और वह यह है कि ज़िन्दगी का निज़ाम ख़ालिस इस्लामी बुनियादों पर क़ायम हो। इस तरह जिन आठ-दस आदमियों को आप तैयार करेंगे वे मानो अवाम में काम करने के लिए आपके तर्बियतयाफ़्ता रुक्न बन जाएँगे और फिर आप उनको उन्हीं के तबक़े में अपने अख़लाक़ी और ज़ेहनी असरात फैलाने का ज़रिया बना सकेंगे। यह तरीक़ेकार अपने नताइज जल्दी नहीं दिखा सकता। जिस तरह एक कम्युनिस्ट कार्यकर्ता थोड़ी मुद्दत के अंदर आर्थिक अपील करके एक मज़दूर-सभा या किसान-सभा खड़ी कर लेता है या मजदूर-संघ (Trade Union) बना डालता है, इस तरह जल्दी से आप कोई भीड़ अपने आस-पास जमा नहीं कर सकेंगे। लेकिन काम करने का जो तरीक़ा मैं आपको बता रहा हूँ उसपर अगर आप अमल करेंगे तो आप देख लेंगे कि कुछ सालों के अंदर एक ऐसी मज़बूत अवामी तहरीक उठ खड़ी होगी जिसका मुक़ाबला करना किसी दूसरी तहरीक के लिए मुशकिल होगा। पेट की अपील पर जमा होनेवाली भीड़

न कभी वह मज़बूती दिखा सकती है जो ऊँचे दर्जे की अख़लाक़ी बुनियादों पर उठनेवाले मुट्ठी-भर लोग दिखा सकते हैं, और न जन-साधारण में पेट के माबूद के पुजारियों को वह अख़लाक़ी असर कभी हासिल हो सकता है जो सच्चे ख़ुदापरस्तों को हासिल हो सकता है।

3. कुछ जगहों की रिपोर्टों से यह मालूम करके बहुत अफ़सोस हुआ कि जब हमारे कारकुनों ने कहीं मज़दूर तबक़े के अंदर कम्युनिस्टों के फैलाए हुए ज़हर को निकालने की कोशिश की तो उस तबक़े के मुसलमानों ने जवाब दिया कि उलमा तो इन कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं के साथ सहयोग कर रहे हैं और उन्होंने हमें यक़ीन दिलाया है कि कम्युनिज़्म से हमारे मज़हब पर कोई आँच नहीं आती। फ़िर आप लोग हमें क्यों डराते हैं कि कम्युनिज़्म हमें बेदीनी की तरफ़ ले जाएगा या यह कि कम्युनिज़्म इस्लाम के ख़िलाफ़ है। हक़ीक़त में हमारे कुछ उलमा किराम हिन्दुस्तान में यह उसी क़िस्म की ग़लती कर रहे हैं जैसी इससे पहले रूसी तुर्किस्तान के उलमा कर चुके हैं और इसका अफ़सोसनाक अंजाम देख चुके हैं। रूसी तुर्किस्तान की साम्यवादी क्रांति कोई बहुत पुरानी चीज़ नहीं है, इसी बीस-पच्चीस साल की मुद्दत में हुई है, और वहाँ इसका यह नतीजा दुनिया देख चुकी है कि जो सरज़मीन हज़ार-बारह सौ साल तक इस्लाम का मज़बूत क़िला बनी हुई थी, जहाँ से बड़े-बड़े इस्लामी उलमा, मुहद्दिस, फ़क़ीह, सूफ़ियों के सिलसिलों (चिश्तिया, नक़्शबंदिया और सहरवरदिया) के पेशवा पैदा हुए; वहाँ आज इस्लाम का नाम भी बाक़ी नहीं है। मस्जिदें और ख़ानक़ाहें क्लबों, थियेटरों और ख़ुदा को न मानने की तालीम के अड्डों में तब्दील हो चुकी हैं और पहले के मुसलमानों की नस्ल से पक्के बेदीन कम्युनिस्ट पैदा हो रहे हैं जिनके नज़दीक अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) महज़ पूँजीपतियों के एक एजेंट थे और उन्होंने अपने वक़्त की आर्थिक व्यवस्था को धार्मिक एवं नैतिक आधार देने के लिए वह्य और रिसालत का ढोंग रचाया था (नऊज़ुबिल्लाह)।

यह शानदार कामयाबी कम्युनिज़्म को उस धरती पर हासिल हुई, जहाँ आज से पच्चीस साल पहले तक पुराने तर्ज़ की मज़हबियत हिन्दुस्तान से बहुत ज़्यादा गहरा रंग रखती थी और इस्लाम से लोगों की अक़ीदत इतनी बढ़ी हुई थी कि कोई शख़्स यह सोच भी नहीं सकता था कि पच्चीस साल के अंदर इस धरती पर कोई इस्लाम का नाम लेनेवाला भी न पाया जाएगा। मगर आपको मालूम है कि कम्युनिज़्म के प्रचारकों को यह कामयाबी कैसे मिली? इसका ज़रिया सिर्फ़ एक था—और वह यह कि कम्युनिज़्म के प्रचारक मासूम चेहरे लिए हुए, दुखी

इनसानियत के हितैषी बनकर उलमा किराम के पास पहुँचे और सबसे पहले उनका एतिमाद हासिल किया। तुर्किस्तान में नये ज़माने के तालीमयाफ़्ता, मगर अक़ीदे से सही मुसलमान जो थोड़े बहुत मौजूद थे, उन्होंने उलमा किराम को सचेत करने की कोशिश की कि यह कम्युनिज़्म की तहरीक हक़ीक़त में इस्लाम के विरुद्ध है। लेकिन उलमा पहले तो बिस्मिल्लाह के गुंबद में बैठे हुए थे और उन्हें नए ज़माने की तहरीक़ों की सीधे तौर पर कोई जानकारी नहीं थी। इसके अलावा वे इन रौशनख़याल मुसलमानों से इस वजह से भी सख़्त नाराज़ थे कि ये लोग 'शरहजामी' और 'मुतव्वल' जैसी किताबों को पाठ्यक्रम से निकाल करके नया तालीमी निसाब (पाठ्यक्रम) बनाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने शरहजामी को रद्द करनेवाले मुसलमानों की बात मानने के बजाय अपना सारा नैतिक सहयोग उन मुलहिदों (नास्तिकों) के लिए वक़्फ़ कर दिया जो क़ुरआन को रद्द करने उठे थे।

फिर जब उलमा के वास्ते से कम्युनिस्टों को तुर्किस्तानी अवाम में एतिमाद व एतिबार हासिल हो गया तो देखते-देखते उन्होंने आम बाशिंदों को मुट्ठी में लेकर देश की राजनीतिक व्यवस्था को पूरी तरह क़ाबू में कर लिया और इसके बाद सबसे पहले जिस गिरोह की ख़बर ली वे यही उलमा और मशाइख़ थे जिनके एतिमाद से फ़ायदा उठाकर उन्होंने हुकूमत हासिल की थी। साम्यवादी क्रांति के बाद तुर्किस्तान की भूमि पर जिस तरह उलमा और सूफ़िया का क़त्लेआम किया गया और मज़हबी तबक़ों को जैसे-जैसे कठोर ज़ुल्मों के साथ ख़त्म किया गया, इसकी दास्तान इतनी दर्दनाक है कि चंगेज़ी ज़ुल्मो-सितम की तारीख़ भी इसके सामने हल्की हो जाती है। यह सब कुछ इसी बीस साल के दौरान हुआ और उस सरज़मीन में हुआ है जो हिन्दुस्तान की सरहद से पाँच-सात सौ मील से ज़्यादा दूर नहीं है।

लेकिन हमारे मज़हबी पेशवाओं को इसकी कुछ भी ख़बर नहीं और वे आज हिन्दुस्तान में फिर वही समरक़ंद व बुख़ारा की तारीख़ दोहराने के लिए तैयार हैं। उनके बड़े-बड़े इज्तिमाआत में कम्युनिस्ट लीडरों और कम्युनिज़्म से मुतास्सिर लोगों को स्वागत-भाषण पढ़ने का मौक़ा दिया जाता है। उनके ज़िम्मेदार आदमी कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं के साथ अवाम में काम करने जाते हैं और अच्छे-अच्छे मशहूर उलमा की ज़बान से ये वाक्य सुनने में आते हैं कि इस्लाम और कम्युनिज़्म में इसके सिवा कुछ फ़र्क़ नहीं है कि एक में ख़ुदा का तसव्वुर है, दूसरे में नहीं है। वरना कम्युनिज़्म का निज़ाम बिलकुल इस्लामी निज़ाम का एक नया

एडीशन है। ख़ुदा न करे कि इस नादानी का हिन्दुस्तान में भी वही नतीजा सामने आए जो तुर्किस्तान में आ चुका है। लेकिन ख़ुदा के यहाँ तो ये लोग अपनी ज़िम्मेदारी से हरगिज़ बच नहीं सकेंगे, चाहे हिन्दुस्तान उनकी ग़लती के नतीजे से बच जाए।

4. जिन उलमा हज़रात ने मेरी किताब 'रिसाला दीनियात' पर फ़तवे लिखे हैं, मैं व्यक्तिगत रूप से उनका शुक्रगुज़ार हूँ और उनके इल्म व फ़ज़्ल का भी एहतिराम मेरे दिल में है। उन तक मेरी यह गुज़ारिश पहुँचा दी जाए कि फ़तवे लिखने और उन्हें फ़ितना फैलानेवालों के हाथ में देने के बजाय वे मेहरबानी करके मेरी किताबों पर इल्मी तंक़ीद करें। मुझे अपनी किसी ग़लती को ग़लती मानने में और उसकी इस्लाह करने में न पहले कभी संकोच था और न अब है। अलबत्ता पहले भी यह अर्ज़ करता रहा हूँ और अब भी इसे दोहराता हूँ कि जिस चीज़ को ग़लती कहा जाता है उसे साफ़ तौर से मुझे बताया जाए, ताकि मैं उसकी इस्लाह कर सकूँ। ग़ैर वाज़ेह एतिराज़ों से यह मालूम करना मुश्किल होता है कि हक़ीक़त में वह चीज़ क्या है जिसपर एतिराज़ है।

इसके बाद यह इज्लास ख़त्म हुआ और मग़रिब की नमाज़ के बाद पाँचवाँ इज्लास शुरू हुआ। अस्र से मग़रिब तक वक़्फ़ा दिया गया।'

पाँचवाँ इज्लास

(7 जमादल अव्वल 1364 हिजरी, तदनुसार 30 अप्रैल 1945 ई० जुमा, बाद मग़रिब)

सबसे पहले एलान किया गया कि इशा की नमाज़ के बाद मज़लिसे शूरा का इज्लास होगा और शूरा के अरकान के नाम सुना दिए गए। इसके बाद अलीगढ़, शाहजहाँपुर, बनारस, संगाही, लखनऊ, मेरठ और बाराबंकी की रिपोर्टें पेश हुईं। शाहजहाँपुर के मक़ामी अमीर ने अपनी रिपोर्ट के दौरान यह भी एलान किया कि उनके एक रफ़ीक़ अपनी जान, माल और हर चीज़ जमाअत के हवाले करते हैं और अमीर जमाअत को हक़ है कि जिस तरह चाहें इन्हें इस्तेमाल करें।

इन रिपोर्टों पर तबसिरा करते हुए अमीर जमाअत ने फ़रमाया—

1. शाहजहाँपुर के रफ़ीक़ की पेशकश बेशक बहुत मुबारक है और मैं हरगिज़ नहीं चाहता कि किसी का दिल तोड़ूँ या किसी ऐसी नेक कोशिश से किसी को मना करूँ बल्कि दुआ करता हूँ कि अल्लाह तआला उनकी इस पेशकश को क़बूल फ़रमाए और उन्हें इसपर साबित-क़दम रखे। लेकिन मैं चाहता हूँ कि वह इज्तिमा के बाद घर पहुँचकर अपने तमाम हालात का जायज़ा लेकर दो-तीन महीने के अंदर फिर ठंडे दिल से फ़ैसला करें और अगर उनका इरादा क़ायम रहे तो मुझे लिखें। फिर मैं बताऊँगा कि उन्हें क्या करना चाहिए। यह मैं इसलिए कहता हूँ कि कभी-कभी ख़ास मौक़े पर इनसान वक़्ती तौर पर मुतास्सिर होकर अपनी हिम्मत और बर्दाश्त करने की सलाहियत का सही अंदाज़ा किए बग़ैर एक फ़ैसला कर लेता है और बाद में जब अस्ल हालात से उसका सामना होता है तो उसके लिए अपने फ़ैसले पर क़ायम रहना मुश्किल हो जाता है।

2. एक साहब ने अपनी रिपोर्ट में कुछ लोगों का यह एतिराज़ नक़ल किया है कि पहले इनसान को ख़ुद मेयारी मुसलमान बनना चाहिए, फिर दूसरों की इस्लाह की तरफ़ तवज्जोह करनी चाहिए। यह एक बहुत बड़ी ग़लतफ़हमी है। इस ख़याल के लिए न शरीअत में कोई बुनियाद है और न अक़्ल में यह बात आती है। क़ुरआन व हदीस से भी हमें यही मालूम होता है कि ख़ुद नेक बनना और दूसरों को नेकी की तरफ़ बुलाना साथ-साथ होना चाहिए, और अक़्ल भी यही चाहती है कि जिस वक़्त आदमी पर हक़ वाज़ेह हो उसी वक़्त से वह ख़ुद

भी हक़परस्त बनने की कोशिश करे और दूसरों को भी हक़ की तरफ़ दावत दे। ज़ाहिर बात है कि जब आपके साथ बहुत-से लोग एक ही मकान में रहते हों और आपको मालूम हो जाए कि इस मकान में आग लग गई है तो आपका फ़र्ज़ यही नहीं है कि ख़ुद उससे निकलने की कोशिश करें, बल्कि आपका यह भी फ़र्ज़ है कि अपने दूसरे भाइयों को भी इस आग से आगाह करने और उन्हें इस मकान से बाहर निकालने की पूरी-पूरी कोशिश करें। जो लोग पहले ख़ुद मेयारी मुसलमान बनने की शर्त लगाते हैं उनसे पूछिए कि क्या उनके सामने कोई ख़ास हद ऐसी है जिसपर पहुँचकर आदमी अपने बारे में यह राय क़ायम कर सकता है कि अब वह मेयारी मुसलमान बन गया है। शायद यह कहना ग़लत न होगा कि जिस वक़्त आपके अंदर अपने बारे में यह ग़लतफ़हमी पैदा हुई कि आप कामिल हो गए हैं, उसी वक़्त से आपके नाक़िस होने की इब्तिदा हो जाएगी और दूसरों की तक्मील (पूर्णता) की कोशिश के लिए वही वक़्त सबसे ज़्यादा ग़ैर-मुनासिब होगा।

3. रिपोर्टों के सिलसिले में एक और बात मुझे ख़ास तौर से खटक रही है, वह यह कि जगह-जगह पर बिला ज़रूरत अपने आपको छोटा बनाकर और अपने कामों को मामूली समझकर पेश किया गया है। जिस तरह यह बात सही नहीं कि अपनी कार्रवाइयों और सरगर्मियों को बढ़ा-चढ़ाकर बयान किया जाए, उसी तरह यह बात भी ठीक नहीं है कि उन्हें बिला वजह छोटा करके और मामूली शक्ल में पेश करने की कोशिश की जाए। जो कुछ हुआ है और जो हो रहा है उसे बिना कमी-बेशी के ठीक-ठीक बयान कर देना चाहिए। अपने और दूसरों का जायज़ा लेने में क़तई किसी कमी-बेशी से काम न लिया जाए। आपकी रिपोर्टें तो मानो एक ऐसा आइना होनी चाहिएँ जिनमें आपकी कार्रवाइयों, आपके अरकान, हमदर्दों और इलाक़े के दूसरे लोगों तथा हालात का बेलाग अक्स मौजूद हो।

इसके बाद इज्लास ख़त्म हुआ और इशा की अज़ान हुई।

इज्लास मजलिसे शूरा

(20 अप्रैल 1945, दिन जुमा, नमाज़े इशा के बाद)

इशा की नमाज़ और खाने के बाद अमीर जमाअत के दफ़्तर में मजलिसे शूरा का इज्लास हुआ, जिसमें ये लोग शरीक हुए—

1. जनाब सैयद अबुल आला मौदूदी (अमीरे जमाअत)
2. मौलाना अमीन अहसन साहब इस्लाही
3. मौलाना मसऊद आलम साहब नदवी
4. मौलाना मुहम्मद इस्माईल साहब मद्रासी
5. ग़ाज़ी मुहम्मद अब्दुल जब्बार साहब (दिल्ली)
6. मौलवी हकीम मुहम्मद अब्दुल्लाह साहब रोड़ी
7. मलिक नसरुल्लाह ख़ाँ साहब अज़ीज़ (एडीटर 'कौसर', लाहौर)
8. मौलाना नज़ीरुल हक़ साहब मेरठी
9. मियाँ तुफ़ैल मुहम्मद साहब (क़य्यिमे जमाअत)
10. सैयद मुहम्मद हसनैन साहब जामई (क़य्यिमे जमाअत, सूबा बिहार)
11. क़ाज़ी हमीदुल्लाह साहब, सियालकोट
12. चौधरी मुहम्मद अकबर साहब, सियालकोट
13. मौलवी मुहम्मद यूनुस साहब, हैदराबाद
14. सैयद अब्दुल अज़ीज़ साहब.शरफ़ी
15. हकीम मुहम्मद ख़ालिद साहब, इलाहाबाद
16. जे. मुहम्मद बशीर साहब, मुम्बई

इस इज्लास में मरकज़ की तामीर और तालीमी स्कीम के मसाइल पर ग़ौर किया गया और तमाम हालात का जायज़ा लेने के बाद यह फ़ैसला किया गया कि इब्तिदाई तालीम का काम शुरू करने के लिए हालात इस वक़्त साज़गार नहीं हैं। लिहाज़ा फ़िलहाल अपनी तमाम तवज्जोह आरज़ी सानवी (अस्थाई माध्यमिक) और आला तालीम का काम शुरू करने पर लगानी चाहिए और इसके साथ-साथ इब्तिदाई तालीमी स्कीम को शुरू करने के लिए भी कोशिश जारी रहनी चाहिए।

छठा इज्लास

(8 जमादल अव्वल 1364 हि०, तदनुसार 21 अप्रैल 1945 हि०)

शनिवार के दिन सुबह 8 बजे यह इज्लास प्रोग्राम के मुताबिक़ मस्जिद में शुरू हुआ। इस इज्लास में सियालकोट, सरहद, गूजराँवाला, लालामूसा, गुजरात, लाहौर और ज़िला लाहौर, अमृतसर, फ़ीरोज़पुर शहर और छावनी, राहूँ, फिलौर, जाजा, होशियारपुर, लुधियाना, कपूरथला, कैथल (करनाल), हिसार, ज़िला शाहपुर और ज़िला लायलपुर की रिपोर्टें पेश हुईं। हालाँकि कुछ और इलाक़ों की रिपोर्टें अभी बाक़ी थीं, लेकिन वक़्त की कमी के सबब फ़ैसला किया गया कि बाक़ी रिपोर्टों को आम इज्तिमा में पेश न किया जाए, बल्कि वे इज्तिमा के बाद अमीर जमाअत के सामने पेश कर दी जाएँ।

इन रिपोर्टों पर तबसिरा करते हुए अमीरे जमाअत ने फ़रमाया—

कभी-कभी इनसान जिस बात को बुरा समझता है अल्लाह की तरफ़ से उसमें अच्छाई का पहलू निकल आता है। मैं अफ़सोस कर रहा था कि वक़्त की कमी और अपनी सेहत की ख़राबी की वजह से मुझे इज्तिमा से पहले रिपोर्टों को देख लेने का मौक़ा नहीं मिला। अगर यह मौक़ा मुझे मिल जाता तो बहुत-सी इबारतों पर मैं निशान लगा देता और निशान लगी इबारतों के बारे में हिदायत कर देता कि इज्तिमा में उन्हें न पढ़ा जाए। लेकिन अब महसूस करता हूँ कि इसका मौक़ा न मिलना कुछ अच्छा ही हुआ।

पिछले दो रोज़ से जो रिपोर्टें यहाँ पेश हुई हैं उनमें आपके सामने जमाअत की हालत और अरकान की हालत वाक़ई में जो कुछ है, वह उसी शक्ल में सामने आ गई है। अच्छे और बुरे सभी पहलू बेनक़ाब हो गए। हमारे कारकुनों का मिज़ाज, सोचने का अंदाज़ और अख़लाक़ी हाल जैसा कुछ था वह सबके सामने आ गया। अब जो तबसिरा मैं करूँगा और मेरे बाद मौलाना अमीन अहसन साहब जो तक़रीर करेंगे, उससे मुझे उम्मीद है कि अरकाने जमाअत अपने कमज़ोर पहलुओं की तरफ़ ध्यान देंगे और उन्हें दूर करने की कोशिश करेंगे।

1. आज मेरे पास बहुत-सी शिकायतें आई हैं कि मुख़्तलिफ़ जगहों की रिपोर्टों में उलमा, दूसरे गिरोहों और जमाअतों पर तंक़ीद में सख़्ती से काम लिया गया है। ये शिकायतें एक हद तक बिलकुल दुरुस्त हैं। इख़्तिलाफ़ और

मुख़ालिफ़तों की वजह से तबीयत में झुंझलाहट पैदा हो जाना, हालाँकि किसी हद तक फ़ितरी बात है, लेकिन वाक़ई में यह एक कमज़ोरी है और जिन लोगों को किसी बुलंद अख़लाक़ी मक़सद के लिए काम करना हो, उन्हें अपने अंदर से इस कमज़ोरी को दूर करना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि जो लोग जान-बूझकर या अनजाने में इस भलाई की तरफ़ बुलाने की राह रोक रहे हैं, उनके इस तर्ज़ेअमल की आप सराहना करें या उसे बुरा न समझें। उनकी ग़लतियों को ग़लती कहने से न मैं ख़ुद रुकता हूँ, न आपको रोकता हूँ। वाक़िआत को बताने से भी मैं रोकना नहीं चाहता, अगर वाक़ई हालात को समझने के लिए उनका बयान ज़रूरी हो। जहाँ किसी जमाअत के ग़लत तर्ज़ेअमल पर तंक़ीद करने की वाक़ई ज़रूरत पाई जाए, वहाँ ज़बान बंद कर लेने का मशविरा भी मैं किसी को नहीं देता। लेकिन जिस चीज़ को मैं रोकना चाहता हूँ वह सिर्फ़ यह है कि इस क़िस्म की मुख़ालिफ़तों से आपके मिज़ाज में तिलमिलाहट और आपकी ज़बान में सख़्ती पैदा हो और इसके जवाब में दूसरी तरफ़ से बात और बढ़े। यही चीज़ें फ़ितने का सबब बनती हैं। इसके अलावा हमारे अरकान को इस बात का भी लिहाज़ रखना चाहिए कि हमारी जमाअत में जो लोग शरीक हैं वे मुख़्तलिफ़ गिरोहों से निकलकर आए हैं और अब तक उनकी अक़ीदतें और दिलचस्पियाँ कुछ न कुछ अपने पहले के गिरोहों और उनकी शख़्सियतों के साथ जुड़ी हुई हैं। इस हालत में अगर एक तबक़े के लोग दूसरे तबक़ेवालों पर कोई चोट करेंगे तो सिर्फ़ यही नहीं कि उस तबक़े पर कोई अच्छा असर नहीं पड़ेगा, बल्कि इससे यह भी अंदेशा है कि उस तबक़े से आए हुए जो लोग हमारी जमाअत में मौजूद हैं उनके दिलों में भी नाराज़गी पैदा होगी।

आपके सामने नबी (सल्ल०) के वक़्त की मिसालें मौजूद हैं कि अंसार में, इस्लाम क़बूल करने के बाद भी कुछ मुद्दत तक 'औस' और 'ख़ज़रज' क़बीलों की पुरानी दुश्मनी के आसार मौजूद थे और फ़ितना-पसंद यहूदी कभी-कभी इन दुश्मनियों की याद ताज़ा करके फ़ितना बरपा कर देते थे। इन मिसालों से सबक़ लेकर आप लोगों को अपनी तंक़ीदों और शिकायतों में बहुत ज़्यादा एहतियात से काम लेना चाहिए कि गिरोही अस्बियतें (पक्षपात) ख़ुद आपकी अपनी जमाअत में भड़ककर कोई फ़ितना बरपा न कर दें।

इसके साथ मैं उन हज़रात से भी जो कुछ गिरोहों और लोगों की अक़ीदत में मुब्तिला हैं और इस वजह से तंक़ीदों की सख़्ती का शिकवा करते हैं। उनसे यह गुज़ारिश करूँगा कि जब आप इस जमाअत में आए हैं तो अपने अंदर

इनसाफ़ की सिफ़त पैदा कीजिए और तमाम चीज़ों से बढ़कर हक़ से अक़ीदत रखिए। आपको शिकायत है कि कुछ बड़े लोगों की ग़लत बातों का जब यहाँ ज़िक्र हुआ तो लोग हँस दिए। बेशक यह हँसना अच्छा नहीं था। बेशक हमारी तरफ़ से हर शख़्स का उतना ही एहतिराम किया जाना चाहिए जितना हम ख़ुद चाहते हैं कि हमारा किया जाए। लेकिन आप ग़ौर कीजिए कि जो लोग वाक़ई हँसी के क़ाबिल बातें करते हों। आख़िर दुनिया को कब तक उनपर हँसने से रोका जा सकता है। चाहे हम उनपर न हँसे लेकिन बहरहाल हँसी के क़ाबिल बातें करने के बाद कोई शख़्स हँसे जाने से बच नहीं सकता और न आपकी अक़ीदतमंदी उसे उस नुक़सान से बचा सकती है जो उसने ख़ुद अपने एहतिराम को पहुँचाया है।

इसी तरह आप शिकायत करते हैं कि कुछ लोगों और जमाअतों पर तंक़ीद में सख़्ती बरती गई है। इस सख़्ती को मैं भी पसंद नहीं करता, लेकिन इसके साथ आपको भी यह सोचना चाहिए कि जिन चीज़ों की शिकायत की गई है क्या वे वाक़ई नहीं हैं? अगर वे वाक़ई हैं तो क्या वे लोग जिन्होंने इस दावते हक़ की राह में रुकावटें डालने की कोशिश की हैं, वे अपने इस तर्ज़ेअमल में वाक़ई हक़ पर हैं? अगर वे हक़ पर नहीं हैं तो फिर जितनी तवज्जोह आप दुनिया से उनका एहतिराम कराने पर लगाते हैं, ख़ुदा के लिए इससे आधी ही तवज्जोह इस कोशिश में लगाएँ कि वे लोग अपने इस रवैया को बदलें। जहाँ एक तरफ़ हक़ हो और दूसरी तरफ़ बड़ी-बड़ी शख़्सियतें हों, वहाँ अगर आपका दिल शख़्सियतों की तरफ़ ज़्यादा खिंचता है तो यह एक बड़ी ख़तरनाक हालत है जिससे आपकी अपनी हक़परस्ती को नुक़सान पहुँचने का अंदेशा है। एक अंच्छे मुसलमान को सबसे पहले जिस चीज़ की फ़िक्र होनी चाहिए वह यह है कि उसके अंदर हक़ की मुहब्बत सारी मुहब्बतों पर ग़ालिब हो जाए और कोई अक़ीदत उसके दिल में ऐसी बाक़ी न रहे जो किसी वक़्त हक़ की अक़ीदत के मुक़ाबले में आ खड़ी हो।

जहाँ तक इस दावते ख़ैर का ताल्लुक़ है मुझे यह पूरा यक़ीन है कि किसी की मुख़ालिफ़त इसको दबाने में कामयाब नहीं हो सकती, बल्कि जो इसको नुक़सान पहुँचाने की कोशिश करेगा वह ख़ुद नुक़सान उठाएगा। इसलिए मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि किसी बड़े से बड़े आदमी की मुख़ालिफ़त से भी मुझे इस काम के बर्बाद हो जाने का अंदेशा है। मेरी ग़र्ज़ तो सिर्फ़ यह है कि एक तरफ़ आप ख़ुद अपनी हक़परस्ती को ऐसी अक़ीदतों के ज़हर से बचाने की फ़िक्र करें जो हक़ की मुख़ालिफ़त के बावजूद किसी के साथ

लगी रहती हैं, और दूसरी तरफ़ ख़ुद उन लोगों को भी जिनसे आप अक़ीदत व मुहब्बत रखते हैं, ख़ैर के मुख़ालिफ़ बनने के बुरे नतीजों से बचने का मशविरा दें।

2. मैंने अभी जिस चीज़ की तरफ़ इशारा किया है, उसका एक अफ़सोसनाक सबूत अभी-अभी मुझे एक अजीब शिकायत की सूरत में मिला है। आपको याद होगा कि कल मैंने साम्यवादियों के साथ कुछ उलमा की सहमति पर अपने दिली रंज का इज़हार करते हुए उन बुरे नतीजों का ज़िक्र किया था जो रूसी तुर्किस्तान में साम्यवादी की तब्लीग़ करनेवालों के साथ उलमा की सहमति से न सिर्फ़ उलमा के हक़ में बल्कि ख़ुद इस्लाम के हक़ में सामने आए हैं। आज मेरी उस तक़रीर का हवाला देते हुए मुझसे शिकायत की गई है कि एक तरफ़ तो तुम उलमा पर सख़्त तंक़ीद करने से लोगों को रोकते हो और दूसरी तरफ़ ख़ुद ऐसी तंक़ीद करते हो। इसी क़िस्म की बातें हैं जिनके कारण मैं समझता हूँ कि आपमें से कुछ लोग हक़ की अक़ीदत से कुछ बढ़कर लोगों की अक़ीदत में मुब्तिला हैं। मैं आपको एक सच्चा वाक़िआ सुना रहा हूँ कि कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं के साथ रूसी तुर्किस्तान के उलमा ने शुरू में जो सहयोग किया था, उसकी सज़ा किस बुरी तरह से उन्होंने भुगती, और उसके नतीजे में किस तरह इस्लाम उस सरज़मीन से जड़ से उखाड़ फेंका गया जो बारह सौ साल तक इस्लाम का गहवारा बनी रही थी।

इसके साथ मैं आपके सामने ये भी वाक़िआत पेश कर रहा हूँ कि कुछ अच्छे-ख़ासे ज़िम्मेदार उलमा हिन्दुस्तान में किस तरह उसी ग़लत को दोहरा रहे हैं। आप मेरी इन दोनों बातों में से किसी का भी इनकार नहीं करते और नहीं कर सकते, लेकिन फिर आपको शिकायत उन लोगों से नहीं है जो इस्लाम के लिए अपनी नादानी से यह ख़तरा पैदा कर रहे हैं, बल्कि आपको उल्टी यह शिकायत उस शख़्स से है जो इस नादानी पर उनको ख़बरदार करने की कोशिश कर रहा है। इसका मतलब यह है कि इस्लाम की जड़ों पर फावड़ा चल जाने से आपको उतनी तकलीफ़ नहीं होती जितनी अपनी अक़ीदत के बुतों को ठेस लगने से होती है 'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन'।

अगर यह आपकी हालत है तो किसने आपको मशविरा दिया कि आप हमारी इस जमाअत में तशरीफ़ लाएँ? यह जमाअत तो बनी ही इस उसूल पर है कि सब अक़ीदतों को ख़त्म करके सिर्फ़ एक ख़ुदा और उसके रसूल और उसके दीन की अक़ीदत बाक़ी रखी जाए और इसके बाद अगर कोई अक़ीदत हो तो

वह इस असली अक़ीदत के मातहत होनी चाहिए न कि उसके मुख़ालिफ़। लेकिन अगर आप अभी तक उन अक़ीदतों में मुब्तिला हैं जो इस असली और हक़ीक़ी अक़ीदत की मुख़ालिफ़ बन सकती हैं तो आपके लिए कोई जगह हमारी जमाअत के अंदर नहीं, बल्कि इसके बाहर है।

3. मैंने आपकी कार्रवाइयों की रिपोर्टों में तालीमे बालिग़ान (प्रौढ़ शिक्षा) का ज़िक्र बहुत कम सुना। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं इसकी अहमियत आप पर किस तरह वाज़ेह करूँ। पहले तो मेरे पास कोई ताक़त नहीं है और अगर कोई ताक़त हो भी तो यह काम ऐसा नहीं है कि ज़बरदस्ती किसी से लिया जा सके। यह तो एक रज़ाकाराना ख़िदमत (स्वैच्छिक-सेवा) है और यह सिर्फ़ इसी तरह हो सकती है कि आप ख़ुद इसकी पूरी अहमियत को महसूस करें और अपने दिली जज़्बे के साथ इसे करने की कोशिश करें। इसकी मस्लिहतों और फ़ायदों का ज़िक्र मैं इससे पहले कर चुका हूँ। इसकी ज़रूरत भी मैंने आपके सामने वाज़ेह कर दी है। अब आपमें से जो लोग तालीमयाफ़्ता हैं वे इस तरह सोचना शुरू करें कि उन्होंने अपना कितना वक़्त और दिमाग़ी क़ाबिलियतों और जिस्मानी क़ुव्वतों का कितना हिस्सा अपने नफ़्स की परवरिश में लगा रखा है और कितना ख़ुदा के काम के लिए दिया है। इसका हिसाब लगाकर आप देखेंगे तो जल्द ही आपको पता चल जाएगा कि आपने सबसे कम हिस्सा ख़ुदा को दे रखा है। हालाँकि अक़ीदा आपका यह है कि सब कुछ उसी का है। इसके बाद अगर वाक़ई आपका दिल इस बात पर आमादा हो कि ख़ुदा का हक़ भी कुछ अदा करना चाहिए तो उसका हक़ अदा करने की कम से कम सूरत यह है कि उसके जो बंदे ग़फ़लत, जिहालत और अख़लाक़ी पस्ती में पड़े हुए हैं उनको सुधारने के लिए आप अपने वक़्त का एक हिस्सा मुस्तक़िल तौर पर लगा दें।

4. कुछ लोगों ने इस ख़याल का इज़हार किया है कि हमारे मस्लक को समझना अवाम के लिए मुश्किल है। यह ख़याल सही नहीं है। आपको मालूम है कि इस दीन को शुरू में अरब के रेगिस्तानी बद्दुओं ने और अनपढ़ लोगों ने समझा था जो किसी किताब का इल्म नहीं रखते थे। उन्होंने इसको सिर्फ़ समझा ही नहीं बल्कि वे इसकी गहराइयों तक में उतर गए और उनमें से जिन लोगों ने इसकी तालीम हासिल की वे दुनिया के मुअल्लिम (तालीम देनेवाले) बनकर रहे। फिर यह शक आपको कैसे होता है कि आज हिन्दुस्तान के किसान, मज़दूर और आम बाशिंदे इसे न समझ सकेंगे? मेरा तजुर्बा तो यह है कि जिन लोगों ने किताबी इल्म हासिल किए हैं उनके दिमाग़ों में तो ज़रूर ऐसे पेच पड़ जाते हैं

जिनकी वजह से इस दीन की सीधी-सीधी बातें भी उनके अंदर उतरनी मुश्किल होती हैं, और इसी वजह से उनको समझाने के लिए हमें लम्बी-चौड़ी इल्मी बहसें करनी पड़ती है। लेकिन आम़ लोग जिनके दिमाग़ बड़ी हद तक एक फ़ितरी हालत पर हैं, इस दीन को बड़ी आसानी से समझ लेते हैं, बशर्ते कि समझानेवाला आसान अंदाज़ में बयान करे और उसकी अपनी ज़िन्दगी इस बात की गवाही दे कि वह जिन चीज़ों को पेश कर रहा है, वाक़ई में वह ख़ुद भी उनपर ईमान रखता है। अवाम को आपकी बात समझने में अगर कोई उलझन पेश आ सकती है तो वह सिर्फ़ दो वजहों से पेश आ सकती है। एक यह कि आप उनके सामने इस तरह की बातें करें जैसी किसी अरबी मदरसे के पढ़नेवालों या किसी कॉलेज के लड़कों के सामने की जाती हैं। दूसरे यह कि आप ख़ुद कुछ और हों और बातें कुछ और करें। इन दो ख़राबियों से अगर आपकी तब्लीग़ पाक हो जाए तो आप देख लेंगे कि अवाम इस दीन को किस तरह आसानी से समझते हैं।

5. कुछ लोगों ने शिकायत की है कि जब हम आम लोगों में इस्लाह व तब्लीग़ की कोशिश करते हैं तो कोई फ़ितना फैलानेवाला शख़्स उठकर कह देता है कि ये लोग 'वहाबी' हैं और इसके बाद कोई हमारी बात सुनने पर आमादा नहीं होता। यह शिकायत जिन हज़रात ने पेश की है वे शायद इस चीज़ को अपनी राह में बड़ी रुकावट समझ रहे हैं। हालाँकि अगर इस लफ़्ज़ 'वहाबी' के इतिहास और प्रोपेगंडे के इस हथकंडे को समझ लिया जाए, जिससे यह लफ़्ज़ पैदा हुआ है तो बड़ी आसानी से इसका तोड़ मालूम किया जा सकता है। दरअस्ल उन्नीसवीं सदी में कुछ राजनीतिक कारणों से मिस्र और तुर्की की मुस्लिम और हिन्दुस्तान की ग़ैर-मुस्लिम हुकूमत ने उन सुधारवादी तहरीकों को जो हिन्दुस्तान और अरब में उठी थीं, दबाने के लिए यह 'वहाबी' का लफ़्ज़ ईजाद किया था। प्रोपेगंडा के कारगर नुस्ख़ों में से एक यह है कि जिस गिरोह को आप नुक़सान पहुँचाना चाहें उसे पहले एक नाम दीजिए और तमाम बुराइयाँ जो उसकी ओर जोड़ना चाहते हों उन सबका मतलब उस ख़ास नाम में पैदा कर दीजिए। फिर उस नाम का इतना प्रचार कीजिए कि जहाँ वह नाम लिया गया और फ़ौरन सुननेवालों के सामने उन सारी बुराइयों की तस्वीर आ जाए, जो आपने इस नाम के साथ जोड़ दी हैं। इस तरह लम्बी-चौड़ी तक़रीरों और तहरीरों की कोई ज़रूरत बाक़ी नहीं रहती, बल्कि उन सबकी जगह सिर्फ़ एक लफ़्ज़ ज़बान से निकाल देने से काम चल जाता है।

मौजूदा ज़माने में मुख़ालिफ़ जमाअतों ने अपने प्रोपेगंडा के लिए इस तरीक़े

को इस्तेमाल किया है। मुल्ला, टोडी, रूढ़िवादी, बुर्जुआ और इसी तरह के दूसरे अल्फ़ाज़ इसी मक़सद के लिए घड़े गए हैं और इनसे ख़ूब काम लिया गया है। ऐसा ही एक हथियार वहाबी भी है जिसे शुरू में कुछ ख़ुदग़रज हुकूमतों ने राजनीतिक मक़सद के लिए ईजाद किया और फिर मुसलमानों के उन तमाम गिरोहों ने इससे फ़ायदा उठाना शुरू कर दिया जो अवाम में किसी क़िस्म की दीनी बेदारी पैदा होने को अपने दुनियावी मक़सद के लिए नुक़सानदेह समझते हैं। अब इसका जवाब यह नहीं है कि आप अपने वहाबी होने का खंडन करते फिरें, और न यह दुरुस्त है कि जहाँ आपके ख़िलाफ़ यह हथियार इस्तेमाल किया जाए वहाँ से आप मात खाकर पीछे हटने लगें। बल्कि इसका इलाज सिर्फ़ यह है कि आप सीधे-सीधे एक मुसलमान की-सी ज़िन्दगी बसर करते रहें और इनसानों को ख़ालिस तौहीद और क़ुरआन व सुन्नत की पैरवी की दावत देते रहें और जो लोग आपको वहाबी कहते हैं उन्हें छोड़ दें कि वे इस नाम की तस्बीह पढ़ते रहें। इसका लाज़िमी नतीजा आख़िरकार यह होगा कि धीरे-धीरे आपके तर्ज़ेअमल और उन लोगों के वहाबियत के प्रचार से मिल-जुलकर लफ़्ज़ वहाबी का एक और मतलब पैदा हो जाएगा—और वह यह कि वहाबी उसे कहते हैं जो सीधी-सादी मुसलमान की-सी ज़िन्दगी बसर करता हो, किसी से झगड़ा, बहस, मुनाज़िरा न करता हो। पाकीज़ा अख़लाक़ और नेक मामलात रखता हो, और तौहीद के अक़ीदा की और क़ुरआन व सुन्नत की पैरवी की दावत देता हो। इसके बाद जो शख़्स वाक़ई उन्हीं चीज़ों का तलबगार होगा जो आपके पास उसे मिलती है उसको तो वहाबियत का नाम आपकी तरफ़ आने से रोकेगा नहीं, बल्कि उल्टा आपकी तरफ़ खिंचेगा और वह ज़मीन में 'वहाबियों' ही को ढूँढ़ता फिरेगा।

रहे वे लोग जो बजाय ख़ुद इस्लाम ही को उसकी हक़ीक़ी सूरत में पसंद नहीं करते वे तो ज़रूर आपसे दूर भागेंगे। लेकिन आपको अफ़सोस नहीं करना चाहिए अगर ऐसे हक़ से फिरे हुए लोग आपसे दूर भागें।

तज्वीज़ें (प्रस्ताव)

इसके बाद तज्वीज़ें पेश हुईं जो मुख़्तलिफ़ मक़ामी जमाअतों और अरकान की तरफ़ से आई थीं। अमीर जमाअत ने ख़ुद हर तज्वीज़ (प्रस्ताव) को पढ़कर सुनाया, इसके बाद मुख़्तसर लफ़्ज़ों में उसके बारे में अपनी राय ज़ाहिर की और तज्वीज़ पेश करनेवालों को मौक़ा दिया कि अगर वह उनके जवाब से मुतमइन न

हों तो अपनी तज्वीज़ के बारे में ख़ुद अपना नज़रिया पेश करें। लेकिन इस मौक़े से फ़ायदा उठाने की किसी ने ज़रूरत महसूस नहीं की। नीचे तज्वीज़ों का ख़ुलासा दर्ज किया जाता है और हर तज्वीज़ के बाद जिस राय को अमीरे जमाअत ने ज़ाहिर किया है वह भी साथ-साथ दर्ज है :

तज्वीज़-1 : पासशुदा तज्वीज़ के मुताबिक़ तालीमी दर्सगाह को जल्द से जल्द शुरू किया जाए। अगर जंगी हालात की वजह से पुख़्ता इमारत न बन सकती हो तो कच्ची इमारत ही बनाकर काम शुरू कर दिया जाए।

अमीर जमाअत : रात मजलिसे शूरा में इसपर ग़ौर किया गया। चूँकि आरज़ी सानवी (माध्यमिक) और आला (उच्च) तालीम के लिए ज़्यादा इमारत की ज़रूरत नहीं है और मौजूदा इमारत ही थोड़ी-सी तब्दीली और इज़ाफ़े से इसके लिए काफ़ी हो सकती है, इसलिए फ़ैसला किया गया है कि इस काम को जल्द से जल्द शुरू कर दिया जाए। रही इब्तिदाई तालीम तो इसकी तैयारी की जाती रहेगी। लेकिन शायद इसके शुरू करने में अभी देर लगेगी। कच्ची इमारत बनाने में भी जो दिक़्क़तें हैं वे आसानी से दूर नहीं की जा सकतीं।

तज्वीज़-2 : जमाअत के तालीमयाफ़्ता अरकान के लिए एक तर्बियतगाह (प्रशिक्षण केन्द्र) का इन्तिज़ाम किया जाए।

अमीर जमाअत : जिस सानवी (माध्यमिक) और आला (उच्च) तालीम का इंतिज़ाम अब हम शुरू करनेवाले हैं उसके प्रोग्राम में तर्बियतगाह भी शामिल है।

तज्वीज़-3 : मस्जिदों के इमामों और देहाती प्राइमरी मदरसों के उस्तादों और देहात में तब्लीग़ का काम करनेवालों का इंतिज़ाम किया जाए।

अमीर जमाअत : जहाँ तक असल ज़रूरत का ताल्लुक़ है जिसका इज़्हार आपकी इस तज्वीज़ से हो रहा है, उसको हमारी सानवी (माध्यमिक) और आला (उच्च) तालीम पूरा कर देगी। लेकिन मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि इस तज्वीज़ के पीछे उस शोर-शराबे के असरात भी काम कर रहे हैं जो 'मस्जिदों के इमामों की ट्रेनिंग' और 'तब्लीग़ करनेवालों की तैयारी' और दीनी तालीम देनेवालों की तर्बियत और इसी क़िस्म की दूसरी चीज़ों पर पिछले कुछ सालों से बरपा है। हमारे मुल्क में एक अच्छा-ख़ासा गिरोह ऐसे लोगों का भी पाया जाता है जो माहौल की इस्लाह की ज़रूरत का एहसास तो रखते हैं मगर इतनी समझ नहीं रखते कि माहौल की अस्ल ख़राबी को समझ सकें और उन्हें दूर करने का सही उपाय मालूम कर सकें। ये लोग सतही तौर पर कुछ ख़राबियों को देखकर

समझते हैं कि बस यही अस्ल बीमारियाँ हैं और इनके इलाज के लिए कुछ सस्ते नुस्खे तज्वीज़ करके उनका इश्तिहार देना शुरू कर देते हैं। फिर जब कुछ मुद्दत तक ये इश्तिहारात फ़िज़ा में गूँजते रहते हैं तो दिमाग़ों पर उनका कुछ ऐसा क़ब्ज़ा हो जाता है कि जहाँ किसी ने हालात की इस्लाह (सुधार) का तसव्वुर किया और बेसाख़्ता उनकी ज़बान पर 'मस्जिदों के इमामों की ट्रेनिंग' और 'तब्लीग़ करनेवालों की तैयारी' और ऐसे ही कुछ दूसरे वाक्य जारी होने लगते हैं। मुझे अंदेशा है कि शायद आप हज़रात भी वक़्त के इन चलते इश्तिहारों से मुतास्सिर हो गए हैं। अगर ऐसा है तो ज़ेहन को 'इश्तेहार प्रूफ़' बनाने की कोशिश कीजिए। सोचिए तो सही कि आख़िर मस्जिदों के इमाम किस लिए तैयार किए जाएँ? क्या आपका गुमान है कि मस्जिदों पर नालायक़ पेशइमामों का क़ब्ज़ा महज़ इस वजह से है कि लायक़ इमाम नहीं मिलते, वरना अगर अच्छे इमामों की फ़राहमी का इन्तिज़ाम हो जाए तो सारे देश की मस्जिदें हाथों-हाथ उन्हें ले लेंगी और देखते-देखते हर मस्जिद मुस्लिम सोसायटी का धड़कता हुआ दिल बन जाएगी?

अगर बात सिर्फ़ इतनी ही होती तो फिर रोना किस बात का था। लेकिन अस्ल हक़ीक़त यह है कि नालायक़ इमाम मस्जिदों में ख़ुद नहीं आए हैं बल्कि मुसलमान उन्हें लाए हैं। मुसलमानों को दरअस्ल वे मुसलमान चाहिए ही नहीं जो बस्तियों में वाक़ई उनके इमाम बनकर रहें और मस्जिदों को इस्लामी ज़िन्दगी का मरकज़ बनाकर रखें। उनका बिगड़ा हुए मिज़ाज, दीनी बेहिसी, अख़लाक़ी पस्ती, दुनियापरस्ती और ख़ुदा के साथ मुनाफ़िक़ाना रवैया सिर्फ़ ऐसे इमाम पसंद करता है जो बस्तियों के पेशेवर (कमज़र्फ़ों) की तरह एक क़िस्म के कमज़र्फ़ बनकर उनकी मस्जिदों में रहें और उनकी दी हुई रोटियाँ खाकर नमाज़ पढ़ाने का काम बस इस तरह किया करें जिस तरह वे उनसे करवाना चाहते हैं। तो फिर ख़राबी यह नहीं है कि जिस्म (यानी मुस्लिम सोसाइटी) ज़िंदा है मगर किसी हादसे से उनके दिल (यानी मस्जिद) पर जमूद व सुकून तारी हो गया है, बल्कि हक़ीक़ी ख़राबी यह है कि जिस्म ख़ुद ठंडा हो गया है और उसने आख़िरकार दिल को ठंडा करके छोड़ा है।

अब अगर आपका उद्देश्य यह है कि जैसे तनख़ाहदार इमाम और ख़तीब यह बिगड़ी हुई सोसाइटी माँगती है, वैसे ही आप तैयार करना शुरू कर दें और जहाँ-जहाँ से उनकी माँग आए वहाँ भरण-पोषण का मामला तय करके उन्हें भेज दिया करें तो इस 'इमामत के पेशे' का सिखाना और इसके लिए कुछ पेशेवर

तैयार करना हमारे बस का काम नहीं है। अगर आप हक़ीक़ी इमाम बनाना चाहते हैं जो एक ज़िंदा मुस्लिम सोसाइटी को दरकार होते हैं तो जब वह ज़िंदा सोसाइटी मौजूद न हो, उसके लिए इमाम तैयार करना ऐसा है जैसे दूल्हा को तैयार कर लिया जाए हालाँकि दुल्हन अभी माँ के पेट में भी न आई हो। हम अपनी दर्सगाह में जिन लोगों को तैयार करेंगे उनका अस्ल काम एक ज़िंदा मुस्लिम सोसाइटी को पैदा करना होगा। फिर जैसे-जैसे उनकी दावत से ऐसी सोसाइटी वुजूद में आती जाएगी, यही दावत का काम करनेवाले लोग फ़ितरी तौर पर उसके लीडर (इमाम) बनते जाएँगे। और जिन मस्जिदों को वह अपना धड़कता हुआ दिल बनाएगी, उनके इमाम और पूरी बस्ती के दीनी, अख़लाक़ी, इज्तिमाई और सियासी पेशवा यही लोग तय किए जाएँगे।

ऐसी ही ग़लतफ़हमी मदरसों में पढ़ानेवालों की तैयारी के मामले में भी आपको हुई है। हक़ीक़त यह नहीं है कि लोग हक़ीक़ी इस्लामी तालीम के ख़्वाहिशमंद हैं और कमी सिर्फ़ पढ़ानेवालों की है, बल्कि अस्ल मुसीबत यह है कि लोगों के अंदर हक़ीक़ी इस्लामी तालीम की तलब ही नहीं है। वे जिस चीज़ की तलब रखते हैं अगर उसी को मज़दूरी पर फ़राहम करने के लिए आप तालीमी मज़दूर तैयार करना चाहते हैं तो यह ख़िदमत अंजाम देना हमारा काम नहीं है और अगर आपका मक़सद वह मुअल्लिम तैयार करना है जो इस्लामी नज़रिए के मुताबिक़ आइंदा नस्लों को ढाल सकते हों तो इस ज़िंस (माल) की फ़राहमी का इन्तिज़ाम करने से पहले मंडी में असली माँग पैदा कीजिए। इसी तरह तबलीग़ करनेवालों की तैयारी का मतलब भी बहुत हद तक आपके ज़ेहन में वाज़ेह नहीं है। क्या आप यह चाहते हैं कि कुछ लोगों को तबलीग़ का फ़न इसलिए सिखाया जाए कि मुल्क की मुख़्तलिफ़ अंजुमनों को जिस क़िस्म के पेशेवर तनख़ाह पानेवाले मुबल्लिग़ की ज़रूरत है वे यहाँ से फ़राहम किए जाएँ? अगर यह आपका मक़सद नहीं है तो तबलीग़ करनेवालों की तैयारी के लिए एक मुस्तक़िल तज्वीज़ की क्या ज़रूरत है? हमारी दर्सगाह में जो तालीम लोगों को दी जाएगी और जो दीनी रूह उनके अंदर फूँकी जाएगी, वह इस मक़सद के लिए बिलकुल काफ़ी होगी कि ये लोग जहाँ भी रहें और जो काम भी करें अपने अख़लाक़, मामलात, बातचीत और चाल-चलन हर चीज़ से दीने हक़ की तबलीग़ करते रहें।

तज्वीज़-4 : अरकान अपनी और अपने बच्चों की शादियाँ सिर्फ़ दीनदार लड़के या लड़की से करें।

अमीरे जमाअत : यह ऐसी चीज़ नहीं है जिसे तज्वीज़ की हैसियत से पेश किया जाए। यह तो हक़ीक़ी दीनी शऊर पैदा हो जाने का लाज़िम और फ़ितरी नतीजा है। जिस आदमी में भी यह शऊर पैदा हो जाएगा वह दीन से फिरे हुए और अख़लाक़ी हैसियत से गिरे हुए लोगों को शादी-विवाह के ताल्लुक़ के लिए तो दूर, दोस्ती के लिए भी हरगिज़ पसंद नहीं करेगा। और अगर कोई शख़्स ऐसा है जो दीनी शऊर रखने का दावा करता है, मगर शादी-विवाह के लिए दीन व अख़लाक़ को देखने के बजाय माल व दौलत और दुनियावी हैसियत का लिहाज़ करता है तो उसका दावा या तो फ़रेब है या फिर एक ग़लतफ़हमी है, जो उसे अपने बारे में हो गई है। ऐसे लोग अगर, ख़ुदा न करे, हमारी जमाअत में पाए जाएँ तो उन्हें ज़रूर बता देना चाहिए कि आपके लिए यहाँ कोई जगह नहीं है। क्योंकि आपकी यह हरकत इस बात का पता देती है कि आपके अंदर शऊर की कमी है और आपके क़द्र व क़ीमत का मेयार अभी तक दुनियापरस्ताना ही है।

बस जो चीज बजाय ख़ुद दीनी एहसास का हिस्सा है उसे यहाँ एक तज्वीज़ की रौशनी में पेश करना और फिर एक जमाअती फ़ैसले की सूरत में लागू करना मेरे नज़दीक बिलकुल ऐसा है जैसे कल हम अपने इज्तिमा में यह तज्वीज़ पास करें कि जमाअत के सारे अरकान नमाज़ पढ़ें। जिस तरह हम जमाअत के अरकान के दीनी शऊर से यह उम्मीद रखते हैं कि वे ख़ुद अपने फ़र्ज़ के एहसास रखने की वजह से नमाज़ पढ़ेंगे न कि किसी जमाअती तज्वीज़ की वजह से, उसी तरह हम उनसे यह भी उम्मीद रखते हैं कि उनके नज़दीक रिश्तेदारियों, दोस्तियों और तमाम ताल्लुक़ात में दीनदारी और अख़लाक़ की पाकीज़गी का लिहाज़ दूसरी सारी लिहाज़ की जानेवाली चीज़ों में पहले नम्बर पर होगा।

तज्वीज़-5 : हर रुक्न को जिस्मानी तकलीफ़ें बर्दाश्त करने का आदी बनाने के लिए ज़रूरी हिदायतें दी जाएँ।

अमीरे जमाअत : अगर इसका मंशा यह है कि जमाअत में परेड और वर्ज़िश का इंतिज़ाम किया जाए और जंगी हुनर सिखाने के लिए अखाड़े क़ायम किए जाएँ तो यह हमारे तरीक़ेकार के बिलकुल ख़िलाफ़ है और अगर इसका मक़सद यह है कि लोगों को बनावटी तौर पर कुछ सख़्तियाँ बर्दाश्त करने के तरीक़े अपनाने का हुक्म दिया जाए तो यह एक फ़िज़ूल बात है। इस उसूली हक़ीक़त को अच्छी तरह समझ लीजिए कि ज़िन्दगी में बेशुमार चीज़ें ऐसी हैं जिनकी ज़रूरत पेश आती है, लेकिन अगर उनमें से हर एक को असली मक़सद

बनाया जाए और एक-एक के लिए लोगों को उकसाकर अलग-अलग इन्तिज़ाम किए जाएँ तो इस तरह न सिर्फ़ यह कि कोशिशें बिखर जाएँगी, बल्कि हक़ीक़त में इन बेशुमार छोटे-छोटे मक़सदों से भी किसी मक़सद के साथ लोगों की दिलचस्पी और लगाव ज़्यादा देर तक क़ायम न रह सकेगा। इसके विपरीत अगर लोगों की नज़रें किसी एक बुलंद नस्बुलऐन पर जमा दी जाएँ और उसका इश्क़ लोगों के दिलों में भड़का दिया जाए तो फिर लोग हर उस चीज़ के लिए काम करने लगेंगे जिसकी इस नस्बुलऐन के लिए उनको ज़रूरत महसूस होगी और मुख़्तलिफ़ कामों के लिए उनको अलग-अलग उकसाने की कोई ज़रूरत न रहेगी।

जो नस्बुलऐन इस वक़्त हमने अल्लाह के बन्दों के सामने पेश किया है और जिसकी कशिश से आप लोग खिंचकर आए हैं, बस सारी कोशिश इसी का इश्क़ अपने दिलों में और दूसरों के दिलों में भड़काने पर लगा दीजिए। फिर अगर इसके लिए जिस्मानी क़ुव्वत साथ-साथ पहुँचाने की ज़रूरत महसूस होगी तो इसका इन्तिज़ाम अपने वक़्त पर ख़ुद बख़ुद होगा। अगर वह सख़्ती बर्दाश्त करने की माँग करेगा तो नाज़ों के पले हुए लोग आप से आप इसके इश्क़ में मशक़्क़तें सहने लगेंगे। और अगर किसी हुनर को सीखने या किसी फ़न को हासिल करने का मुतालबा करेगा तो लोग दिली शौक़ के साथ उसकी तरफ़ दौड़ेंगे। इनमें से किसी काम के लिए भी किसी मुस्तक़िल तहरीक की ज़रूरत पेश नहीं आएगी, बल्कि तहरीक की तरक़्क़ी फ़ितरी तौर पर हर मरहले में अपनी ज़रूरतें आप पर ख़ुद ही वाज़ेह कर देगी और ख़ुद ही आपको मजबूर करके उन्हें पूरा भी कर लेगी। लेकिन अगर हम किसी चीज़ का वक़्त आने से पहले, तहरीक के अंदर उसकी माँग पैदा होने और उसकी ज़रूरत का एहसास उभरने से पहले बनावटी तौर पर उसके लिए मुहिम चलाएँगे तो नतीजा इसके सिवा कुछ न होगा कि हुक्म के तौर पर एक काम शुरू किया जाएगा, कुछ दिनों तक उसे आधे दिल और बददिली के साथ किया जाता रहेगा और फिर धीरे-धीरे वह ख़त्म हो जाएगा।

तज्वीज़-6 : हिन्दुस्तान के सभी इलाक़ों में तहरीक की इशाअत (प्रसार) के लिए जमाअत की पत्रिका 'तर्जुमान' और जमाअत के मक्तबा के रजिस्टरों से उन लोगों की ज़िलावार फ़ेहरिस्तें बनाई जाएँ जिन तक लिट्रेचर पहुँच चुका है, और फिर हर जगह की जमाअत को उसके ज़िला की या आसपास के ज़िलों की फ़ेहरिस्त पहुँचाने का इंतिज़ाम किया जाए।

अमीरे जमाअत : एक अर्से से मैं ख़ुद इस ज़रूरत को महसूस कर रहा हूँ, लेकिन 'मक्तबे' और 'तर्जुमान' (पत्रिका) का स्टाफ़ इतना कम है कि उसपर फ़ेहरिस्त बनाने का भार नहीं डाला जा सकता। अगर जमाअत के अरकान में से दो-तीन हज़रात कुछ दिनों के लिए यहाँ ठहर जाएँ तो यह ज़रूरत आसानी से पूरी हो सकती है।

(नोट : इस अपील पर कुछ लोगों ने अपनी ख़िदमात पेश कीं जिनमें से दो व्यक्तियों को यहाँ रोक लिया गया।)

तज्वीज़-7 : लिट्रेचर का अंग्रेज़ी और अन्य भाषाओं में अनुवाद होना चाहिए तथा 'तर्जुमान' का एक हिस्सा या अलग से एक पत्रिका अंग्रेज़ी में निकाली जाए।

अमीरे जमाअत : बेशक यह ज़रूरत अहम है। मगर अंग्रेज़ी भाषा के लिए अब तक हमें कोई मुनासिब आदमी नहीं मिला है। अन्य ज़बानों के लिए कुछ न कुछ इंतिज़ाम हो रहा है, जिसके बारे में आपको क़य्यिम जमाअत की रिपोर्ट से मालूम हो चुका है।

तज्वीज़-8 : औरतों और बच्चों के लिए आसान लिट्रेचर तैयार किया जाए।

अमीरे जमाअत : जहाँ तक बच्चों के लिट्रेचर का ताल्लुक़ है, यह ज़रूरत एक बड़ी हद तक हमारी इब्तिदाई तालीमी निसाब (शैक्षणिक पाठ्यक्रम) से पूरी हो जाएगी। अलबत्ता औरतों का सवाल ख़ास अहमियत रखता है और इसके लिए हमें औरतों ही की मदद हासिल करने की ज़रूरत है। जमाअत के अरकान को ख़ास तौर पर इस तरफ़ तवज्जोह करनी चाहिए कि ख़ुद अपने ख़ानदान की औरतों को अपने जैसा बनाएँ। इनशाअल्लाह उन्हीं में से कुछ ऐसी औरतें निकल आएँगी जो अपनी जैसी दूसरी औरतों में इस दावत को फैलाने के लिए मुफ़ीद काम कर सकेंगी।

तज्वीज़-9 : सही इस्लामी इतिहास की तरतीब।

अमीरे जमाअत : यह हमारी 'मजलिसे तहक़ीक़ाते-इल्मिया' (रिसर्च एकेडमी) के प्रोग्राम में शामिल है, जिसे अपनी दर्सगाह की स्कीम को शुरू करने के बाद ही इनशाअल्लाह हम अमली रूप देंगे।

तज्वीज़-10 : अवाम और ग़ैर-मुस्लिमों में इशाअत (प्रचार-प्रसार) के लिए आसान लिट्रेचर की फ़राहमी और देहातों में रहनेवालों से ताल्लुक़ पैदा करने की ज़रूरत है।

अमीरे जमाअत : बेशक अवाम और ग़ैर-मुस्लिमों के लिए हमारे लिट्रेचर में अब तक बहुत कम चीज़ें हैं। इसकी वजह यह है कि इस वक़्त तक लिट्रेचर तैयार करने का सारा काम एक ही शख़्स करता रहा है जो ख़ासकर तालीमयाफ़्ता लोगों के लिए ही लिखने की सलाहियत रखता है। अब ज़रूरत है कि जमाअत में जो लोग लिखने की सलाहियत रखते हैं, वे अपना जायज़ा लेकर ख़ुद अंदाज़ा करें कि वे किस तबक़े के लोगों के लिए किस क़िस्म की चीज़ें लिख सकते हैं और अमलन अपनी क़ुव्वतों को इस काम में इस्तेमाल करना शुरू कर दें। जहाँ तक उसकी छपाई का मामला है, ऐसी चीज़ों को तो हमारा मक्तबा ख़ुद छाप सकता है जो सीधे तौर पर जमाअती लिट्रेचर क़रार पा सकती हों। रहीं वे चीज़ें जो हमारी दावत के किसी न किसी तरह का क़रीबी ताल्लुक़ रखती हों तो उनकी छपाई के लिए जमाअत के अरकान आपस में मिलकर मुख़्तलिफ़ जगहों पर अपने प्रकाशन क़ायम कर सकते हैं या उन प्रकाशनों से ताल्लुक़ पैदा कर सकते हैं जो पहले से कुछ अरकान ने क़ायम कर रखे हैं।

अवाम से ताल्लुक़ पैदा करने के लिए बेहतरीन तरीक़ा वही है जो मैंने तालीमे बालिग़ान (प्रौढ़ शिक्षा) की शक्ल में पेश किया है। रहा देहात में काम करने का सवाल तो इसके बारे में मैं इससे पहले भी कई मौक़ों पर कह चुका हूँ और लिख भी चुका हूँ कि यह काम सिर्फ़ उन लोगों को करना चाहिए जो इसकी सलाहियत रखते हों और इससे ज़्यादा क़ीमती काम न कर सकते हों। हर किसी का उठकर सीधे देहात की ओर चल पड़ना महज़ एक नादानी है और वक़्त की बहती हुई धारा के पीछे दौड़ना है। इसी तरह जो शख़्स देहात में चक्कर लगाने से ज़्यादा क़ीमती काम कर सकता हो उसका महज़ इसलिए देहात का रुख़ करना कि आजकल इस काम ने लोगों में मक़बूलियत हासिल कर ली है, अपनी क़ुव्वतों का ग़लत इस्तेमाल है और इसपर ख़ुदा के यहाँ अज्र मिलने के बजाय बाज़पुर्स होने का ख़तरा है। अलबत्ता जो लोग देहाती आबादी को समझाने की क़ाबिलियत रखते हैं और जिसको इस काम से पैदाइशी लगाव है उन्हें इस तरफ़ ज़रूर ध्यान देना चाहिए। लेकिन इसके लिए सही तरीक़ा यह नहीं है कि एक पार्टी उठे और कुछ दिनों के भीतर एक छोर से दूसरे छोर तक बहुत-से देहातों का चक्कर लगाकर आ जाए। बल्कि इसका सही तरीक़ा यह है कि एक गाँव का चुनाव कीजिए और उसमें एक लम्बी मुद्दत तक लगातार काम करते रहिए। यहाँ तक कि कुछ आदमी वहाँ आपके पक्के हमख़याल, अख़लाक़ी हैसियत से काफ़ी हद तक बदले हुए और हमारी तहरीक के कारकुन बनने के लायक़ हो जाएँ।

फिर उन्हें ख़ुद उनकी बस्ती में इस्लाह व दावत का काम इसी तरीक़े पर करने के लिए इस्तेमाल कीजिए।

(नोट : तालीमे बालिग़ान के लिए निसाब तैयार करने और मुल्क के दूसरे इदारों के तैयार किए हुए निसाबों में से मुफ़ीद चीज़ें चुनने का काम मुहम्मद शफ़ी साहब, 92-अहाता एहसान अली, ग़ाज़ियाबाद, और सैयद नक़ी अली साहब, दारुस्सलाम, पठानकोट, ने अपने ज़िम्मे लिया है।)

तज्वीज़-11 : कुछ जगहों पर ज़ैली मरकज़ों (उप-केन्द्रों) को क़ायम करने की तज्वीज़ें।

अमीरे जमाअत : अगर अभी कुछ दिनों के लिए ज़ैली मरकज़ों की तज्वीज़ को रोके रखा जाए तो ज़्यादा बेहतर होगा। इसलिए कि फ़िलहाल हमें अपनी जमाअत की तमाम क़ुव्वत और अपने सारे संसाधन और काम के लोगों को जमा करके अस्ल मरकज़ को ताक़तवर बना लेना चाहिए। फिर जितने भी ज़ैली मरकज़ मुल्क के मुख़्तलिफ़ इलाक़ों में बनेंगे, इनशाअल्लाह, वे हमारे लिए मुफ़ीद साबित होंगे और उनसे मरकज़ को और मरकज़ से उनको ताक़त मिलेगी। लेकिन अगर इस वक़्त हमारे अरकान और हमारी बाहर की जमाअतें ज़ैली मरकज़ बनाने की तरफ़ ध्यान देंगी तो इसका नतीजा यह होगा कि हमारी क़ुव्वतें बिखरकर रह जाएँगी। न अस्ल मरकज़ ही बन सकेगा और न ज़ैली मराकिज़ ही कोई मुफ़ीद सूरत इख़्तियार कर सकेंगी। इससे मेरा यह मतलब नहीं है कि आप लोग जहाँ-जहाँ ज़ैली मराकिज़ क़ायम करने के इमकान और मौक़ा पाते हैं उनपर ग़ौर करना भी छोड़ दें। बेहतर है कि तमाम पहलू आपके सामने रहें और जब ज़ैली मराकिज़ क़ायम करने का मौक़ा आए, तो सोची-समझी स्कीमें आपके पास तैयार हों।

तज्वीज़-12 : मरकज़ किसी मरकज़ी (केन्द्रीय) जगह पर होना चाहिए।

अमीरे जमात : मरकज़ी जगह तो वही होती है जहाँ मरकज़ हो। अब इस सवाल को छोड़ ही दिया जाए तो बेहतर है। जब एक मर्तबा मिल-जुलकर हम फ़ैसला कर चुके हैं कि हमें यहीं बैठकर काम करना है तो इस सवाल को बार-बार उठाने से कोई फ़ायदा नहीं है। इसके अलावा हमें तजुर्बे से यह भी मालूम हो चुका है कि अक्सर इस क़िस्म की तज्वीज़ें महज़ ख़्वाहिश की शक्ल में आती हैं। हालाँकि ख़्वाहिश में न आदमी रह सकते हैं न बुक डिपो रखा जा सकता है और न प्रेस लगाया जा सकता है। इन चीज़ों के लिए तो जगह और कमरे चाहिएँ जो यहाँ किसी न किसी हद तक मौजूद तो हैं।

तज्वीज़-13 : औरतों में तहरीक की तरक़्क़ी की अमली स्कीम बनाई जाए और इसके लिए हिदायतें दी जाएँ।

अमीरे जमाअत : वाक़ई हमारे लिए यह सवाल बहुत अहम है कि औरतों को किस तरह अपने साथ लें। यह तो ज़ाहिर है कि जब तक औरतें हमारे साथ न हों पचास फ़ीसदी आबादी मुस्तक़िल तौर पर हमसे दूर रहेगी और वह पचास फ़ीसद आबादी भी वह होगी जिसकी गोद में बाक़ी पचास फ़ीसदी आबादी तैयार होती है। लिहाज़ा हमारी तहरीक की तरक़्क़ी के लिए औरतों का इसमें शामिल होना उतना ही ज़रूरी है जितना मर्दों का शामिल होना। लेकिन हमारे लिए यह काम इतना आसान नहीं है जितना दूसरी तहरीकों के लिए है। दूसरी तहरीकें तो औरतों को आज़ादी का सबक़ पढ़ाकर घरों से बाहर निकाल लाती हैं और उन्हें मर्दों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर दौड़-धूप के लिए तैयार कर लेती हैं। लेकिन हमें जो कुछ करना है इस्लामी उसूलों की पाबंदी करते हुए उन हदों के भीतर करना है जो शरीअत ने मुक़र्रर किए हैं। यही वजह है कि मौजूदा हालत में हमें इस मामले में मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है।

फिलहाल मेरे नज़दीक औरतों में इस तहरीक को फैलाने के लिए इसके सिवा कोई सूरत नहीं है कि हमारे रुफ़क़ा और हमदर्द ख़ुद अपनी माओं और बहनों-बेटियों और अपने ख़ानदान की दूसरी औरतों में अपने ख़यालात फैलाएँ, अपने अमली अख़लाक़ से उनको मुतास्सिर करें। इनमें जो तालीमयाफ़्ता हों उनको लिट्रेचर पढ़वाएँ और जो तालीमयाफ़्ता न हों उन्हें ख़ुद तालीम दें। इस तरह जब एक लम्बी मुद्दत तक कोशिश की जाएगी और उसके नतीजे में जब औरतों की एक बड़ी तादाद हमारे ख़याल की बन जाएगी, तब यह उम्मीद की जा सकती है कि ख़ुद औरतों ही में से ऐसी कारकुन औरतें हमें मिल जाएँगी जो दूसरे घरों तक हमारे ख़यालात और अख़लाक़ी असरात फैला सकेंगी। लेकिन इस मामले में ख़ास तौर पर यह एहतियात मलहूज़ रखी जाए कि जमाअत के अरकान अपनी बीवियों को सिर्फ़ इस वजह से जमाअत में दाख़िल न कर लें कि वे उनकी बीवियाँ हैं। इस तहरीक के मामले में शौहर होने के हक़ का इस्तेमाल सही नहीं है, वरना इस तरह बहुत-सी बीवियाँ महज़ अपने शौहरों के साथ बेमतलब की चीज़ बनकर जमाअत में आ जाएँगी, बग़ैर इसके कि उनके ख़यालात और उनकी ज़िन्दगी में कोई वाक़ई बदलाव हो। आप अपने घरों में उसी तरह तबलीग़ कीजिए जिस तरह बाहर करते हैं और सब्र के साथ लगातार कोशिश करते रहिए कि आपकी बीवियों और आपके ख़ानदान की दूसरी औरतों

के ख़यालात, सोचने का तरीक़ा, नुक़त-ए-नज़र और अख़लाक़ में वह हक़ीक़ी तबदीली पैदा हो, जो इस जमाअत का काम करने के लिए ज़रूरी है। जिस तरह हम इस तबदीली के बग़ैर और पुख़्तगी का सुबूत मिले बग़ैर मर्दों को जमाअत में शामिल नहीं कर सकते, उसी तरह औरतों को भी शामिल नहीं करना चाहते।

तज्वीज़-14 : ग़ैर-ख़ुदाई निज़ाम और ग़ैर-शरई कमाई के ज़रियों से अलग होनेवाले लोगों की मदद का इन्तिज़ाम।

अमीरे जमाअत : इसमें कोई शक नहीं कि जो लोग हमारे अक़ीदे व मस्लक को क़बूल करके कमाई के उन ज़रियों को छोड़ते हैं जो दीन के ख़िलाफ़ हैं, उन्हें दूसरे मुनासिब ज़रिये दिलाने में जिस हद तक हम मदद कर सकते हैं हमें करनी चाहिए। लेकिन यह मदद सिर्फ़ हमारे अपने अख़लाक़ी फ़राइज़ में शामिल है। इसे कोई जमाअती प्रोग्राम बनाना और जमाअत के ऊपर यह ज़िम्मेदारी डालना कि इसका इन्तिज़ाम करे, उसूली तौर पर सही नहीं है। जमाअत इसके सिवा कुछ नहीं कर सकती कि लोगों के सामने हक़ और बातिल का फ़र्क़ वाज़ेह कर दे और उनके अंदर हराम व हलाल की तमीज़ पैदा कर दे। इसके बाद जो लोग हक़ को हक़ तस्लीम करें और बातिल से अलग होना चाहें, और हराम को हराम जानकर उसे छोड़ना और हलाल को अपनाना चाहें उनका ख़ुद यह अपना काम है कि वे अपने लिए कमाई का जाइज़ तरीक़ा तलाश करें और अपनी ज़िन्दगी को नाजाइज़ गंदगियों से पाक करें।

अगर कोई नेक अख़लाक़ की दावत देनेवाली जमाअत लोगों को बदकारी छोड़कर निकाह का मशविरा देती है तो उसके ऊपर यह ज़िम्मेदारी नहीं आती कि वह एक 'मैरिज ब्यूरो' खोले। इसी तरह कोई वजह नहीं कि दीने हक़ की दावत देनेवाली जमाअत पर सिर्फ़ इसलिए रोज़गार के इन्तिज़ाम की ज़िम्मेदारी डाली जाए कि वह लोगों को हराम ज़रिया छोड़ने और हलाल ज़रिया अपनाने की हिदायत करती है। अलबत्ता ऐसी जमाअत के लोगों का अख़लाक़ी फ़र्ज़ ज़रूर बनता है कि जहाँ वे ख़ुद हराम ज़रियों से बचने और हलाल ज़रिया को ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं, इसके साथ दूसरे ऐसे लोगों की भी मदद करें जो उन्हीं की तरह इस ग़रज़ के लिए हाथ-पाँव मार रहे हों। जमाअती हैसियत से जो कुछ ज़्यादा से ज़्यादा हम कर सकते हैं, वह सिर्फ़ इतना है कि छोटे-छोटे रोज़गारों और मुख़्तलिफ़ कारोबारी कामों के बारे में अगर कुछ जानकारी हमारे पास मौजूद हो तो वह हम ऐसे लोगों को उपलब्ध करा दें, जो मौजूदा नापाक मआशी निज़ाम (अपवित्र आर्थिक व्यवस्था) में उसके मुक़ाबले कोई पाक काम करना चाहते हैं।

इसी तरह हम यह भी कर सकते हैं कि जमाअत के मुख़्तलिफ़ अरकान जो किसी कारख़ाने या कारोबारी स्कीम को चलाना चाहते हों वे अगर हमें अपनी तज्वीज़ों से बाख़बर रखें तो हम दूसरे अरकान के साथ उनका ताल्लुक़ क़ायम कराने की कोशिश करें।

तज्वीज़-15 : सज्जादानशीनों और पीरों को इस तहरीक की तरफ़ दावत देने के लिए कोई ख़ास क़दम उठाया जाए। क्योंकि उनमें से किसी एक शख़्स की शिरकत भी कई हज़ार आदमियों की शिरकत के बराबर है।

अमीरे जमाअत : इसमें कोई शक नहीं कि हमारे मुल्क में यह तबक़ा बहुत ज़्यादा असर रखता है और लाखों-करोड़ों आदमी इससे जुड़े हुए हैं। लेकिन इसमें बहुत कम लोग ऐसे हैं जो वाक़ई भलाई पहुँचानेवाले, ख़ुदातरस और हक़पसंद हैं। ज़्यादा तादाद इस तबक़े में ऐसे लोगों की है जिनसे ज़्यादा ख़ुदा से फिरे हुए लोग शायद दुनिया में नहीं मिलेंगे। इन्होंने हक़ के लिए सिर्फ़ अपने ही कान नहीं बंद कर रखे हैं बल्कि अपने मुरीदों और अक़ीदत रखनेवालों के कानों और दिलों पर भी मोहरें लगा रखी हैं। इन्हें दावत देने का फ़ायदा यह तो न होगा कि वे हक़ की आवाज़ पर लब्बैक कहेंगे और अपनी नीम ख़ुदाई (अर्ध ईश्वरत्व) को छोड़ने पर आमादा हो जाएँगे, अलबत्ता इसका यह नतीजा ज़रूर होगा कि हम भिड़ों के छत्ते में ख़ुद पत्थर फेंक-फेंककर उन्हें काटने पर उकसाएंगे। बजाय इसके कि आप इन लोगों को ख़िताब करें, आपको कोशिश करनी चाहिए कि उनसे अक़ीदत रखनेवालों के हलक़ों में सही दीनी ख़यालात फैलाएँ और उनकी कमज़ोरियों को ध्यान में रखते हुए अपनी तबलीग़ में एहतियात से काम लें। इन पीरों का तिलिस्म (जादू) तो बहरहाल टूटना चाहिए। हमारे हाथ से न टूटेगा तो कम्युनिज़्म के हाथों टूटकर रहेगा। मगर हमारी दुआ यह है कि यह हमारे हाथ से टूटे, क्योंकि कम्युनिज़्म के हाथ से यह टूटा तो इन पीरों के साथ-साथ दीन भी टूट जाएगा।

तज्वीज़-16 : अमीर जमाअत कुछ ख़ास लोगों को साथ लेकर मुल्क में तबलीग़ी दौरा करें।

अमीरे जमाअत : इस तज्वीज़ पर बहुत पहले से ग़ौर कर रहा था। लेकिन अव्वल तो मरकज़ के कामों का भार मुझपर बहुत ज़्यादा है। फिर कुछ अर्से से मेरी सेहत भी लगातार ख़राब रही है, इसलिए अब तक इसपर अमल नहीं हो सका। मैं इस इंतिज़ार में हूँ कि मरकज़ का काम ऐसा हो जाए कि मेरे बग़ैर भी चलता रहे, और मेरी सेहत भी कुछ ठीक हो जाए तो मुल्क के मुख़्तलिफ़ हिस्सों

में जाने की कोशिश करूँगा।

तज्वीज़-17 : अवाम में काम करने के लिए मौलाना मुहम्मद इलियास साहब (मरहूम) के तबलीग़ के तरीक़े को अपनाया जाए।

अमीरे जमाअत : इस बारे में मैं अपना ख़याल पहले ही पेश कर चुका हूँ। मैं मौलाना मरहूम के तबलीग़ के तरीक़े के ख़िलाफ़ नहीं बोलना चाहता। जो लोग उनके काम करने के तरीक़े पर मुतमइन हों वे उनके कारकुनों में शामिल होकर काम कर सकते हैं और बहरहाल यह भी एक नेक काम होगा। मगर मैं इसे सही नहीं समझता कि इस जमाअत के लिए काम का जो तरीक़ा मैंने अपनाया है उसके साथ दूसरे तरीक़ों का जोड़ लगाने की कोशिश की जाए। मैं जिस हद तक उनके तबलीग़ के तरीक़े को जानता हूँ उसपर मुतमइन नहीं हूँ और जिस क़िस्म का मुकम्मल इंक़िलाब हमारे सामने है, उसके लिए वह तरीक़ा कुछ भी मददगार नहीं हो सकता।

तज्वीज़-18 : हिन्दुस्तान के सारे उलमा को जमा करके उनके सामने यह दावत पेश की जाए।

अमीरे जमाअत : यह एक ख़याली तज्वीज़ है जिसे कोई ऐसा शख़्स क़ाबिले अमल नहीं समझ सकता, जिसे इन मामलों के बारे में कोई अमली तजुर्बा हो। आप लोगों में से कोई शख़्स ख़ुद से यह तजुर्बा करना चाहे तो मैं उसे रोकता नहीं। लेकिन मैं ख़ुद इस क़िस्म की कोई पहल नहीं कर सकता। यह बात किसी नफ़्सानियत की बुनियाद पर नहीं कह रहा हूँ, बल्कि इसकी वजह सिर्फ़ यह है कि मैं इसे बेकार समझता हूँ और इससे किसी मुफ़ीद नतीजे की मुझे उम्मीद नहीं है। जहाँ तक दावत के पहुँचने का ताल्लुक़ है मुझे यह मालूम है कि इस मुल्क के उलमा और पढ़े-लिखे लोगों में ज़्यादातर लोगों तक यह पहुँच चुकी है। अगर कोई इसके सही व हक़ पर होने पर मुतमइन हो जाए तो वह बग़ैर इसके भी इस दावत पर लब्बैक कह सकता है कि कोई उसके पास जाकर मुलाक़ात करके दावत दे। हक़ के माननेवालों से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वे कहीं से हक़ की पुकार सुनने और यह इतमीनान हो जाने के बाद कि यह वाक़ई हक़ की पुकार है, सिर्फ़ इसलिए अपनी जगह बैठे रहेंगे कि ख़ास तौर से उनके दरवाज़े पर हाज़िर होकर आवाज़ नहीं लगाई गई।

तज्वीज़-19 : जमाअत में जो उलमा हैं वे अपने आसपास के इलाक़े की मक़ामी जमाअतों का दौरा करके उन्हें ज़िंदा रखने की कोशिश करें।

अमीरे जमाअत : यह तज्वीज़ वाक़ई ध्यान देने के क़ाबिल है। जो उलमा इस जमाअत में शरीक हुए हैं, उन्हें ख़ुद अपनी ज़िम्मेदारी को महसूस करना चाहिए और अपने वक़्त का कुछ हिस्सा इस काम के लिए हमेशा निकालते रहना चाहिए कि अपने आसपास के इलाक़े में दौरा करके मक़ामी जमाअतों को सक्रिय करते रहें और अरकान की अख़लाक़ी और दीनी हालत को भी बेहतर से बेहतर बनाने की कोशिश करें। लेकिन मैं चाहता हूँ कि इस क़िस्म के काम हुक्म से करने के बजाय आप अपनी मर्ज़ी से करें। बेहतरीन ख़िदमत वही होती है जो इनसान अपने दिली जज़्बे और एहसासे ज़िम्मेदारी के ख़याल से करता है। मेरी पूरी कोशिश यही है कि लोगों को अपनी मर्ज़ी से काम करने पर उकसाऊँ और उनमें इतना एहसासे ज़िम्मेदारी पैदा कर दूँ कि वे अपनी क़ुव्वतों और सलाहियतों का ख़ुद जायज़ा लें और ख़ुद उन्हें अल्लाह के दीन के काम में ज़्यादा बेहतर तरीक़े से इस्तेमाल करने की कोशिश करें।

तज्वीज़-20 : दावत व तबलीग़ के काम को हिन्दुस्तान से बाहर तक फैलाने की कोशिश की जाए।

अमीरे जमाअत : यह चीज़ भी शुरू से हमारे सामने थी और अगर जंगी हालात पेश न आते तो अब तक इस सिलसिले में भी हम कुछ न कुछ ज़रूर पेशक़दमी करते। फ़िलहाल हमने दारुल उरूबा इसी ग़रज़ के लिए क़ायम किया है कि अरबी ज़बान में लिट्रेचर तैयार करें और उसे अरब देशों में पहुँचाने की कोशिश करें। जंगी रुकावटें ख़त्म हो जाने के बाद इनशाअल्लाह हम अरबी लिट्रेचर के प्रकाशन का सिलसिला शुरू कर देंगे और अरबी में एक मासिक पत्रिका भी जारी करेंगे। फिर मेरा इरादा यह भी है कि जब अरबी में कुछ लिट्रेचर तैयार हो जाए तो जमाअत के कुछ लोगों को लेकर ख़ुद हज को जाऊँ और वहाँ मुख़्तलिफ़ देशों से आए हुए हाजियों तक इस दावत को पहुँचाने की कोशिश करूँ। इस तरह उम्मीद है कि हमें विदेश के कुछ अच्छे आदमियों से ताल्लुक़ क़ायम करने का मौक़ा भी मिल जाएगा और ज़्यादा बड़े पैमाने पर काम करने की राह खुल सकेगी। इसके अलावा हम अंग्रेज़ी को भी इशाअत का ज़रीया बनाने के लिए हाथ-पैर मार रहे हैं ताकि एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा हमारी दावत का ज़रीया बन सके।

तज्वीज़-21 : जमाअत के मक्तबे में ख़ुद जमाअती लिट्रेचर के अलावा दूसरा अच्छा लिट्रेचर भी रखा जाए।

अमीरे जमाअत : यह तज्वीज़ दिल्ली के इज्तिमा में हमारे सामने आई थीं

और उस वक़्त मौलाना मसऊद आलम साहब के हवाले यह काम किया गया था कि वह उर्दू लिट्रेचर में से ऐसी किताबों को छाँटने की कोशिश करें जिनमें सही दीनी नज़रिया पेश किया गया हो और जिसे हमारे मक़सद के लिहाज़ से सालेह लिट्रेचर कहा जा सकता हो। इस सिलसिले में उन्होंने काफ़ी मेहनत की और इस नतीजे पर पहुँचे कि उर्दू ज़बान इस लिहाज़ से बहुत ग़रीब है। एक मुद्दत से सही दीनी तसव्वुर ग़ायब है, इसलिए जो बेहतर से बेहतर लिट्रेचर भी मौजूद है उसमें ग़ैर-महसूस तौर पर ऐसी चीज़ें आ गई हैं जो पढ़नेवालों की ग़लत रहनुमाई करती हैं। इसी वजह से हम दूसरी किताबों की इशाअत अपने मक्तबे से करने में बहुत ज़्यादा एहतियात करते हैं। जब तक हमारी दावत व तबलीग़ का असर इतना नहीं फैल जाता कि देश के पढ़े-लिखे लोग आम तौर पर इससे मुतास्सिर हो जाएँ, यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि सही क़िस्म का इस्लामी लिट्रेचर मिल सकेगा। फिर भी जो एक छोटी-सी लिस्ट मौलाना मसऊद आलम साहब ने बनाई है उसके मुताबिक़ किताबें हासिल करने की हम कोशिश करेंगे।

तज्वीज़-22 : हमारी दर्सगाहों के लिए जो निसाब तैयार हुआ है उसे जल्दी से जल्दी छपवाने की कोशिश की जाए।

अमीरे जमाअत : यह तज्वीज़ हमारी नज़र में है। लेकिन निसाब तैयार होने के बाद यह फ़ैसला करना कि यह छपने के क़ाबिल कब हो सकेगा, हमारी दीनी दर्सगाहों के मुंतज़िमीन (प्रबंधक) यानी मौलाना अमीरे एहसन साहब और ग़ाज़ी मुहम्मद अब्दुल जब्बार साहब का काम है। फ़िलहाल यह राय क़ायम की गई है कि निसाब तैयार होते ही फ़ौरन उसे न छपवाया जाए, बल्कि अमलन जब हम उसका तजुर्बा करके देख लें कि जो नताइज हमें उससे अपेक्षित हैं वे प्राप्त हो रहे हैं, उस वक़्त उसे पब्लिक में पेश किया जाए।

तज्वीज़-23 : तज्वीज़ में आपने दर्सगाहों के दाख़िलों में यह शर्त जो लगाई गई है कि छात्रों के माँ-बाप हमारे मक़सद और नज़रिए से न सिर्फ़ इत्तिफ़ाक़ रखते हों, बल्कि अपने बच्चों को उस नस्बुलऐन के लिए दे देने का वादा करें जो हम चाहते हैं, इसे हटा दिया जाए और दाख़िले को आम बच्चों के लिए खुला रखा जाए, ताकि एक बड़ी तादाद हमारी दर्सगाहों में आ सके और हमें उनके ज़ेहन व अख़लाक़ पर असर डालने का मौक़ा मिल सके।

अमीरे जमाअत : यह शर्त बहुत सोच-विचार के बाद लगाई गई है और इसे तय करते वक़्त सभी पहलुओं पर अच्छी तरह नज़र डाल ली गई है। इसमें शक नहीं कि देखने में यह बात बहुत वज़नी मालूम होती है कि हर क़िस्म के बच्चों

को हम अपनी दर्सगाहों में आने दें और अपनी तालीम व तर्बियत के असर से उन्हें इस हद तक मुतास्सिर कर लें कि वे अक़ीदे और अमल से हमारे ही मसलक के हो जाएँ। लेकिन अगर गहरी नज़र से देखा जाए तो मालूम होगा कि इस तरीक़े से हम कुछ ज़्यादा फ़ायदा नहीं उठा सकेंगे और जितना फ़ायदा उठा सकेंगे उसके मुक़ाबिले में हमें अपने वक़्त और कुव्वतों के गवाँने का नुक़सान ज़्यादा पहुँचेगा।

आजकल आम तौर पर लोग जिस मक़सद के लिए अपने बच्चों को पढ़वा रहे हैं वह सिर्फ़ रुपया कमाना है। उन्हें दीन से अगर कोई दिलचस्पी होती भी है तो वह सिर्फ़ इतनी कि उनके बच्चे नमाज़-रोज़े के भी कुछ पाबंद हो जाएँ और दीनियात की कुछ जानकारी भी हासिल कर लें। इससे आगे बढ़कर वे ऐसी किसी दीनदारी के मुश्किल ही से क़ायल होते हैं जो उनके बच्चों की दुनिया बनाने में, चाहे वह दुनिया कैसे ही नापाक तरीक़ों से बना करती हो, रुकावट हो जाए। इस क़िस्म के लोग अगर अपने बच्चों को हमारी दर्सगाह में भेजेंगे तो उनका मक़सद यह होगा कि यहाँ हमारी मेहनतों से फ़ायदा उठाकर वे उन्हें शुरू के कुछ क्लास तक आम मदरसों से कुछ बेहतर तालीम दिलवा लें। इसके बाद वे उन्हें यहाँ से निकालकर सरकारी स्कूलों में दाख़िल करेंगे। इम्तिहान दिलवाएँगे और कम या ज़्यादा तनख़्वाहों के बदले शैतान के हाथ बेच डालेंगे। छात्रों का एक बड़ा हिस्सा हमारी तालीम व तर्बियत से मुतास्सिर होने के बावजूद माँ-बाप के दबाव से मजबूर होकर उसी राह पर चला जाएगा और बहुत कम छात्र शायद मुश्किल से पाँच प्रतिशत ऐसे मज़बूत निकलेंगे जो हमारे नस्बुलऐन को अपनी ज़िन्दगी का नस्बुलऐन बना लें और माँ-बाप के दबाव को क़बूल करके किसी ग़लत राह पर न जाएँ।

सवाल यह है कि उन पाँच प्रतिशत को हासिल करने की ख़ातिर हम ऐसे 95 प्रतिशत लड़कों पर अपनी कुव्वत और मेहनत क्यों लगाएँ जो दीन के काम नहीं, बल्कि शैतान के काम आने के लिए परवरिश किए जा रहे हों। फिर अमलन जिस-जिस तरीक़े से इन 95 प्रतिशत छात्रों को सच्चे रास्ते से हटाने की कोशिश की जाएँगी, जिस तरह उनपर दबाव डाले जाएँगे, उन्हें घर से निकालने और उनके ख़र्च बंद करने की धमकियाँ दी जाएँगी, ख़ुद उनके भाई-बंधु और उनके माँ-बाप जिस तरह उन्हें तंग करेंगे और सताएँगे, और फिर अच्छे-अच्छे नेक तबीअतवाले व बुलंद इरादे रखनेवाले छात्र आख़िरकार हार मानकर पीछे हट जाएँगे और अपने पाकीज़ा इरादों को तलाक़ दे देंगे। इनका बहुत बुरा असर

दूसरे छात्रों पर पड़ेगा और इन लगातार हार की बुरी मिसालें दूसरे छात्रों की अखलाक़ी क़ुव्वत को भी कमज़ोर कर देंगी। फिर हम अपनी दर्सगाहों को और उनके माहौल को इस हमेशा के ख़तरे में उलझा हुआ नहीं रखना चाहते। हम चाहते हैं कि शुरू ही से सिर्फ़ वे लोग अपने बच्चो को हमारे यहाँ भेजें, जिन्हें मालूम हो कि हम किस मक़सद के लिए इन लड़कों को तैयार करना चाहते हैं, और वे ख़ुद भी इसी मक़सद के लिए उन्हें तैयार कराना चाहते हों। ऐसे लोगों के बच्चे चाहे कितनी ही कम तादाद में क्यों न हों, पूरी तरह हमारे मतलब के होंगे। मुमकिन है कि इस तरह हमें छात्रों की कोई बड़ी तादाद न मिल सके, लेकिन हमें इसकी परवाह नहीं है। अगर पाँच एकड़ ज़मीन आपको ऐसी मिले जो पूरे इत्मीनान के साथ आपकी हो तो उसमें खेती करना उससे बेहतर है कि हज़ारों एकड़ ज़मीन आपको मिले मगर हर वक़्त अंदेशा हो कि इसका बहुत बड़ा हिस्सा आपकी तैयार की हुई हरी-भरी फ़सल के साथ आपसे छीन लिया जाएगा। लेकिन यह गुमान नहीं करना चाहिए कि हिन्दुस्तान में इस उद्देश्य के लिए अपने बच्चों को देनेवाले बहुत कम होंगे। इतने कम कि कोई दर्सगाह उनसे न चलाई जा सके। मेरा अंदाज़ा है कि इस गई-गुज़री हालत में भी इस मुल्क में ऐसे लोग काफ़ी तादाद में मौजूद हैं जो अपने बच्चों को ख़ुदा की राह में लगाने को तैयार होंगे, और इसकी परवाह नहीं करेंगे कि उनके बच्चों की दुनिया बनेगी या नहीं।

हमारी इस शर्त से ऐसे छात्र अलग होंगे जो दीन के मामले में अपने माँ-बाप से बग़ावत करके आएँ और अपनी आख़िरत को माँ-बाप की मर्ज़ी के मुताबिक़ चलकर ख़राब कर लेने पर तैयार न हों। सिर्फ़ यही एक मामला ऐसा है जिसमें माँ-बाप से बग़ावत करना जाइज़ ही नहीं, कभी-कभी फ़र्ज़ हो जाता है। और ऐसे छात्रों पर हम यह लाज़िम नहीं करेंगे कि वे अपने माँ-बाप की रज़ामंदी हासिल करके आएँ।

तज्वीज़-24 : पत्रिका 'तर्जुमानुल क़ुरआन' और 'कौसर' को जमाअत का हर रुक्न ज़रूर ख़रीदे।

अमीरे जमाअत : शायद यह बात आपके सामने नहीं है कि आप हिन्दुस्तान में रहते हैं जहाँ की अख़लाक़ी हालत यह है कि बिना किसी ग़रज़ के काम करने के बाद भी कोई शख़्स ख़ुदगर्ज़ी के इलज़ामों और बदगुमानियों से माफ़ नहीं रखा जाता। इस वक़्त तक जिस एहतियात के साथ हम काम करते रहे हैं इसके बावजूद हमें बुक सेलर और कारोबारी अलफ़ाज़ से अकसर नवाज़ा जाता रहता

है, सिर्फ़ इसलिए कि किताबें तो बहरहाल हमारे बुक डिपो में बिकती ही हैं। अब क्या इन इलज़ामों को वाक़ई हम पर चस्पाँ ही कर देना चाहते हैं? मेहरबानी करके इस क़िस्म की तज्वीज़ें न ज़बान पर लाएँ न दिल में सोचें। पत्रिका 'तर्जुमानुल कुरआन' और 'कौसर' दोनों के मामलों में जमाअत के लोगों को बिलकुल आज़ादी रहनी चाहिए कि चाहे उन्हें ख़रीदें या न ख़रीदें। ख़रीदारी को लाज़िमी कर देने की कोई वजह नहीं है। अलबत्ता जमाअत के कामों से और जमाअती फ़िक्र से बाख़बर रहने के लिए इनका मुतालआ ज़रूरी है, मगर इसके लिए किसी ख़रीदार से लेकर पढ़ लेना भी काफ़ी हो सकता है।

तज्वीज़-25 : हर रुक्न अपनी ज़कात 'बैतुलमाल' ही में दाख़िल किया करे।

अमीरे जमाअत : इस बारे में मैं रिपोर्टों पर तबसिरे के सिलसिले में हिदायतें दे चुका हूँ और मुझे उम्मीद है कि अब इस सिलसिले में जो हिदायत दी गई हैं उसकी पूरी पाबंदी की जाएगी।

तज्वीज़-26 : हर रुक्न अपनी आमदनी व ख़र्च का हिसाब अपनी मक़ामी जमाअत के अमीर के सामने पेश किया करे।

अमीरे जमाअत : यह मुतालिबा हम शरीअत की वजह से अपने अरकान से नहीं कर सकते क्योंकि नबी करीम (सल्ल०) ने ऐसा नहीं किया।

तज्वीज़-27 : हर रुक्न रोज़ाना चार आने बैतुलमाल के लिए बचाए।

अमीरे जमाअत : चूँकि शरीअत के मुताबिक़ हमें ऐसी पांबदियाँ लगाने का हक़ नहीं है और नबी करीम (सल्ल०) के ज़माने में ज़कात और वाजिब सदक़ात के सिवा किसी क़िस्म के इंफ़ाक़ (ख़ुदा की राह में ख़र्च) को लाज़िम नहीं किया गया है, इसलिए हम भी ऐसी कोई पाबंदी अपनी जमाअत में लागू नहीं कर सकते। दरहक़ीक़त इंफ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह का अस्ल फ़ायदा ही ख़त्म हो जाता है अगर उसे लाज़िम कर दिया जाए। जिस हद तक इज्तिमाई ज़रूरतों के लिए ज़रूरी था, अल्लाह ने हर इस्तिताअत (सामर्थ्य) रखनेवाले आदमी पर ख़ुद ही इंफ़ाक़ लाज़िम कर दिया। इसके बाद यह बात हर शख़्स के अल्लाह से ताल्लुक़ और उसकी ख़ैरात व हसनात की तलब और दीने हक़ के साथ उसके दिली लगाव पर छोड़ दी गई है कि जितना वह मज़बूत हो उतना ही ज़्यादा आदमी अपने दिली जज़्बे से अल्लाह की राह में ख़र्च करे और जितना वह कमज़ोर हो उतना ही वह कम ख़र्च करे।

यह बात शरीअत के उसूलों में से है कि बहुत कम नेकियों का मुतालिबा

क़ानून के मुताबिक़ आदमी से किया गया है और बहुत ज़्यादा नेकियाँ क़ानूनी मुतालिबे की हदों से बाहर रखी गई हैं, ताकि इनसान अपनी मर्ज़ी से उन्हें अपनाए। दुनिया में इनसान की अख़लाक़ी और रूहानी तरक़्क़ी तथा आख़िरत में अल्लाह के यहाँ उसकी मक़बूलियत तो पूरी तरह अपनी मर्ज़ी से की गई नेकी पर ही है। इस बात को अगर आप लोग ज़ेहन में रखें तो ऐसी तज्वीज़ें सोचने के बजाय अपनी तवज्जोह ख़ुद अपने अंदर और अपने रुफ़क़ा के अंदर भी इस जज़बे को उभारने और परवान चढ़ाने पर लगाएँगे जिससे इनसान ख़ुदा के लिए और उसके दीन के लिए अपने वक़्त, माल और कुव्वतों की क़ुरबानी किया करता है।

तज्वीज-28 : जमाअत में जो लोग हुनरमंद हैं वे अपने दूसरे रुफ़क़ा को हुनर सिखाएँ और जो किसी की मदद करने की ताक़त रखते हों वे ग़रीब अरकान को अपने यहाँ मुलाज़िम रखें।

अमीरे जमाअत : इस क़िस्म की चीज़ों को मुस्तक़िल तज्वीज़ बनाने से हमें ख़तरा यह है कि हम अपने अस्ल नस्बुलऐन और उसकी जिद्दोजुहद से हटकर छोटी-छोटी चीज़ों में लग जाएँगे और ये चीज़ें हमारा अस्ल प्रोग्राम बनती चली जाएँगी। इसलिए बजाय इसके कि ऐसी तज्वीज़ों को इज्तिमाआत में लाया जाए इस बात की कोशिश होनी चाहिए कि जमाअत के अरकान में ख़ुद यह स्प्रिट पैदा हो जाए कि जो शख़्स जिस-जिस तरह अपने भाइयों के काम आ सकता हो उसमें ज़र्रा बराबर कोताही न करे।

तज्वीज़-29 : लिट्रेचर की इशाअत के लिए अख़बारों व पत्रिकाओं में इश्तिहार दिए जाएँ और मुल्क में जो मुख़्तलिफ़ सियासी व मज़हबी जमाअतों के इज्तिमाआत होते हैं उनमें अपनी किताबों के स्टॉल लगाए जाएँ।

अमीरे जमाअत : इश्तिहारों के बारे में हमारा तजुर्बा यह है कि जिस अख़बार या पत्रिका ने अपने हमख़याल लोगों का एक ग्रुप पैदा कर लिया है उनके बीच उन्हीं चीज़ों की माँग पैदा हो सकती है, जो उसके ख़यालात से कुछ न कुछ मेल खाती हों। अगर हम अपनी किताबों का इश्तिहार ऐसे अख़बारों और पत्रिकाओं में दें जो पब्लिक के ज़ेहन से किसी और ही तरह की अपील कर रहे हों तो उनसे इतनी माँग आने की उम्मीद नहीं है जिससे इश्तिहार का ख़र्च भी निकल सके। इसलिए हमें सब्र के साथ अपनी ही कोशिश से अपने हल्क़-ए-इशाअत (प्रसार-क्षेत्र) को फैलाने पर बस करना चाहिए। हमारा लिट्रेचर अल्लाह के फ़ज़्ल से ख़ुद अपनी जगह पैदा कर रहा है और अपनी ख़ुद की कोशिश से

रोज़-बरोज़ ज़्यादा आदमियों को अपनी तरफ़ खींच रहा है। इसके साथ अगर हमारे अरकान और हमारे ख़यालों से दिलचस्पी व हमदर्दी रखनेवाले लोग भी कोशिश करते रहें तो इनशाअल्लाह हमें इश्तिहार की ज़रूरत कभी महसूस न होगी।

कान्फ्रेंसों में स्टॉल लगाने के लिए ज़्यादा मुनासिब यह है कि जिस इलाक़े में कोई कान्फ्रेंस हो रही हो उसी हलक़े या उसके क़रीब के हलक़े की कोई मक़ामी जमाअत वहाँ स्टॉल लगा लिया करे। मर्कज़ी मक्तबे के वक़ार से यह बात मेल नहीं खाती कि यहाँ से हमारे आदमी हर जलसे में किताबें लेकर पहुँच जाया करें।

तज्वीज़-30 : 'तर्जुमानुल क़ुरआन' के वे बहुत-से पहले के लेख जो अभी तक किताबी शक्ल में नहीं आए हैं उनको किताबी शक्ल में लाने की तरफ़ तवज्जोह दी जाए। इसके अलावा, अब तक जो एतिराज़ और सवाल इस तहरीक पर किए गए हैं और उनके जो जवाब 'तर्जुमानुल क़ुरआन' में दिए जाते रहे हैं उन्हें भी जमा करके किताबी शक्ल में लाया जाए।

अमीरे जमाअत : तज्वीज़ के पहले हिस्से के बारे में यह गुज़ारिश है कि अगर जंगी हालात की वजह से प्रकाशन में मुश्किलें न पैदा हो जातीं तो यह काम बहुत पहले हो चुका होता। हम इस इंतिज़ार में हैं कि काग़ज़ पर से पाबंदियाँ कुछ कम हो जाएँ तो जल्द से जल्द वे सभी चीज़ें छपवा दी जाएँ जो इस वक़्त तक रुकी हुई हैं।

दूसरे हिस्से के बारे में यह बताना चाहता हूँ कि बहुत दिनों से मुझे ख़ुद इसकी ज़रूरत का एहसास है। मगर कारकुनों की कमी की वजह से यह काम नहीं किया जा सका। अगर कोई साहब हिम्मत करके पिछले 4-5 सालों के रिसालों में से एतिराज़ात व जवाबात छाँट लें और उनहें यकजा करके मेरे पास भेज दें तो उसे तर्तीब देना मेरे लिए आसान हो जाएगा। और मैं कोशिश करूँगा कि अब तक जो एतिराज़ात मुझ तक ज़बानी पहुँचे हैं और उनके जो जवाबात मैंने दिए हैं उन्हें भी शामिल कर लूँ। उम्मीद है कि यह चीज़ हमारी तहरीक के लिए बहुत मुफ़ीद साबित होगी।

तज्वीज़-31 : 'तफ़हीमुल क़ुरआन' की अलग-अलग सूरतों को रिसालों की शक्ल में प्रकाशित कर दिया जाए।

अमीरे जमाअत : इस वक़्त तक पत्रिका 'तर्जुमानुल क़ुरआन' में तफ़हीमुल

क़ुरआन के जो हिस्से छपते रहे हैं वे सिर्फ़ अहले इल्म से मशविरे के लिए हैं। जब तक उसे दुबारा देखकर इतमीनान न कर लूँ कि वह किताबी शक्ल में छापने के क़ाबिल है उस वक़्त तक उसका कोई हिस्सा आम लोगों के लिए न छापा जाएगा। फिलहाल अगर कोई इससे फ़ायदा उठाना चाहे तो 'तर्जुमानुल क़ुरआन' में छप रहे हिस्से से काम चलाए।

तज्वीज़-32 : इस्लामी उलूम की जदीद तदवीन (नव संकलन) और इस्लामी देशों के हालात के मुताबिक़ इस्लामी लिट्रेचर की तैयारी।

अमीरे जमाअत : तज्वीज़ का पहला हिस्सा हमारी उस स्कीम में शामिल है जिसमें एक एकेडमी के क़ायम करने की बात ज़ेरे ग़ौर है। दूसरे हिस्से को किसी हद तक हमारा दारुल उरूबा इनशाअल्लाह अमल में लाएगा। लेकिन यह बहुत मुश्किल है कि हम बाहर के मुख़्तलिफ़ मुल्कों की सियासी, समाजी, अख़लाक़ी और ज़ेहनी हालात को सामने रखकर हर एक के लिए अलग-अलग लिट्रेचर तैयार करें। दुनिया में जितनी भी आलमगीर तहरीकें उठती हैं हर एक की शुरुआत किसी एक इलाक़े से होती हैं और शुरुआत में इसी इलाक़े के हालात को सामने रखकर उन उसूलों की तंक़ीद और तशरीह और अमली तौर पर पेश किया जाता है जिनपर उस तहरीक की बुनियाद होती है। फिर जब इस तहरीक का असर दूसरे देशों तक पहुँचता है और वहाँ के लोग उनसे मुतास्सिर होते हैं तो वे ख़ुद ही अपने-अपने इलाक़े के हालात के मुताबिक़ लिट्रेचर तैयार करने लगते हैं। ख़ुद क़ुरआन में भी यही तरीक़ा अपनाया गया है। इसलिए बजाय इसके कि हम विदेशों के लिए उनके हालात के लिहाज़ से अलग-अलग लिट्रेचर तैयार करें, यह ज़्यादा मुनासिब और क़ाबिले अमल है कि हमारे मरकज़ से उसी मुल्क के हालात को, जिसे हम ज़्यादा बेहतर जानते हैं, सामने रखते हुए लिट्रेचर तैयार हो और उसी को दूसरी भाषाओं में बदल दिया जाए।

तज्वीज़-33 : अरकान को बेकार की बहसों से बचने और बेमतलब की छोटी-छोटी चीज़ों में पड़ने से बचने की हिदायतें दी जाएँ।

अमीरे जमाअत : यह काम जमाअत के क़ायम होने के वक़्त से किया जा रहा है। ख़ुद दस्तूर (जमाअत का संविधान) में इस बारे में निर्देश मौजूद हैं और मैं हमेशा अपनी तक़रीरों और तहरीरों में इसपर ज़ोर देता रहता हूँ। लेकिन बाक़ायदा हुक्म देकर इस चीज़ को रोकने से फ़ायदे के बजाय नुक़सान का ज़्यादा अंदेशा है। जैसे-जैसे लोगों की ज़ेहनियत बदलती जाएगी और उनका पुराना सोचने का ढंग नए सोचने के ढंग के लिए जगह छोड़ता जाएगा, यह रोग आपसे

आप एक के बाद एक कम होता चला जाएगा।

तज्वीज़-34 : दस्तूर की दफ़ा-4 पर सख़्ती से अमल होना चाहिए और इसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी करनेवाले रुक्न को जमाअत से ख़ारिज कर देना चाहिए।

अमीरे जमाअत : इसपर जमाअत के क़ायम होने के वक़्त से अमल हो रहा है। बीच के दौर में अगर इस मामले में कुछ ढील रही भी है तो वह सिर्फ़ शोब-ए-तंज़ीम (संगठन विभाग) के न होने की वजह से रही है। क्योंकि हमारे पास अरकान की अख़लाक़ी और अमली हालत जाँचने का कोई ज़रीया न था। लेकिन अब तंज़ीमी काम बाक़ायदा शुरू हो जाने के बाद से हम दस्तूर को पूरी क़ुव्वत से लागू कर रहे हैं और जो चीज़ें दस्तूर में ज़रूरी हैं उनके मामले में किसी के साथ रिआयत नहीं करते। मक़ामी जमाअतों के अमीरों को भी इस मामले में हमारी पूरी मदद करनी चाहिए ताकि जमाअत के निज़ाम में कोई कमज़ोरी न रहने पाए।

तज्वीज़-35 : हर मक़ामी जमाअत अपने शहर के छात्रों और आम लोगों को हर महीने एक बार ज़रूर संबोधित करे।

अमीरे जमाअत : यह तज्वीज़ हालाँकि मुफ़ीद ज़रूर है, लेकिन फ़िलहाल हम इसे इसलिए मंज़ूर नहीं कर सकते कि बहुत-सी जगहों पर हमारी जमाअतों में ऐसे कारकुन मौजूद नहीं हैं जिनपर आम ख़िताब की ज़िम्मेदारी डाली जा सके। जहाँ ऐसे अरकान मौजूद हों वहाँ के मक़ामी जमाअत के अमीरों को इस तरफ़ ध्यान देना चाहिए। लेकिन अमल शुरू करने से पहले ज़रूरी है कि जिन लोगों से वे आम ख़िताब करवाना चाहते हैं उनकी क़ाबिलियत को ख़ुद भी पूरी तरह परख लें और हमें भी उनके बारे में ज़रूरी जानकारी पहुँचाकर यह इतमीनान दिला दें कि ख़िताबे आम की ज़िम्मेदारी उनपर डालने से जमाअत की ग़लत नुमाइंदगी तो न होगी।

इन तज्वीज़ों का सिलसिला सातवें इज्लास तक चलता रहा। उसके बाद अमीर जमाअत ने मौलाना अमीन अहसन साहब को जमाअत से ख़िताब करने के लिए कहा।

सातवाँ इज्लास

(8 जुमादल ऊला 1364 हिजरी मुताबिक़ 21 अप्रैल 1945 बाद नमाज़ ज़ुहर)

तक़रीर : मौलाना अमीन अहसन इस्लाही साहब

रिपोर्टों पर तबसिरा

हाज़िरीन !

आपके इस इज्तिमा में मेरी ज़िम्मेदारी एक नाख़ुशगवार ज़िम्मेदारी है। मुझे आपकी पेश की हुई रिपोर्टों पर तबसिरा करना है। उनकी कमियों की ओर इशारा करना है और आगे के लिए आपको आपकी ग़लतियों से होशियार करना है। मुझे इन रिपोर्टों के अच्छे और फ़ायदेमंद पहलुओं को नज़रअंदाज़ करना है और सिर्फ़ ऐबों और कमियों पर नज़र डालनी है। यह ऐब निकालना मुमकिन है कि आपमें से बहुतों को अच्छा न लगे। लेकिन मुझे बहरहाल यही फ़र्ज़ अदा करना है। हालाँकि मुझे इस बात की ख़ुशी है कि अमीरे जमाअत ने मुनासिब जगहों पर आपके कामों पर तबसिरा भी कर दिया है और आपको ज़रूरी हिदायतें भी दे दी हैं जिससे मेरा काम एक हद तक आसान हो गया है, फिर भी कुछ बातों की तरफ़ मुझे भी आपको तवज्जोह दिलाना है।

रिपोर्टों की तरतीब

मैं सबसे पहले आपको रिपोर्टों की तरतीब की तरफ़ तवज्जोह दिलाना चाहता हूँ। रिपोर्टों में ग़ैर-ज़रूरी बातें बिलकुल नहीं होनी चाहिएँ। इन्हें तैयार करते वक़्त इस बात को सामने रखना चाहिए कि इनका मक़सद सिर्फ़ यह मालूम करना होता है कि आप किस मक़ाम पर हैं, वहाँ के हालात क्या हैं, जमाअत के मक़ासिद के फैलने की संभावनाएँ वहाँ किस हद तक हैं? अब तक आपने क्या किया है और आगे क्या कर सकने की उम्मीद है? आपके रुफ़क़ा का क्या हाल है? हमदर्दों की हमदर्दी किस तरह की है और मनाही और रुकावटें आदि किस दर्जे की और किस क़िस्म की हैं? ये और इस तरह के ज़रूरी सवालात हैं जिनपर आपका सारा ध्यान लगना चाहिए। इसी तरह की बातें मरकज़ भी आपसे मालूम करना चाहता है और यही बातें हैं जिन्हें जमाअत के अरकान भी जानने

की ख़्वाहिश रखते हैं। इनके अलावा ग़ैर-ज़रूरी बातें जो आप अपनी रिपोर्टों में लिखते हैं उनसे वक़्त भी बर्बाद होता है और बहुत-से फ़ायदेमंद और अच्छी बातें नहीं आ पातीं। ख़ास तौर पर ख़ुद के हालात और ख़ास लोगों की तारीफ़ों की परछाई तक इन रिपोर्टों में नहीं होनी चाहिए। इसमें शक नहीं कि इस तरह की रिपोर्ट तैयार करना जिसमें सभी ज़रूरी बातें आ जाएँ और वह सारी ग़ैर-ज़रूरी बातों से ख़ाली हो, कोई आसान काम नहीं है। यह बड़ी महारत का काम है। लेकिन अगर आपमें सिर्फ़ काम की बातों की आदत बन जाए और अपनी तारीफ़ की ख़्वाहिश और दूसरों को कमतर समझने के जज़्बे और बढ़ा-चढ़ाकर और बनावटी ढंग से बात बयान करने से परहेज़ हो जाए तो आपका काम भी बहुत आसान हो जाएगा और इन रिपोर्टों से हमारा जो अस्ल मक़सद है, वह भी बेहतर तरीक़े पर हासिल हो सकेगा।

कोताहियों को मानने का फ़ितना

एक ख़ास चीज़ जो मैंने आपकी रिपोर्टों में इस बार महसूस की है वह यह है कि आपपर 'कोताहियों को मानना' बहुत ग़ालिब हो जाता है। एक आदमी अगर सच्चाई के साथ अपनी कोताहियों को मान रहा है तो यह एक पसंदीदा आदत है। लेकिन इसका एक पहलू ख़तरनाक भी है जिससे होशियार रहने की ज़रूरत है। इससे एक अंदेशा तो यह है कि कहीं यह चीज़ आपकी आदत न बन जाए और इसके नीचे फ़र्ज़ अदा करने का शऊर दबकर रह जाए। दूसरा अंदेशा यह है कि इससे कभी-कभी आदमी में मुंकसिराना किब्र (विनम्रपूर्ण दंभ) पैदा हो जाता है, जिसका पैदा होना एक सख़्त व बड़ा फ़ितना है और हमारी दिली आरज़ू है कि अल्लाह तआला इससे हर मुसलमान को बचाए।

एक आदमी अगर एक बात को हक़ समझ गया है तो उसका फ़र्ज़ है कि इस हक़ के लिए हर तरह की तकलीफ़ें उठाए और सारी मुसीबतें झेले। जो शख़्स हक़ को तबाह होते देखता है और उसके लिए उसके दिल में ग़ैरत नहीं पैदा होती तो वह दो हालतों से ख़ाली नहीं—या तो उसपर हक़ की असली क़द्र व क़ीमत वाज़ेह नहीं हुई है और यह इल्म और ज्ञान की कमी है या उसके अंदर बातिल का ख़ौफ़ बैठा हुआ है और यह दिल का फ़साद है। एक समझदार और अक़्ल रखनेवाले इनसान से सबसे पहले जिस बात की उम्मीद होनी चाहिए वह यही है कि वह कभी किसी हक़ को उत्पीड़ित और पददलित देखने पर राज़ी न हो। जो शख़्स इनसानियत के जौहर से ख़ाली है—अफ़सोस है अगर वह पैदा

हुआ और इससे बढ़कर अफ़सोस इस बात का है कि वह ज़िंदा है। अगर आदमी में इल्म की कमी है तो उसका फ़र्ज़ है कि अल्लाह की किताब के ज़रिए से अपने इल्म को बढ़ाए और अगर हिम्मत की कमी है तो चाहिए कि अल्लाह से दुआ करे कि अल्लाह उसे अमल की तौफ़ीक़ दे और कमहिम्मती और बुज़दिली की बीमारियों से छुटकारा दे।

जमाअत इस्लामी का क़याम (स्थापना) बेमानी होगा अगर इसके बाद भी हमारा इल्म सही न हो और हमारे दिलों में बुज़दिली का शैतान बैठा ही रहे और हम सिर्फ़ ग़लतियों के मानने की आड़ में अपनी कमज़ोरियों को छुपाते रहें। हम जो लिट्रेचर छाप रहे हैं उसका मक़सद यही है कि हक़ लोगों के सामने खुलकर आ जाए और इज्तिमाई ज़िन्दगी का निज़ाम इसी लिए अपनाया है कि एक की मज़बूती दूसरे की कमज़ोरी दूर करने में मददगार हो और आपसी मदद से वह सरगर्मी और जिद्दोजुहद वुजूद में आ सके जो इस वक़्त हक़ की ख़िदमत के लिए ज़रूरी है। अब यह आपका काम है कि आपमें इल्म हासिल करने का शौक़ पैदा हो और जमाअती ज़िन्दगी की बरकतें हासिल करने की कोशिश करें। लेकिन हमें सख़्त हैरत होती है कि लोग ख़ुद अपनी ज़िम्मेदारियों के बारे में भी यही ख़्वाहिश रखते हैं कि मरकज़ ही उन्हें पूरा करे। लिट्रेचर के ज़रिए लोगों में इल्म पैदा करे और फिर हाथ-पैर बनकर उनके ज़िम्मे के अमल को भी पूरा कर दे।

जो लोग इस तरह की ख़्वाहिश अपने दिल में रखते हैं उन्हें इस बात से आगाह होना चाहिए कि जो काम उनके करने के हैं, उन्हीं को करने होंगे—और वे काम सिर्फ़ तमन्नाएँ करने से नहीं, बल्कि करने से पूरे होंगे। हमें कोई ऐसा मंत्र नहीं मालूम है कि जिसके ज़रिए हम यहाँ से बैठे-बैठे फूँक मार दें और सारे काम बन जाएँ। हम हक़ को वाज़ेह कर सकते हैं और उसकी ख़िदमत के लिए अपना हिस्सा पूरा कर सकते हैं, लेकिन दूसरों के अंदर इसके लिए हिम्मत पैदा करना हमारे इख़्तियार से बाहर है।

कुछ लोगों में यह ख़्वाहिश भी पाई जाती है कि जमाअत के कामों की रफ़्तार तेज़ करने के लिए किसी तेज़ तर्रार जमाअत के साथ मिल जाया जाए, चाहे उसकी तेज़ी किसी भी ओर हो। जिन लोगों के दिमाग़ों में इस तरह की बातें आती हैं वे लोग भी जमाअत के मिज़ाज से बहुत दूर हैं। उन्हें चाहिए कि वे जमाअत के लिट्रेचर को अच्छी तरह पढ़ें ताकि उनके दिमाग़ की उलझनें दूर हों। हमें सिर्फ़ तेज़ी की ज़रूरत नहीं है बल्कि सही रुख़ में तेज़ी की ज़रूरत है।

किसी ग़लत रुख़ में तेज़ी से, हमारे नज़दीक यह बेहतर है कि आदमी सही रास्ते की ओर रुख़ करके खड़ा रहे। जो शख़्स किसी ग़लत राह पर तेज़ी के साथ भागा जा रहा है उसकी हालत पर रीझना बेवक़ूफ़ी है और उसे अपनाने के लायक़ समझना बर्बादी है। जिन लोगों के दिमाग़ों में इस तरह के ख़यालात गुज़रते हैं उनके लिए जमाअत इस्लामी में दाखिल होने से ज़्यादा बेहतर यह था कि अभी वे तेज़ तर्रार जमाअतों की तेज़ी का कुछ दिनों और तजुर्बा करते। इसके बाद अगर वे हमारे साथ आते तो शायद हमारे लिए ज़्यादा तकलीफ़देह न बनते।

मुख़ालिफ़तों का स्वागत

यह बहुत ही ख़ुशी की बात है कि हमारे अरकान में मुख़ालिफ़तों से जो घबराहट थी वह बहुत कम हो रही है। अब लोगों में रुकावटों का मुक़ाबला करके आगे बढ़ने की हिम्मत पैदा हो रही है। यह जमाअती ज़िन्दगी की बरकत है और इस बरकत का ज़ाहिर होना इस बात की गवाही है कि हमारी जमाअती ज़िन्दगी की तरक़्क़ी सही रुख़ पर हो रही है। लेकिन यह मालूम होना चाहिए कि हम जिस राह पर चलने के लिए उठे हैं उस राह में सिर्फ़ यह काफ़ी नहीं है कि मुख़ालिफ़तों से घबराहट कम हो जाए। यह तो इस राह की पहली माँग है, इसके बिना तो आप इस रास्ते में एक क़दम भी नहीं उठा सकते। इस राह की अस्ल ज़रूरत इससे बहुत ज़्यादा है—और वह यह है कि हममें मुख़ालिफ़तों का ख़ैरमक़दम (स्वागत) करने का जज़्बा पैदा हो जाए। हक़ का रास्ता हो या बातिल का, अल्लाह तआला का क़ानून यह है कि जो शख़्स जिस रास्ते को अपनाता है उस राह में उसकी आज़माइश होती है और हक़ की राह की तो ख़ास पहचान ही यही है कि वह शुरू से आख़िर तक आज़माइशों से भरी होती है। जिस तरह गणित का होशियार छात्र किसी मुश्किल सवाल से ख़ुश होता है कि उसे अपने आपको आज़माने का एक और मौक़ा हाथ आया है, उसी तरह एक सच्चा इरादा रखनेवाले मुसलमान को किसी नई आज़माइश से मुक़ाबला करके ख़ुशी होती है कि उसे हक़ के साथ अपनी वफ़ादारी का सुबूत देने का एक और मौक़ा मिला है। टिमटिमाते हुए दीये बेशक हवा के झोंकों से गुल हो जाते हैं, लेकिन भड़कते हुए तंदूर को हवाओं के झोंके और ज़्यादा भड़का देते हैं। आप अपने अंदर यह सलाहियत पैदा कीजिए कि जिस तरह एक भड़कता हुआ तंदूर गीली लकड़ियों से बचने के बजाय उन्हें अपनी ख़ुराक बना लेता है उसी तरह आप मुख़ालिफ़तों से दबने के बजाय उनसे ख़ुराक और क़ुव्वत हासिल करें। जब तक हममें यह

क़ाबिलियत पैदा न हो जाए उम्मीद नहीं कि हम ख़ुदा के दीन की कोई अच्छी ख़िदमत कर सके।

आपने जिन मुख़ालिफ़तों का ज़िक्र किया है वे कई तरह की हैं, लेकिन उनमें से डरने की चीज़ एक भी नहीं। दुनिया में हक़ की ख़िदमत के लिए जो जिद्दोजुहद भी कभी हुई है उसके साथ ये मुख़ालिफ़तें भी आपसे आप पैदा हुई हैं। क़ुरआन ने हमें यह सिखाया है कि मुख़ालिफ़त का पैदा होना बिलकुल अल्लाह की हिकमत के मुताबिक़ है। यही सच्चे मोमिन और दिखावटी मोमिन के बीच पहचान की कसौटी है और इसी से पर्दों के अंदर इनसान के इख़्तियार की आज़माइश होती है। अतः इस मुख़ालिफ़तों से मायूस होने की ज़रूरत नहीं। अलबत्ता अल्लाह से यह दुआ करनी चाहिए कि वह हर मौक़े पर हमें साबित क़दम रखे और हमारे इरादे और ईमान की हिफ़ाज़त करे।

एक सवाल का जवाब

जमाअत के अरकान में एक आम सवाल यह भी पाया जाता है कि जब जमाअत इस्लामी की दावत पूरी तरह क़ुरआन और रसूल की सुन्नत के मुताबिक़ है बल्कि पूरी तरह क़ुरआन और सुन्नत की पैरवी ही की दावत है और मुख़ालिफ़त करनेवाले भी तमाम कोशिशों के बावजूद अब तक इसकी कोई बात क़ुरआन व सुन्नत के ख़िलाफ़ साबित नहीं कर सके हैं तो आख़िर इसकी क्या वजह है कि मुसलमान इसे क़बूल करने में इतनी देर लगा रहे हैं। यह सवाल हममें से बहुत-से लोगों को हैरानी में डाले हुए है और कभी-कभी दूसरों की इस बेपरवाई की वजह से हममें से कुछ की नज़र में वह हक़ बेमानी हो जाता है जो ख़ुद उनपर ज़ाहिर हो चुका है। इसलिए ज़रूरी है कि इस सवाल पर ग़ौर किया जाए। हमने जहाँ तक ग़ौर किया है इस ख़ालिस दीनी दावत से मुसलमानों की बेपरवाई की वजह बहुत गहरी है। मुसलमान अपनी इस हालत तक एक-दो दिन में नहीं पहुँचे हैं। उन्हें धीरे-धीरे इस हालत तक लाया गया है और हर मंज़िल में उन्हें क़ुरआन व सुन्नत से यह इत्मीनान दिलाने की कोशिश की गई है कि यही हालत आज इस्लाम व ईमान का तक़ाज़ा है। उनके हक़ से फिरने पर एक लंबा ज़माना गुज़र चुका है और इस ग़लत राह के हर मोड़ पर वे लम्बी मुद्दत तक यह समझकर ठहरे रहे हैं कि यह ठीक दीन व शरीअत की सिराते-मुस्तक़ीम (सीधी-सच्ची राह) है, और उनकी इस ग़लतफ़हमी को पक्का करने में दीनदार समझे जानेवालों ने हिस्सा लिया है और इस भटकाव के न सिर्फ़ जाइज़ होने

बल्कि उपेक्षित (मतलूब)होने पर मोटी-मोटी फ़िक़ही किताबें लिखी गई हैं। यहाँ तक कि उन्हें यक़ीन है कि उनका जो क़दम भी उठा है वह शरीअत के दायरे के अंदर उठा है और आज भी जहाँ वे हैं शरीअत ही का एक मक़ाम है, उससे अलग नहीं है।

ज़ाहिर है कि जिस जमाअत को इस तरह धीरे-धीरे गिराया गया हो, जिसका गिरना इस तरह पोशीदा हो, जिसके पतन का इतिहास इतना लंबा हो, जिसे यह यक़ीन दिलाया गया हो कि उसका यह गिरना; गिरना नहीं बल्कि उछलना है, जो इस ग़लतफ़हमी में हो कि वह अपनी मौजूदा हालत में शरीअत से अलग नहीं है बल्कि बिलकुल शरीअत के मुताबिक़ है—वह आपकी इस दावत को किस तरह आसानी के साथ क़बूल कर सकती है जो उनसे किसी थोड़ी-बहुत बदलाव और सुधार की माँग नहीं करती बल्कि उनसे सच्ची तौबा और पूरी सुधार की माँग करती है। जब आप उनसे यह मुतालिबा करते हैं—'ऐ लोगो जो ईमान के दावेदार हो! हक़ीक़ी ईमान लाओ', और उनके आमाल से लेकर उनके अक़ीदों तक में कमी बताते हैं तो क़ुदरती तौर पर उन्हें इस ईमान से चोट लगती है और उनकी दीनदारी के पुराने अहंकार को इससे चोट पहुँचती है। वे यह बात आसानी से मानने के लिए तैयार नहीं हो सकते कि वे आज तक एक बिलकुल ग़लत राह पर भाग रहे थे।

इनसान की यह फ़ितरत है कि वह अपने आपको ज़्यादा से ज़्यादा एलाउंस (रिआयत) का हक़दार समझता है और मुसलमानों को तो यह ग़लतफ़हमी भी है कि इस्लाम एक आसान दीन है जिसको हर हालत के मुताबिक़ ढाला जा सकता है। इस वजह से वह तंग राह जो आप उनके सामने पेश कर रहे हैं उसपर आने से वे घबराते हैं और समझते हैं कि जब वह हालत भी दीनदारी से अलग नहीं है जो उन्होंने अपना रखी है तो बिना वजह ज़िन्दगी को पाबंदियों में घेरने से क्या फ़ायदा? अतः जब तक आप उनपर यह हक़ीक़त पूरी तरह न वाज़ेह कर दें कि उनकी मौजूदा ज़िन्दगी इस्लाम से बिलकुल अलग हो गई है और इस हक़ीक़त को तस्लीम करने के लिए उनके दिलों को अपनी दलीलों से खोल भी न दें, उस वक़्त तक उम्मीद नहीं कि हमारी दावत क़बूल करने पर आमादा हों। लेकिन यह काम आसान नहीं है, इसे हर शख़्स नहीं कर सकता। हमारी दावत के इसी पहलू से लोग घबराते हैं और इससे सख़्त ग़लतफ़हमियाँ पैदा होती हैं और मुख़ालिफ़त करनेवालों को यहीं से लोगों को हमारे ख़िलाफ़ भड़काने का सामान हाथ लग जाता है। इस वजह से बहुत ज़रूरी है कि कम से कम हमारी जमाअत के

ज़िम्मेदार हज़रात दावत के इस पहलू को अच्छी तरह समझ लें और जो लोग इसे अच्छी तरह न समझे हों, कम से कम इस पहलू पर लोगों से बातचीत करने में एहतियात बरतें ताकि बिना वजह के हमारे काम में रुकावटें न पैदा हों।

उलमा की बेपरवाई

हमारी दावत से आम मुसलमानों की बेपरवाई की वजह उनपर बयान की जा चुकी है। रहे उलमा तो उनके बारे में हर शख़्स जानता है कि यही लोग हैं जिन्होंने मुसलमानों की उनकी मौजूदा हालत तक रहनुमाई की है। यह बहार उन्हीं की लाई हुई है। दीनदारी, इस्लामी तक़्वा, ईमान, तौहीद और रिसालत का मौजूदा मतलब जो लोगों के ज़ेहनों में गहराई तक बैठा हुआ है, इन्हीं का पैदा किया हुआ है। ये लोग नेकनीयती के साथ यह समझते हैं कि यह उन्हीं का काम था कि तमाम आफ़तों और मुसीबतों के अंदर से वे इस्लाम को बचा लाए और आज भी उसे बचाए हुए हैं। ऐसे लोगों से जो इतनी पेच-दर-पेच ख़ुशगुमानियों में मुब्तिला हों, आप यह कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि आज वे खुले दिल से इस बात का इक़रार करेंगे कि आज तक उन्होंने जो रहनुमाई की है वह ग़लत है, और सही राह वह है जिसकी दावत फ़लाँ जमाअत दे रही है। बेशक हक़परस्ती का तक़ाज़ा यही है कि इस साफ़ हक़ीक़त के इक़रार से उनको शर्म न आए। क़ुरआन ने हक़ के माननेवालों की सबसे बड़ी तारीफ़ यही बताई है कि वे हक़ के क़बूल करने और एलान करने में बुरा-भला कहनेवालों की बातों की परवाह नहीं करते। लेकिन इनसानी फ़ितरत की कमज़ोरियाँ जिस तरह आम लोगों के भीतर पाई जाती हैं उसी तरह ख़ास लोगों के अंदर भी छुपी हुई हैं।

जिस तरह हमारे अवाम का दीनदारी का ग़ुरूर उन्हें इस बात की इजाज़त नहीं देता कि वे ईमान के नवीनीकरण की लज्जा को गवारा करें उसी तरह हमारे ख़ास लोगों का सरदारी का ग़ुरूर उन्हें इस बात की इजाज़त नहीं देता कि वे अपने मुँह से ख़ुद अपने बताए हुए रास्ते को ग़लत मान लें। वे एक ग़लत रुख़ में इतनी दूर निकल गए हैं कि उनके लिए वहाँ से पलटना आसान नहीं रहा। आपको यह हक़ीक़त भी सामने रखनी चाहिए कि दीनदारी के एहसास का फ़ितना दुनियादारी के फ़ितने से ज़्यादा सख़्त होता है। जो लोग किसी ख़्वाहिशों की बुनियाद पर दुनियादारी की राह में फँसते हैं, जैसे ही उनके दिल में हक़ की रौशनी कौंधती है उनकी आँखें खुल जाती हैं और सही राह उनपर नुमायाँ हो जाती है। उनकी रुकावटें ज़्यादातर सुस्ती और पस्तहिम्मती की क़िस्म की होती

हैं जो दिल की मामूली तब्दीली से भी दूर हो जाती हैं। लेकिन जो लोग इन ग़लतियों को दीन व तक़वा बनाकर इनकी पूजा करते और कराते रहते हैं, उनके लिए अपने महबूब बुतों को तोड़-फोड़कर एक नया दीन अपनाना कोई आसान काम नहीं है। यही तो वह 'जिहादे अकबर' (बड़ा जिहाद) है जिसके लायक़ बहुत कम लोग निकलते हैं। और इस बात पर ताज्जुब नहीं करना चाहिए कि इस कमज़ोरी के शिकार हमारे उलमा भी हैं। अल्लाह ने हर एक के लिए आज़माइशें रखी हैं और जिनकी निगाहें जितनी तेज़ हैं उनके लिए फ़ितने का जाल भी उतना बारीक और छुपा हुआ है।

इन लोगों में आज तक कोई शख़्स यह नहीं बता सका कि हमारी दावत में क्या ग़लती है, बल्कि इनमें से हर शख़्स इस बात को मानता है कि हम जो कुछ कर रहे हैं, इस्लाम असल में यही चाहता है। लेकिन चूँकि उसका दिल उसे मानने पर राज़ी नहीं है, इस वजह से उसके ख़िलाफ़ कुछ बातें बेझिझक बनाते हैं। और पढ़े-लिखे लोग अगर किसी सूरज से ज़्यादा रौशन के ख़िलाफ़ भी कुछ कहने पर आमादा हो जाएँ तो कुछ न कुछ उसमें कमी निकाल ही लेंगे। अतः ये हज़रात भी कुछ न कुछ उसमें कमी निकाल ही लेते हैं। अगर असली दावत के ख़िलाफ़ इन्हें कोई बात नहीं मिलती तो दावत देनेवाले के अन्दर ही कुछ ऐब ढूँढ़ निकालते हैं और कहते हैं कि अगरचे दावत ऐन क़ुरआन व सुन्नत की दावत है लेकिन दावत देनेवालों पर चूँकि भरोसा नहीं है, इसलिए उनके पीछे चलने के बजाय फ़लाँ और फ़लाँ के पीछे चलो। जिनकी दावत में अगरचे ग़लती हो, लेकिन वे ख़ुद तक़वावाले और भरोसे के क़ाबिल हैं। यह कितनी दर्दनाक और दिल तोड़नेवाली बात है कि इन लोगों ने ख़ास लोगों को हक़ की जगह दे रखी है। जहाँ जाते हैं हक़ इनके साथ होता है, अगरचे कि वे ख़ुदा के घर काबा की जगह उस राह को अपना लें, जहाँ आग की पूजा की जाती है।

असबियत (तरफ़दारी) और जाहिलियत की इससे ज़्यादा घिनौनी मिसाल और क्या हो सकती है! हक़परस्ती का तक़ाज़ा तो यह था कि अगर हक़ यही है जो हम कह रहे हैं और उसे क़बूल करने में सिर्फ़ हमारी कमज़ोरियाँ उनके लिए रुकावट बनी हुई हैं तो ये ख़ुद इस दावत को पहुँचानेवाले बनते और आगे चलते। हम इनशाअल्लाह उनके पीछे चलने में कोई झिझक महसूस नहीं करते। लेकिन यह अजीब व ग़रीब बात हमारी समझ में नहीं आती कि ये जान-बूझकर एक ग़लत राह पर चल सकते हैं बशर्ते कि उस राह की ओर बुलाने और चलानेवाला उनके विचार के मुताबिक़ दीनदार हो, और एक सही राह पर जिसके

सही होने की बात वह ख़ुद मानते हैं वे नहीं चल सकते, क्योंकि उस बात की ओर बुलानेवाले पर उनकी सोच के मुताबिक़ दीनदारी का लेबल नहीं चिपका हुआ है।

ये लोग कैथोलिक चर्च की तरह अपने हलक़े से बाहर दीनदारी का वुजूद शायद नहीं मानते, वरना ज़ाहिर है कि अपने इस बात की हिमायत में वे कोई दलील पेश नहीं कर सकते। और हमें यक़ीन है कि वे अपनी इस पोज़ीशन पर ख़ुद भी मुतमइन नहीं हैं और जल्द ही उनपर उनकी ग़लती ज़ाहिर हो जाएगी। अगर आज नहीं तो कल वे देख लेंगे कि हक़ीक़त किसी ख़ास आदमी और गिरोह की तरफ़दारी से कितनी बेनियाज़ है। और इनसान हक़ की जगह लोगों को अपना क़िब्ला व काबा बनाकर सिर्फ़ अपना नुक़सान करता है न कि हक़ का।

राजनीतिक पार्टियों की ओर से मुसीबतें

आम जनता और उलमा की बेपरवाई के साथ-साथ कुछ राजनीतिक पार्टियों की भी आपने शिकायत की है। इन पार्टियों की मुख़ालिफ़त आपके साथ बिलकुल क़ुदरती है। हमारा मक़सद और उनका मक़सद एक-दूसरे के बिलकुल उलटा है। हमारी कामयाबी और तरक़्क़ी में हक़ीक़त में उनकी मौत छिपी है। इस वजह से अगर वे हमें अच्छी तरह से समझती हैं और साथ ही अपने आपको भी समझती हैं तो उन्हें हमारा दोस्त नहीं दुश्मन ही होना चाहिए—और हमें उनकी तरफ़ से सब कुछ बर्दाश्त करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इस वक़्त की राजनीतिक पार्टियों में से कोई पार्टी ऐसी नहीं है जिसपर हमारे लिट्रेचर और हमारी दावत की मार सीधे तौर पर न पड़ी हो। आपने इनमें से हर एक के काम को ग़लत कहा है और हर एक के वुजूद को बातिल क़रार दिया है। फिर आप क्यों उम्मीद करते हैं कि वे आपको प्यार करेंगी। राजनीतिक पार्टियाँ ख़ुद को ज़िंदा रखने की लड़ाई लड़ती रहती हैं, अपने मुख़ालिफ़ों को तोड़ देना या अपना लेना उनकी फ़ितरत है। उनसे सबको ख़ुश रखने की पॉलिसी की उम्मीद रखना बिलकुल ग़लत है। लेकिन इस बात की कोई वजह नहीं है कि आप उनकी इस मुख़ालिफ़त के रवैये से घबरा जाएँ। हर मुख़ालिफ़ डरने की चीज़ नहीं होती। सिर्फ़ वह मुख़ालिफ़त वज़नी और क़ाबिले लिहाज़ होती है जो किसी उसूल के साथ किसी उसूलों वाली पार्टी की तरफ़ से ज़ाहिर हो। मुझे मुसलमानों में किसी ऐसी पार्टी का पता नहीं जिसका कोई उसूल हो। उनकी हैसियत सैलाब में

बहनेवाले तिनकों से ज़्यादा नहीं है। बातिल भी अगर उसकी पीठ पर बहादुरी व हिम्मत हो और उसकी कथनी व करनी में फ़र्क़ न हो तो एक ताक़त बन जाता है। लेकिन ये हक़ का नक़ाब ओढ़े बातिल तो एक लम्हा भी मैदान में नहीं टिक सकते जो हमारी राजनीतिक पार्टी लेकर निकली हैं। उनकी कमज़ोरियाँ ख़ुद उनपर वाज़ेह हैं. . . और अगर अभी हक़ीक़त वाज़ेह होने में कुछ कसर रह गई है तो मैं भविष्यवाणी करता हूँ कि ज़माना जल्द यह कसर भी पूरी कर देगा। और वह दिन दूर नहीं है, जब ये सारी पार्टियाँ अपनी हस्ती बाक़ी रखने के लिए इसपर मजबूर होंगी कि हमारी सिखाई हुई बोलियों में से किसी न किसी बोली को अपना लें और अपने खोटे सिक्कों को हमारे खरे सिक्कों के साथ मिलाकर चलाने की कोशिश करें। आप लोगों में से जो लोग वक़्त के हालात पर नज़र रखते हैं वे मेरी इस भविष्यवाणी की तस्दीक़ करेंगे। क्योंकि हमारे बहुत-से लफ़्ज़ों को अब मुख़्तलिफ़ पार्टियों ने इस्तेमाल करना शुरू कर दिया है और इन लफ़्ज़ों की मज़हबी कशिश (आकर्षण) से वे अपनी गिरती हुई पोज़ीशन सँभालना चाहती हैं।

हमारे कुछ अरकान इस सूरतेहाल को चिंता की दृष्टि से देखते हैं। उनका ख़याल है कि अगर हमारे पारिभाषिक शब्दों को इन पार्टियों ने अपना लिया तो बहुत जल्द अवाम के ज़ेहनों में इन पारिभाषिक शब्दों के बारे में ऐसा ग़लत ख़याल घर कर जाएगा कि उसके सुधार के लिए हमें अलग से जिद्दोजुहद करनी पड़ेगी, साथ ही लोगों में यह ख़याल फैल जाएगा कि हम भी वही कुछ चाहते हैं जो ये पार्टियाँ चाहते हैं। लेकिन मुझे इस बात से कोई अंदेशा नहीं है। मैं इसमें जमाअत के लिए कोई ख़तरा नहीं देखता। अलबत्ता ये पार्टियाँ, अगर इन लफ़्ज़ों के इस्तेमाल में नेकनीयत नहीं हैं बल्कि सिर्फ़ लोगों को धोखा देने के लिए इस्तेमाल कर रही हैं, तो मुझे ख़ुद उनकी मौत इसमें नज़र आती है। इस वक़्त जबकि हमारा काम जारी है, हमारा लिट्रेचर पूरी तेज़ी के साथ फैल रहा है और हम ख़ास लोगों से गुज़रकर आम लोगों के ज़ेहनों के क़रीब भी आने की कोशिश कर रहे हैं, हमें इसका डर नहीं है कि लोग हमारे लफ़्ज़ों की आड़ में पनाह ले लेंगे। ज़्यादा ज़माना नहीं गुज़रेगा कि हमारी बातें ऊँची जगहों से गूँजेंगी और गलियों में पुकारी जाएँगी और आम से आम आदमी भी उनका वही मतलब समझेगा जो हम समझाएँगे। उस वक़्त किसी के लिए भी यह मुमकिन न होगा कि इन पर्दों में छिप सके। या तो लोगों को इस हक़ीक़त का साफ़-साफ़ इक़रार करना पड़ेगा जो हम पेश कर रहे हैं या मैदान से हटना पड़ेगा। अभी हम

या तो अपनी पूरी बात कह नहीं सके हैं या लोग समझ नहीं सके हैं। इस वजह से धोखा खाने और धोखा देने दोनों की उम्मीद है। लेकिन ऐसा कुछ न हो, इसके लिए हम पूरी कोशिश कर रहे हैं और हमें यक़ीन है कि इनशाअल्लाह हम ही कामयाब रहेंगे। अल्लाह की सुन्नत यह है कि जब तक हक़ मैदान में नहीं आता बातिल को जीने की मुहलत मिलती है। लेकिन जब वह मैदान में उतर आता है तो अल्लाह तआला ग़लबा उसी को देता है।

मैं मुसलमानों की मौजूदा सियासी और मज़हबी जमाअतों में से किसी में यह योग्यता नहीं देखता कि वह हमारी बनाई हुई गोलियों को हज़म कर सके। इनमें से किसी जमाअत की न कोई सियासी सोच है, न कोई काम करने का उसूल और न उनमें से किसी के पास वह करेक्टर है जो पार्टियों को जिताता है। अहले बातिल में वह क़ाबिलियतें मौजूद हैं जिनका मुज़ाहिरा नाज़ियों, कम्युनिस्टों और जम्हूरियत के माननेवालों ने किया है। लेकिन अफ़सोस है कि हक़ के इन अलमबरदारों में जो इस्लाम जैसे अज़ीमुश्शान हक़ का नाम लेते हैं, आज कोई ताक़त और क़ाबिलियत मौजूद नहीं है। उनकी हस्ती पूरी तरह दूसरों से उधार लिए हुए बल्कि चुराए हुए लफ़्ज़ों पर क़ायम है।

ख़लीफ़ाओं के बारे में एक आम ग़लतफ़हमी

हज़रात! आपमें से कुछ ने यह सवाल भी उठाया है कि जमाअत इस्लामी के सामने जो नस्बुलऐन है वह बेहतरीन हाथों में भी तीस साल से ज़्यादा क़ायम नहीं रह सका, तो आज वे लोग कहाँ से आएँगे जो इस निज़ाम को क़ायम कर सकेंगे और उनके हाथों में ज़्यादा अर्से तक क़ायम रह सकेगा। अगरचे आपमें से कुछ ही लोगों ने यह सवाल उठाया है लेकिन यह एक आम शुब्हः (आशंका) है जो बहुत-से दिलों में मौजूद है और इसकी वजह से बहुतों का यह ख़याल है कि अव्वल तो सही इस्लामी निज़ाम का क़ायम होना नामुमकिन है और अगर मुमकिन है भी तो इससे कुछ हासिल नहीं होनेवाला। क्योंकि जब बेहतरीन इनसानों के हाथों में यह सिर्फ़ एक छोटी मुद्दत तक क़ायम रह सका तो आज उसके क़ायम और बरक़रार रहने के बारे में क्या उम्मीदें की जा सकती हैं?

हमें बेहद अफ़सोस है कि ये बातें आज वे लोग भी कहते हैं जो उलमा-ए-दीन में शामिल हैं। उन्हें शायद इस बात की ख़बर नहीं है कि ऐसा कहना हक़ीक़त में इस्लाम के ख़िलाफ़ वोट देना है। अगर इस्लामी निज़ाम में यह फ़ितरी कमज़ोरी मौजूद है कि वह बेहतर से बेहतर हाथों में भी कुछ मुद्दत से

ज़्यादा क़ायम नहीं रह सकता, तो न सिर्फ़ इस्लामी निज़ाम के तसव्वुर से इस्तीफ़ा दे देना चाहिए बल्कि ख़ुद इस्लाम के वुजूद से भी मायूस हो जाना चाहिए। क्योंकि इस्लाम की ज़िन्दगी को उसके निज़ाम से बाहर सोचा भी नहीं जा सकता। अतः एक सच्चे और पक्के मुसलमान के दिल में तो कभी ऐसा घटिया ख़याल आना ही नहीं चाहिए। लेकिन आपने बताया है कि यह सवाल आम तौर पर लोगों के दिलों में मौजूद है और इसकी वजह से इस्लामी निज़ाम के क़ायम होने की तरफ़ से लोगों में एक आम नाउम्मीदी और बददिली पाई जाती है। इस वजह से ज़रूरी है कि इस ग़लतफ़हमी को दूर कर दिया जाए।

हज़रात! आपको मालूम है कि अल्लाह तआला ने हमसे यह माँग नहीं की है कि हम हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) और हज़रत उमर (रज़ि०) की हुकूमतों की तरह एक हुकूमत क़ायम कर दें। न बंदों को इस बात की ताक़त हासिल है और न ख़ुदा ने इसकी तकलीफ़ दी है, अलबत्ता यह मुतालिबा हमसे किया गया है कि हम इक़ामते दीन (दीन को क़ायम करना) के लिए जिद्दोजुहद करें और इस जिद्दोजुहद में अपनी ज़िन्दगी की पूरी पूँजी लगा दें। जान भी और माल भी और अपनी सभी प्यारी चीज़ें भी। और दीन से मुराद दीन के मुख़्तलिफ़ हिस्सों में से कोई ख़ास हिस्सा नहीं है, चाहे वह कितना ही अहम क्यों न हो। बल्कि दीन से मुराद मुकम्मल दीन है—इसके बड़े हिस्से भी, छोटे हिस्से भी, अक़ीदे भी और आमाल भी। यह जिद्दोजुहद पूरी मुहब्बत और पूरे जोश के साथ चाहिए। और अल्लाह के नज़दीक यही चीज़ हमारे ईमान और निफ़ाक़ (कपट) की कसौटी है। कोई सीना जो इस जोश से ख़ाली हो ईमान का ठिकाना नहीं बन सकता और कोई दिल जो इस दर्द से अनजान हो ख़ुदा का घर नहीं हो सकता। कितनी ही तस्बीहें फेरी जाएँ, कितने ही वज़ीफ़े पढ़े जाएँ और कितनी ही चोटें लगाई जाएँ, इस मुहब्बत का बदल नहीं हो सकते। सारी दीनदारी की रूह यही है और ख़ुदा के यहाँ हमारे दिलों के अंदर सबसे पहले यही चीज़ ढूँढ़ी जाएगी और यह भी एक ज़रूरी शर्त है कि यह जिद्दोजुहद मिल-जुलकर हो, अकेले न हो। हर हक़ के माननेवाले का फ़र्ज़ है कि वह पहले अपने अंदर इसकी गर्मी पैदा करे और फिर यह कोशिश करे कि इस आग से सारे दिल भड़क उठें।

इस सवाल पर कोई बहस नहीं कि यह जिद्दोजुहद किस नतीजे तक पहुँचेगी। हो सकता है कि हम आरों से चीर डाले जाएँ, गलियों में घसीटे जाएँ, अंगारों पर लिटाए जाएँ और हमारे जिस्मों को चील और कौवे नोचें, और इन

सारी बातों के बाद भी हमें यह ख़ुशनसीबी न हासिल हो सके कि हम मौजूदा बातिल निज़ाम को एक निज़ामे हक़ से बदल दें। लेकिन न तो यह नाकामी नाकामी है और न इसका अंदेशा है। बल्कि इसका यक़ीन भी हमको उस मुतालिबा से बेताल्लुक़ कर सकता है जो ख़ुदा ने इक़ामते दीन के लिए हमें सौंपा है। वह तो एक क़तई और अटल फ़र्ज़ है जिसे हर क़ीमत पर और हर हाल में हमें अदा करना है। अगर हिन्दुस्तान की तमाम ख़ानक़ाहें भी आपको यह यक़ीन दिलाने की कोशिश करें कि फ़लाँ और फ़लाँ वज़ीफ़े इस ज़िम्मेदारी से छुटकारा दिला सकते हैं तो मैं आपको यक़ीन दिलाना चाहता हूँ कि यह शैतान का धोखा है। जब तक आपकी गर्दनों पर सिर मौजूद हैं और अल्लाह के दीन की इमारत की एक ईंट भी अपनी जगह से हटी हुई है और ख़ुदा की ज़मीन का एक टुकड़ा भी ग़ैर-अल्लाह की इताअत के नीचे दबा हुआ है, उस वक़्त तक आपके लिए चैन की नींद हराम है।

इस जिद्दोजुहद के अंजाम के बारे में हम कुछ नहीं कह सकते कि क्या होगा। अंजाम का हाल सिर्फ़ ख़ुदा को मालूम है। अगर इस जिद्दोजुहद का नतीजा यह हो कि हम एक ऐसा निज़ाम जो सभी बुराइयों से पाक हो, क़ायम करने में कामयाब हो जाएँ तो यह अल्लाह तआला का इनाम होगा। कुछ लोग ताना देते हैं कि हमारी सारी जिद्दोजुहद हुकूमत के लिए है और ख़ुदा की ख़ुशनूदी की चाह, जो असल दीन है, हमारे सामने नहीं है। यह ख़याल बिलकुल ग़लत है, हमारी सारी जिद्दोजुहद अल्लाह के दीन को क़ायम करने और बुराइयों से पाक एक ख़ुदाई निज़ाम को क़ायम करने के लिए है। और यह जिद्दोजुहद कोई जुर्म नहीं है जिसपर हमें शरमाने की ज़रूरत हो। और हम जब कभी हुकूमते इलाहिया का नाम लेते हैं तो इससे हमारी मुराद यही निज़ाम होता है और मैं नहीं समझता कि इसकी चाह रखने और महबूब होने में किस पहलू से बहस की जा सकती है और आख़िर यह ख़ुदा को राज़ी करने की चाह से अलग चीज़ क्यों है?

ख़ुदा की ख़ुशी इससे बढ़कर किस बात में हो सकती है कि उसकी ज़मीन पर उसका हुक्म चले और उन लोगों से बढ़कर अल्लाह को राज़ी करने की चाह कौन रख सकता है जो इस बात के लिए सिर-धड़ की बाज़ी लगाएँ कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, ख़ुदा की ज़मीन पर ख़ुदा के अलावा किसी की हुकूमत का कोई धब्बा नहीं रहने देंगे। अगर यह धब्बा दुनियादारी है तो क्या दीनदारी यह है कि रातों में जागकर 'अल्लाहु' की ज़र्बें लगाई जाएँ और दिन में ख़ुदा की ज़मीन पर

शैतान का तख़्त बिछाने की कोशिश की जाए। जो लोग इस तरह की बातें कहते हैं उनके ज़ेहनों में दीन का बिलकुल ग़लत तसव्वुर है और बेहतर है कि उन्हें अभी इस बात के लिए छूट दी जाए कि वे दीन की अस्ल हक़ीक़त समझ सकें।

अगरचे सही इस्लामी निज़ाम सिर्फ़ तीस साल ही क़ायम रहा तो भी यह ऐसी चीज़ है जिसके लिए अगर हम अपनी ज़िन्दगियाँ मिटा दें तो यह महँगा सौदा नहीं है। बल्कि उस ख़ैर व बरकतवाले निज़ाम की एक रात भी, जिसमें ख़ुदा का बंदा सिर्फ़ ख़ुदा की ग़ुलामी में रहता है, उन हज़ारों सालों और महीनों से अफ़ज़ल है जिनमें ख़ुदा के बंदों को ख़ुदा के सिवा दूसरों की ग़ुलामी करनी पड़ती है। आप तीस साल कहते हैं! मैं तो इसके तीस मिनट भी बहुत समझता हूँ और अपनी और अपनी जैसी लाखों ज़िन्दगियों को उसकी क़ीमत नहीं समझता। ज़रा ग़ौर तो कीजिए, दुनिया की सभी सियासी तंज़ीमात (शासन-प्रणाली) में सबसे बेहतर जम्हूरीयत (लोकतंत्र) को समझा जाता है। लेकिन इसके बारे में यक़ीनी तौर पर यह कहा जा सकता है कि न अक़लन इसकी उम्मीद है, न वाक़िआ की सूरत में एक लम्हे के लिए कभी इसका वुजूद हुआ, न कभी इसका तसव्वुर किया जा सकता है। फिर भी आप देखते हैं कि इस सोच के लिए दुनिया ने कितनी शानदार क़ुरबानियाँ दी हैं। फिर एक ऐसे निज़ाम के क़ायम होने की तरफ़ से आप क्यों बददिल होते हैं जो न अमलन दुनिया में, ख़ुद आपके इक़रार के मुताबिक़, तीस साल तक क़ायम रह चुका है और जिसके अम्न, इनसाफ़ और ख़ैर व बरकत पर होने की, मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम, दोनों की गवाही मौजूद है।

लेकिन यह इतिहास के आधे-अधूरे मुताले का नतीजा है कि लोग समझते हैं कि सही इस्लामी निज़ाम सिर्फ़ तीस सालों तक ही क़ायम रहा। सियासी सूझ-बूझ की कमी की वजह से लोगों की तब्दीली और निज़ाम की तब्दीली में लोग अंतर नहीं करते, हालाँकि दोनों बातों में ज़मीन और आसमान का फ़र्क़ है। ख़लीफ़ाओं के दौर के ख़त्म होने के बाद जो तब्दीली हुई वह 'कांस्टीट्यूशन' (विधान) की तब्दीली नहीं थी, बल्कि लोगों की तब्दीली थी। देश का क़ानून वही रहा, हुकूमत का दस्तूर (संविधान) वही रहा, ताज़ीरात (दंड-विधान) ख़ुदा के बनाए हुए थे, उसूल अल्लाह के मुक़र्रर किए हुए थे, जायदादें क़ुरआन के बताए हुए क़ानून के मुताबिक़ बँटती थीं। सिर्फ़ उस निज़ाम को चलानेवाले लोगों में तब्दीली ज़रूर हो गई थी कि वे अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) और उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) की तरह तक़वावाले, ख़ुदा से डरनेवाले न थे। फिर भी इनमें से किसी के

लिए भी यह मुमकिन नहीं था कि वह ख़ुदा के क़ानून की जगह अपना क़ानून चला दे। इनमें से अगर कोई शख़्स ख़ुदा के किसी हुक्म की ज़िम्मेदारियों से बचाना चहता था तो उसे तरह-तरह के मज़हबी बहानों से काम लेना पड़ता था। ख़ुदा से खुल्लम-खुल्ला बग़ावत इनमें से बुरे से बुरा आदमी भी करने की हिम्मत नहीं करता था। चुनाँचे यही वजह है कि बाद के ज़मानों में हम देखते हैं कि जब ख़िलाफ़त की गद्दी पर कोई ख़ुदा से डरनेवाला और परहेज़गार इनसान आ गया तो यकायक रात-दिन के अंदर दुनिया में वह बहार आ गई जो फ़ारूक़े आज़म (रज़ि०) के ज़माने में आई थी और ऐसा मालूम होने लगा मानो हुकूमत के निज़ाम में सिरे से कोई ख़राबी पैदा ही नहीं हुई थी। और यह हक़ीक़त भी है कि दरअस्ल निज़ाम के अंदर कोई बुनियादी ख़राबी, जिसका सुधार लम्बा वक़्त चाहता हो, पैदा भी नहीं हुई थी। सिर्फ़ ऊपरी ख़राबियाँ पैदा होती थीं जो मामूली तब्दीली से दुरुस्त हो जाती थीं। इस तरह की इस्लाह के दौर इस्लामी ख़िलाफ़त पर बार-बार आए, और जब तक उसकी बुनियाद में ख़राबी नहीं पैदा हुई यानी ख़ुदा की हुकूमत की जगह शैतान की हुकूमत नहीं क़ायम हो गई, उस वक़्त तक दुनिया में खलीफ़ाओं की बरकतों का दौर बार-बार आता रहा। और अब भी इसके लिए जिद्दोजुहद की जाए तो कोई वजह नहीं है कि अल्लाह तआला इस काम में हमारी मदद नहीं करेगा!

इस आसमान की छत के नीचे हर तरह के काम हो रहे हैं और जिन कामों के लिए वह जिद्दोजुहद वुजूद में आ जाती है जो उनके लिए ज़रूरी है तो हम देखते हैं कि वे काम भी हो जाते हैं, चाहे बातिल हों या हक़। फिर जब इस कायनात का रब अहले बातिल की जाँबाज़ियों को भी नामुराद नहीं करता तो आख़िर एक हक़ के मक़सद ही से उसे इतनी दुश्मनी क्यों होगी कि उसके लिए अगरचे सिर-धड़ की बाज़ी लगानेवाले पैदा हो जाएँ, लेकिन वह पूरा न हो सके।

काम की ज़रूरी शर्तें

लेकिन हर काम का एक ख़ास तरीक़ा होता है, और ज़रूरी है कि उसको उसी तरीक़े पर किया जाए। एक काम अगर आप ग़लत तरीक़े पर कर रहे हैं तो चाहे यह ग़लती आप कितनी ही नेकनीयती से करें उस ग़लती का नतीजा उस अमल की नाकामी की शक्ल में आपके सामने आकर रहेगा। ख़ुदा के बनाए हुए क़ानून बिलकुल ख़ालिस और बेजोड़ होते हैं। नेक से नेक इनसान भी अगर शहद की जगह हंज़ल (अर्थात इंद्रायन, जो अत्यंत कड़वा फल होता है) इस्तेमाल

कर रहा है तो उसकी नेकी की वजह से हंज़ल में शहद की मिठास नहीं पैदा हो जाएगी। इसी तरह अगर मुसलमान एक काम को ग़लत तरीक़े पर कर रहे हैं तो इस वजह से कि वे मुसलमान हैं और इस दंभ में कि वे ख़ुदा के यहाँ बड़ा दर्जा रखते हैं, यह नहीं हो सकता कि उनका काम सही हो जाए और अगर ग़ैर-मुस्लिम किसी काम को सही तरीक़े पर पूरा करने की जिद्दोजुहद में सरगर्म हैं तो महज़ इस वजह से कि वे ग़ैर-मुस्लिम हैं यह नहीं हो सकता कि उनकी सही जिद्दोजुहद का नतीजा न मिले। अल्लाह के बनाए क़ानूनों में इस तरह की नाइन्साफ़ी नहीं है।

मुसलमानों में यह एहसास बड़ी शिद्दत के साथ पाया जाता है कि मुसलमान की हैसियत से अल्लाह की तरफ़ से हुकूमत और सत्ता की नेमत पाने के हक़दार वही हैं। इस एहसास के साथ जब वे अपनी मौजूदा हालत पर नज़र डालते हैं तो उन्हें क़ुरआन के वादों और ख़ुदा की तरफ़ से मायूसी होने लगती है। वे यह ख़याल करते हैं कि जब हम मुसलमान हैं तो ज़मीन की विरासत हमें ही मिलनी थी। अगर नहीं मिली तो इसमें उनका कोई क़ुसूर नहीं है, बल्कि वादा करनेवाले ही की तरफ़ से कोई ग़फ़लत है। लेकिन यह ख़याल निहायत ग़लत है। अल्लाह तआला ने जिन चीज़ों का वादा ज़ाती कोशिशों के बदले में किया है, उन्हें ज़ाती कोशिशों के नतीजे में अता फ़रमाता है। लेकिन जिन चीज़ों का वादा जमाअत से है, उनके लिए ज़रूरी है कि जमाअती जिद्दोजुहद ज़ुहूर में आए। अगर उनके लिए जमाअती जिद्दोजुहद न की जाए तो चाहे ज़ाती कोशिशों और तक़वा में आप कितने ही बढ़े हुए हों, आपके अंदर जुनैद, शिबली, सलमान और अबू ज़र के दर्जा के लोग क्यों न मौजूद हों, लेकिन यह नहीं हो सकता कि इन इंफ़िरादी नेकियों के बदले में आपको अल्लाह तआला की वे इनाम मिल जाएँ जो जमाअती नेकियों के लिए मख़्सूस हैं। हमें इस बात से इनकार नहीं है कि मुसलमानों में आज भी निहायत नेक और भले लोग मौजूद हैं, लेकिन इन नेक और भले लोगों ने मिलकर कभी इस बात की कोशिश नहीं की कि इस देश में एक 'सालेह निज़ाम' (कल्याणकारी व्यवस्था) क़ायम करें। बल्कि अपनी इंफ़िरादी नेकियों के दंभ में हमेशा ख़ुदा से शिकवा करते रहे कि अल्लाह ने उनके लिए अपने वादे पूरे नहीं किए। ख़ुदा ने जमाअतों से उनकी जमाअती नेकियों पर जो वादे फ़रमाए हैं वे तो इतने अटल हैं कि अगर वे नेकियाँ किसी जमाअत के अंदर ख़ुदा से इनकार के साथ भी पैदा हो जाएँ, तब भी वे इनाम मिलकर रहते हैं। फिर अगर कोई जमाअत ईमान और इस्लाम की नेमत से फ़ायदा उठाकर

कि इस दौर में लोगों के ज़ेहनों में दीनदारी का ऐसा ग़लत तसव्वुर पैदा हो गया है कि जब किसी दीनी काम का इरादा किया जाए, लोग उसके कारकुनों में ऐसी बातें ढूँढ़ने लगते हैं जिनकी दीन में कोई अस्ल नहीं है। और जब वे चीज़ें नहीं पाते तो पूरी जमाअत को एक ग़ैर-दीनी जमाअत बल्कि एक नुक़सानदेह वुजूद क़रार देते हैं। यही सबब है कि बहुत-से लोग यह कहते हैं कि जमाअत इस्लामी अपने मक़सद के लिहाज़ से निहायत सालेह और आला जमाअत है, लेकिन उसके लीडरों में तक़्वा नहीं है। चूँकि इस प्रोपेगंडे से किसी न किसी हद तक हमारे अरकान भी मुतास्सिर होते हैं, इस वजह से ज़रूरी है कि कुछ बातें इस सिलसिले में भी वाज़ेह कर दी जाएँ। इसका मक़सद अपने को महफ़ूज़ करना नहीं है, बल्कि अस्ल हक़ीक़त बताना है। इस जमाअत के लीडरों में से किसी को भी तक़्वा का दावा नहीं है, अलबत्ता उन लोगों के तक़्वे पर हैरत ज़रूर है जो सही काम जमाअत इस्लामी के काम को समझते हैं, लेकिन हमारे अंदर तक़्वे की कमी की वजह से आम मुसलमानों को यह मशविरा देते हैं कि उन लोगों के पीछे चलो जो हालाँकि ग़लत राह पर जा रहे हैं, लेकिन मुत्तक़ी हैं। हम उन्हें ख़ुदा का वास्ता देकर उनकी ज़िम्मेदारी याद दिलाते हैं कि अगर उनपर राहे हक़ वाज़ेह है और उनमें तक़्वा भी मौजूद है तो वे ख़ुद आगे बढ़कर रहनुमाई की बागडोर अपने हाथों में लें लेकिन जान-बूझकर मुसलमानों को ग़लत राह पर चलने का मशविरा न दें। उन्हें इस बात को याद रखना चाहिए कि इस तक़्वे के लिए हिसाब का एक दिन भी है जिस दिन उनसे मुसलमानों को जान-बूझकर ग़लत मशविरा देने के बारे में पूछा जाएगा और वे इस जवाब से बरी न हो सकेंगे कि उन्होंने मुसलमानों को मुत्तक़ी ग़लतकार लोगों के पीछे गुमराह होने का मशविरा दिया था।

मैं इस मौक़े पर दिल के पूरे इत्मीनान के साथ यह हक़ीक़त भी वाज़ेह करने की जुर्रत करता हूँ कि इस ज़माने में तक़्वा के लिए जो बातें लाज़िम समझ ली गई हैं, तक़्वा के मौसमे बहार यानी इस्लाम के शुरू के दौर में इन लाज़िम समझ ली गई बातों का कोई नाम व निशान भी न था। मौजूदा तक़्वा में सिर्फ़ यह काफ़ी नहीं है कि हराम को हराम क़रार दिया जाए और आदमी इससे बचे, बल्कि यह भी ज़रूरी है कि अल्लाह की बनाई हुई चीज़ों को भी छोड़ दे और सितम यह कि कुछ हलाल चीज़ों को छोड़ने का इतना एहतिमाम है कि जहाँ आदमी में इन चीज़ों का शक भी पाया गया वह तक़्वे से ख़ाली मशहूर हुआ। हालाँकि ये लोग ऐसे-ऐसे गुनाहों में मुबतिला हैं जिनके बारे में खुल्लम-खुल्ला मना किया

गया है। लेकिन इसका एहसास इन्हें ज़रा बेचैन नहीं करता। अगर एक आदमी सलीक़े की साफ़-सुथरी ज़िन्दगी गुज़ारे तो उनकी सरपरस्ती से वह ख़ारिज है, लेकिन शैतान की हिमायत और मदद में अपनी सारी क़ाबिलियतें रात-दिन लगानेवाले सिर्फ़ कुछ रस्मों की पाबंदी की बदौलत रोज़ाना अल्लाह की क़ुरबत के निहायत बुलंद मरहले और मंज़िलें तय करते हैं और उनके सुलूक में कोई चीज़ रुकावट नहीं होती। मसीह (अलै०) ने शायद इसी तक़वा को 'मच्छर को छानने और ऊँट को निगलने' से ताबीर किया है—और कितनी सच्ची ताबीर है यह उस तक़वा की जिसमें दाढ़ी और लब की मामूली-सी बेक़ायदगी गवारा नहीं की जाती, लेकिन ख़ुदा की सारी शरीअत की बर्बादी पर उनके सीनों में एक आह भी नहीं।

इस अहद (काल) में तक़वा के लिए एक ज़रूरी शर्त यह भी है कि आदमी के पास किसी ख़ानकाह की सनद हो। बग़ैर इस सनद के चाहे कोई शख़्स क़ुरआन व सुन्नत का कितना ही पाबंद हो तक़वा के मक़ाम तक नहीं पहुँच सकता, हालाँकि यह शर्त दीन में एक इज़ाफ़ा है। क़ुरआन में जिस तक़वा की तारीफ़ की गई है वह अल्लाह के हदों की पाबंदी और ख़ुदा के दीन को अपने ऊपर क़ायम करने और दूसरों को उसकी दावत देने से ज़्यादा कुछ नहीं है। अगर एक शख़्स अल्लाह की हदों से डरता है, ख़ुदा की शरीअत की पाबंदी करता है, हराम की गई चीज़ों और बिदआत (दीन में नई बातों) से बचता है तो वह मुत्तक़ी है, चाहे वह किसी ख़ानक़ाह से जुड़ा हो या न हो। दिखावटी ख़ाकसारी और बेढंगे तरीक़े से रहना-सहना, इक़ामते दीन की जिद्दोजुहद से बेनियाज़ी, क़ुरआन व सुन्नत से ग़ैर-साबित वज़ीफ़ों और विर्दों (जाप) में लगा होना और इस तरह की दूसरी बातें हमारे यहाँ नहीं हैं, और जिन लोगों को इन चीज़ों की तलाश है, बेहतर है कि वे किसी ख़ानक़ाह की राह लें। हमसे इन चीज़ों की माँग न करें। हमसे उन्हीं चीज़ों का मुतालिबा किया जा सकता है जिनकी अस्ल अल्लाह की किताब और उसके रसूल (सल्ल०) की सुन्नत में है। इन चीज़ों के सिवा कोई चीज़ हमारे लिए दलील नहीं बन सकती। मैं इन बातों को इसलिए साफ़-साफ़ कह रहा हूँ कि किसी को हमारे बारे में कोई ग़लतफ़हमी न रहे। हम जितने हैं उससे ज़्यादा एक हर्फ़ ज़ाहिर करना पसंद नहीं करते।

मुझे यह हक़ीक़त ज़ाहिर कर देने में कोई झिझक नहीं है कि आज यह तक़वा के लिए बहुत-सी बातें जो लाज़िम कर ली गई हैं वे इक़ामते दीन की असली जिद्दोजुहद पर पर्दा डालने के लिए पैदा की गई हैं। इन लोगों को जब

दीन के अस्ल मुतालबे और तक़ाज़े मुश्किल मालूम हुए और उन्हें नज़र आया कि इस राह में कुछ मंज़िलें बहुत सख़्त आती हैं और साथ ही उन्हें यह शर्मिंदगी भी गवारा नहीं थी कि उनपर कम हिम्मती का इलज़ाम आए तो उन्होंने दीन के अस्ली मुतालबों के दूसरे बदल तैयार कर लिए। मैदान का काम उन्होंने दुनिया को फ़ितना कहकर छोड़ दिया और ख़ानक़ाहों में बैठकर विर्दों (जाप) और वज़ीफ़ों की तादाद में इज़ाफ़ा कर दिया। फिर तक़वा की एक ख़ास शक्ल क़रार पा गई और मुत्तक़ियाना ज़िन्दगी का एक ख़ास ढर्रा वुजूद में आ गया। और धीरे-धीरे अब हाल यह हो गया है कि उनके हाथों में तक़वा का जो पैमाना है, हमें अंदेशा है कि अगर उससे इस्लाम के शुरू के सबसे अच्छे दौर के मुसलमानों को भी मापा जाए तो शायद वे भी मुत्तक़ीन न साबित हो सकेंगे। हम इस तक़वा के क़ायल नहीं हैं। हमारे नज़दीक यह काफ़ी है कि एक सीधे-सादे और पुख़्ता मुसलमान की-सी ज़िन्दगी बसर कीजिए, ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल०) की जो बात आपके इल्म में आए उसपर 'न मैं इसमें कुछ इज़ाफ़ा करूँगा न कुछ कमी' कहकर जम ज़ाइए। अपनी ज़िन्दगी का बराबर एहतिसाब करते रहिए कि आपके काम दिखावे और शोहरत के लिए न हों और रात-दिन इस जिद्दोजुहद में लगे रहिए कि ख़ुदा के बन्दों पर सिर्फ़ ख़ुदा का क़ानून चले।

हुकूमत के दूसरे दावेदार या तो मिट जाएँ या उन्हें बदलने और न बदलने की सूरत में उन्हें मिटाने में हम मिट जाएँ। मैं चाहता हूँ कि अब इन बातों को आप पूरे होश से सुन लें। ज़माना बड़ी तेज़ी से बदल रहा है, हमारे सामने निहायत मुश्किल काम आनेवाले हैं। ऐसा न हो कि हमारे सामने कोई सख़्त इम्तिहान आ जाए और हमारी फ़ौज धोखे में पड़ी हुई हो। आपके हाथ में क़ुरआन व सुन्नत के सिवा कोई दूसरा पैमाना नहीं होना चाहिए। इस पैमाने से अपनी जमाअत के लोगों को नापते रहिए, अपने अमीर को भी और मामूर को भी। इस एहतिसाब में जमाअत की ज़िन्दगी है और इसमें किसी क़िस्म की लापरवाही और नरमी से काम न लीजिए। अन्य ख़यालात जो बेअस्ल हैं उन्हें छोड़िए, और अगर उनकी पकड़ आपपर इतनी सख़्त है कि आप उनसे अलग नहीं हो सकते तो हमें इस बात का कोई ग़म न होगा कि आप हमें छोड़ दें। हम न तो ख़ुद धोखे में रहना चाहते हैं और न दूसरों को धोखा देना चाहते हैं।

आठवाँ इज्लास

(8 जमादल अव्वल 1365 हिजरी, तदनुसार 21 अप्रैल 1945 ई०, हफ़्ता, बाद मग़रिब)

मग़रिब की नमाज़ के बाद आख़िरी इज्लास शुरू हुआ। चूँकि अब इज्तिमा के सिलसिले का सारा प्रोग्राम पूरा हो चुका था। इसलिए जमाअत को रुख़सत करने से पहले इस इज्लास में अमीर जमात ने रुफ़क़ा व हाज़िरीन से आख़िरी ख़िताब किया जो इस प्रकार है :

अमीर जमाअत की इख़्तितामी तक़रीर

तहरीक इस्लामी की अख़लाक़ी बुनियादें

हम्द व-सलात के बाद फ़रमाया—

रुफ़क़ा व हाज़िरीन! जैसा कि आपको मालूम है कि हमारी जिद्दोजुहद का आख़िरी मक़सूद इमामत (नेतृत्व) का इंक़िलाब है। यानी दुनिया में हम जिस इंतिहाई मंज़िल पर पहुँचना चाहते हैं वह यह है कि नाफ़रमानों और गुनाहगारों की इमामत ख़त्म होकर अच्छी और नेक इमामत (कल्याणकारी नेतृत्व) का निज़ाम क़ायम हो, और इसी जिद्दोजुहद को हम दुनिया और आख़िरत में अल्लाह की रज़ामंदी हासिल करने का ज़रिया समझते हैं। यह चीज़ जिसे हमने अपना मक़सद क़रार दिया है, अफ़सोस है कि आज उसकी अहमियत से मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम सभी ग़ाफ़िल हैं। मुसलमान इसे सिर्फ़ एक सियासी मक़सद समझते हैं और उन्हें कुछ एहसास नहीं है कि दीन में इसकी क्या अहमियत है। ग़ैर-मुस्लिम कुछ तास्सुब की वजह से और कुछ जानकारी न होने की वजह से इस हक़ीक़त को जानते ही नहीं हैं कि दरअस्ल नाफ़रमानों और गुनाहगारों की क़यादत ही इनसानी समाज की मुसीबतों की जड़ है, और इनसान की भलाई का सारा दारोमदार इस बात पर है कि दुनिया के मामलों की बागडोर नेक लोगों के हाथों में हो। आज दुनिया में जो बिगाड़, ज़ुल्म और सरकशी का माहौल है, दुनिया में इनसानी अख़लाक़ में जो व्यापक गिरावट आई है, इनसानी तहज़ीब, कारोबार, मईशत (अर्थतंत्र) और सियासत की रग-रग में जो ज़हर फैल गए हैं, ज़मीन के तमाम ज़राए और इनसानी इल्म के ज़रिए खोजी गई सारी कुव्वतें जिस

तरह इनसान की फ़लाह और भलाई के बजाय उसकी तबाही के लिए इस्तेमाल हो रही हैं—इन सबकी ज़िम्मेदारी अगर किसी चीज़ पर है तो वह यही है कि दुनिया में चाहे नेक लोगों और शरीफ़ इनसानों की कमी न हो, मगर दुनिया के मामलात इन लोगों के हाथ में नहीं हैं, बल्कि ख़ुदा से फिरे हुए, दौलत के पुजारियों और बुरे कामों में डूबे हुए लोगों के हाथों में हैं।

अब अगर कोई आदमी दुनिया का सुधार चाहता हो और तबाही को भलाई से, बदअम्नी को अमन से, बदकिरदारियों को अच्छे किरदार से और बुराइयों को भलाइयों से बदलने का ख़्वाहिशमंद हो तो उसके लिए सिर्फ़ नेकियों की तक़रीर, ख़ुदापरस्ती की नसीहत और हुस्ने अख़लाक़ की तरग़ीब (प्रेरणा) ही काफ़ी नहीं है, बल्कि उसका फ़र्ज़ है कि इनसानी समाज में जितनी अच्छी और नेक चीज़ें उसे मिल सकें उन्हें मिलाकर वह इज्तिमाई क़ुव्वत इकट्ठा करे, जिसके ज़रिए तहज़ीब की बागडोर नाफ़रमानों के हाथों से छीनी जा सके और इमामत के निज़ाम में बदलाव लाया जा सके।

बागडोर (नेतृत्व) की अहमियत

इनसानी ज़िन्दगी के मसलों में जिसे थोड़ी-सी सूझबूझ भी हासिल हो वह इस हक़ीक़त से बेख़बर नहीं हो सकता कि इनसानी मामलों के बनाव व बिगाड़ का आख़िरी फ़ैसला जिस मसले पर निर्भर है, वह यह है कि इनसानी मामलों की बागडोर किसके हाथ में है। जिस तरह गाड़ी हमेशा उसी रुख़ में चला करती है जिस रुख़ में ड्राइवर उसे ले जाना चाहता है और दूसरे लोग जो गाड़ी में बैठे हों, चाहते हुए या नहीं चाहते हुए भी उसी दिशा में सफ़र करने के लिए मजबूर होते हैं उसी तरह इनसानी तहज़ीब की गाड़ी भी उसी रुख़ में सफ़र किया करती है जिस रुख़ में वे लोग जाना चाहते हैं जिनके हाथ में तहज़ीब की नकेल होती हैं। ज़ाहिर है कि ज़मीन के सारे ज़रिए जिनके क़ाबू में हों, क़ुव्वत और हुकूमत की डोर जिनके हाथों में हों, आम इनसानों की ज़िन्दगी जिनके दामन से जुड़ी हो, ख़यालात और नज़रियों को बनाने और ढालने का ज़रिया जिनके क़ब्ज़े में हो, लोगों के किरदार को सँवारना, इज्तिमाई निज़ाम क़ायम करना और अख़लाक़ी क़द्रों को तय करना जिनके इख़्तियार में उनकी रहनुमाई और उनके फ़रमान के तहत रहते हुए इनसानियत मज्मूई तौर पर उस राह पर चलने से किसी तरह बच नहीं सकती, जिस राह पर वह उसे चलाना चाहते हों। ये रहनुमा और फ़रमान जारी करनेवाले अगर ख़ुदापरस्त और नेक लोग हों तो अपने आप ज़िन्दगी का

सारा निज़ाम खुदापरस्ती, खैर और भलाई पर चलेगा, बुरे लोग भी अच्छे बनने पर मजबूर होंगे, भलाइयाँ फैलेंगी और बुराइयाँ अगर मिटेंगी नहीं तो कम से कम बढ़ भी न सकेंगी।

लेकिन यदि रहनुमाई, क़ियादत और हुकूमत उन लोगों के हाथों में हो जो खुदा से फिरे हुए और नाफ़रमानियों और बदकारियों में डूबे हुए हों तो आपसे आप ज़िन्दगी का सारा निज़ाम खुदा से बग़ावत, ज़ुल्म व बदअखलाक़ी पर चलेगा। खयालात और नज़रिये, इल्म और आदाब, सियासत और कारोबार, तहज़ीब और समाज, अखलाक़ और मामलात, इनसाफ़ और क़ानून सबके सब पूरे तौर पर बिगड़ जाएँगे। बुराइयाँ पनपेंगी और भलाइयों को ज़मीन अपने अंदर जगह देने से और हवा और पानी उन्हें खाना देने से इनकार कर देंगे—और खुदा की ज़मीन ज़ुल्म से भर जाएगी। ऐसे निज़ाम में बुराई की राह पर चलना आसान और भलाई की राह पर चलना क्या मानी, क़ायम रहना भी मुश्किल होता है।

जिस तरह आपने किसी बड़ी भीड़ में देखा होगा कि सारी भीड़ जिस तरफ़ जा रही हो उस तरफ़ चलने के लिए तो आदमी को कुछ ताक़त लगाने की भी ज़रूरत नहीं होती बल्कि वह भीड़ की ताक़त से अपने आप उसी तरफ़ बढ़ा चला जाता है। लेकिन अगर उसके उलटी तरफ़ कोई चलना चाहे तो वह बहुत ज़ोर मारकर भी मुश्किल से एक-आध क़दम चल सकता है, और जितना वह चलता है, भीड़ का एक ही रैला उससे कई गुना ज़्यादा उसे पीछे धकेल देता है। इसी तरह इज्तिमाई निज़ाम भी जब बुरे लोगों की क़ियादत में कुफ़्र और नाफ़रमानियों की राहों पर चल पड़ता है तो लोगों और गिरोहों के लिए ग़लत राह पर चलना तो इतना आसान हो जाता है कि उन्हें खुद से उसपर चलने के लिए कुछ ज़ोर लगाने की भी ज़रूरत नहीं पड़ती—लेकिन अगर वे इसके खिलाफ़ चलना चाहें तो अपने जिस्म व जान का सारा ज़ोर लगाने पर भी एक-आध क़दम ही सही रास्ते पर बढ़ सकते हैं और इज्तिमाई रौ उनके ज़ोर लगाने के बावजूद उन्हें धकेल कर मीलों पीछे हटा ले जाती है।

यह बात जो मैं अर्ज़ कर रहा हूँ, यह अब कोई फ़िक्री हक़ीक़त नहीं रही है कि जिसे साबित करने के लिए दलीलों की ज़रूरत हो। बल्कि वाक़ियात ने इसे एक ज़ाहिर हक़ीक़त बना दिया है जिससे कोई भी देखने की सलाहियत रखनेवाला आदमी इनकार नहीं कर सकता। आप खुद ही देख लें कि पिछली एक सदी के भीतर आपके अपने देश में किस तरह खयालात व नज़रियात बदले हैं, स्वभाव और मिज़ाज बदले हैं, सोचने और देखने के अंदाज़ बदले हैं, तहज़ीब

व अख़लाक़ के मेयार और क़द्र व क़ीमत के पैमाने बदले हैं, ज़िन्दगी के तरीक़े और मामलात के ढंग बदले हैं—और कौन-सी चीज़ रह गई है जो बदल न गई हो ! यह सारा बदलाव जो देखते-देखते आपकी इसी सरज़मीन पर हुआ, इसकी असली वजह आख़िर क्या है ? क्या आप इसकी वजह इसके सिवा कुछ और बता सकते हैं कि जिन लोगों के हाथ में बागडोर थी और रहनुमाई और हुकूमत की डोर पर जिनका क़ब्ज़ा था उन्होंने पूरे मुल्क के अख़लाक़ और ज़ेहनों को, नफ़्सियात, मामलात और निज़ामे तमद्दुन को उस साँचे में ढालकर रख दिया जो उनकी अपनी पसंद के मुताबिक़ था।

फिर जिन ताक़तों ने इस बदलाव की मुख़ालिफ़त की. . . ज़रा नाप-तौलकर देखिए कि उन्हें कामयाबी कितनी मिली और नाकामी कितनी? क्या यह वास्तविकता नहीं है कि कल जो लोगों को रोकनेवाली तहरीक के नेता थे आज उनकी औलाद वक़्त के बहाव में बही जा रही है और उनके घरों तक में भी वही सब कुछ पहुँच गया है जो घरों से बाहर फैल चुका था। क्या यह हक़ीक़त नहीं है कि मुक़द्दस मज़हबी पेशवाओं तक की नस्ल से वे लोग उठ रहे हैं, जिन्हें ख़ुदा के वुजूद, वह्य और रिसालत में भी शक है।

इतना कुछ देखने और तजुर्बा करने के बाद भी क्या किसी को इस हक़ीक़त को मानने से इनकार हो सकता है कि इनसानी ज़िन्दगी के मसलों में अस्ल और सबसे अहम मसला बागडोर का मसला है। और यह अहमियत इस मसले ने कुछ आज ही नहीं इख़्तियार की है बल्कि हमेशा से इसकी यही अहमियत रही है। 'लोग अपने बादशाह के तरीक़े (दीन) पर होते हैं' बहुत पुरानी कहावत है और इसी कारण हदीसों में क़ौमों के बनाव व बिगाड़ का ज़िम्मेदार उनके उलमा और हुकूमत करनेवालों को बताया गया है क्योंकि लीडरशिप और बागडोर इन्हीं के हाथों में होती है।

सालेह इमामत क़ायम करना दीन का असली मक़सद

यह बताने के बाद यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि दीन में इस मसले की क्या अहमियत है। ज़ाहिर बात है कि अल्लाह का दीन पहले तो यह चाहता है कि लोग पूरे तौर पर हक़ के माननेवाले बनकर रहें और उनकी गर्दन में अल्लाह के सिवा किसी और की बंदगी का पट्टा न हो। फिर वह यह चाहता है कि अल्लाह ही का क़ानून लोगों की ज़िन्दगी का क़ानून बनकर रहे। फिर उसका मुतालिबा यह है कि ज़मीन से फ़साद मिटे और बुराइयाँ ख़त्म हों जो

ज़मीनवालों पर अल्लाह के ग़ज़ब की वजह बनती हैं और उन भलाइयों और अच्छे कामों को बढ़ावा दिया जाए जो अल्लाह को पसंद हैं।

इन सभी मक़सदों में से कोई मक़सद भी इस तरह पूरा नहीं हो सकता कि इनसान की रहनुमाई, क़ियादत और इनसानी मामलात में रास्ता दिखाने का काम कुफ़्र व गुमराही के अलमबरदारों के हाथ में हो और दीने हक़ के माननेवाले सिर्फ़ उनके मातहत रहकर उनकी दी हुई रियायतों और गुंजाइशों से फ़ायदा उठाते हुए ख़ुदा को याद करते रहें। ये मक़सद तो लाज़िमी तौर पर इस बात का मुतालिबा करते हैं कि तमाम भले और नेक लोग जो अल्लाह की रिज़ा के तालिब हों, इज्तिमाई क़ुव्वत पैदा करें और सिर-धड़ की बाज़ी लगाकर एक ऐसा निज़ामे हक़ क़ायम करने की कोशिश करें जिसमें इमामत, रहनुमाई, क़ियादत और फ़रमान जारी करने का ओहदा मोमिनों और नेक लोगों के हाथों में हो। इस चीज़ के बग़ैर वह अस्ल मक़सद हासिल ही नहीं हो सकता जो दीन का अस्ल मक़सद है।

इसी लिए दीन में सालेह इमामत और निज़ामे हक़ क़ायम करने को अस्ल मक़सद क़रार दिया गया है और इस चीज़ से ग़फ़लत बरतने के बाद कोई अमल ऐसा नहीं हो सकता, जिससे इनसान अल्लाह तआला की रिज़ा को पहुँच सके। ग़ौर कीजिए कि आख़िर क़ुरआन व हदीस में जमाअत के लाज़िम होने और उसके हुक्मों को सुनने और मानने पर इतना ज़ोर क्यों दिया गया है कि अगर कोई शख़्स जमाअत से अलग हो जाए तो वह मौत की सज़ा का हक़दार है, चाहे वह तौहीद के कलिमे का क़ायल हो और नमाज़-रोज़े का पाबंद ही क्यों न हो। क्या इसकी वजह यह और सिर्फ़ यही नहीं है कि सालेह इमामत और निज़ामे हक़ को क़ायम करना और उसको हमेशा बाक़ी रखना दीन का हक़ीक़ी मक़सद है और इस मक़सद को हासिल करने का दारोमदार इज्तिमाई ताक़त पर है। लिहाज़ा जो शख़्स इज्तिमाई ताक़त को नुक़सान पहुँचाता है, वह इतना बड़ा जुर्म करता है जिसकी भरपाई न नमाज़ से हो सकती है और न तौहीद के इक़रार से। फिर देखिए कि आख़िर इस दीन में जिहाद को इतनी अहमियत क्यों दी गई है कि उससे जी चुराने और मुँह मोड़नेवालों पर क़ुरआन निफ़ाक़ (ईमान के पाखंड) का हुक्म लगाता है। जिहाद निज़ामे हक़ के लिए कोशिश का ही तो दूसरा नाम है, और क़ुरआन इसी जिहाद को वह कसौटी क़रार देता है जिसपर आदमी का ईमान परखा जाता है। दूसरे लफ़्ज़ों में जिसके दिल में ईमान होगा वह न बातिल निज़ाम के ग़लबे से राज़ी हो सकता है और न निज़ामे हक़ के क़याम की

जिद्दोजुहद में जान-माल की क़ुरबानी से जी चुरा सकता है। इस मामले में जो शख़्स कमज़ोरी दिखाए उसका ईमान शक के दायरे में है, फिर भला कोई दूसरा अमल उसे क्या फ़ायदा पहुँचा सकता है।

इस वक़्त इतना मौक़ा नहीं है कि मैं आपके सामने इस मसले की पूरी तफ़्सील बयान करूँ, मगर जो कुछ मैंने अर्ज़ किया है वह इस हक़ीक़त को ज़ेहन में बैठाने के लिए बिलकुल काफ़ी है कि इस्लाम के नज़रिए से सालेह इमामत का क़याम मक़सदी और मरकज़ी अहमियत रखता है और जो शख़्स इस दीन पर ईमान लाया हो उसका काम सिर्फ़ इतने पर ही ख़त्म नहीं हो जाता कि अपनी सारी ज़िन्दगी को मुमकिन हद तक इस्लाम के साँचे में ढालने की कोशिश करे, बल्कि ठीक उसके ईमान ही का तक़ाज़ा यह है कि वह अपनी पूरी कोशिश को उस एक मक़सद पर लगा दे कि निज़ाम की बागडोर काफ़िरों और नाफ़रमानों के हाथ से निकलकर नेक लोगों के हाथ में आए और वह निज़ामे हक़ क़ायम हो जो अल्लाह की मरज़ी के मुताबिक़ दुनिया के निज़ाम को दुरुस्त करे और दुरुस्त रखे। फिर चूँकि यह मक़सद बड़ी इज्तिमाई कोशिशों के बग़ैर हासिल नहीं हो सकता, इसलिए एक ऐसी सालेह जमाअत का वुजूद ज़रूरी है जो ख़ुद हक़ के उसूल की पाबंद हो और निज़ामे हक़ को क़ायम करने, बाक़ी रखने और ठीक-ठीक चलाने के सिवा दुनिया में कोई दूसरा मक़सद सामने न रखे। ज़मीन पर अगर सिर्फ़ एक ही आदमी मोमिन हो तब भी उसके लिए यह दुरुस्त नहीं है कि अपने आपको अकेला पाकर और ज़रियों की कमी देखकर निज़ामे बातिल के ग़लबे पर राज़ी हो जाए या 'दो बड़ी मुसीबतों में से एक हल्की मुसीबत' के शरई बहाने तलाश करके कुफ़्र व नाफ़रमानी के ग़लबे के मातहत कुछ आधी-पौनी मज़हबी ज़िन्दगी का सौदा चुकाना शुरू कर दे, बल्कि उसके लिए सीधा और साफ़ रास्ता सिर्फ़ यही एक है कि ख़ुदा के बंदों को उस तरीक़े ज़िन्दगी की तरफ़ बुलाए जो ख़ुदा को पसंद है। फिर अगर कोई उसकी बात सुनकर न दे तो उसका, सारी उम्र सीधे-सच्चे रास्ते पर खड़े होकर लोगों को पुकारते रहना और पुकारते-पुकारते मर जाना इससे लाख दर्जा बेहतर है कि वह अपनी ज़बान से वे सदाएँ बुलंद करने लगे जो गुमराही में भटकी हुई दुनिया को प्यारी हों, और उन राहों पर चल पड़े जिनपर नाफ़रमानों की इमामत में दुनिया चल रही हो। और अगर कुछ अल्लाह के बंदे उसकी बात को सुनने को राज़ी हो जाएँ तो उसके लिए ज़रूरी है कि उनके साथ मिलकर एक जत्था बनाए और यह जत्था अपनी इज्तिमाई क़ुव्वत, उस अज़ीम मक़सद के लिए जिद्दोजुहद करने में लगा दे

जिसका मैं ज़िक्र कर रहा हूँ।

हज़रात ! मुझे ख़ुदा ने दीन का जो थोड़ा-बहुत इल्म दिया है और क़ुरआन और हदीस को पढ़ने से जो कुछ समझ-बूझ मुझे हासिल हुई है, उससे मैं दीन का तक़ाज़ा यही कुछ समझा हूँ। यही मेरे नज़दीक अल्लाह की किताब की अस्ल माँग है, यही नबियों की सुन्नत है. . . और मैं अपनी इस राय से नहीं हट सकता; जब तक कि कोई ख़ुदा की किताब और रसूल (सल्ल०) की सुन्नत ही से मुझपर यह साबित न कर दे कि दीन का यह तक़ाज़ा नहीं है।

इमामत (नेतृत्व) के सिलसिले में ख़ुदा की सुन्नत

अपनी कोशिशों के इस मक़सद को समझ लेने के बाद अब हमें अल्लाह की उस सुन्नत को समझने की कोशिश करनी चाहिए जिसके तहत हम अपने इस असल मक़सद को पा सकते हैं। यह कायनात जिसमें हम रहते हैं, उसे अल्लाह ने एक क़ानून पर बनाया है और उसकी हर चीज़ एक बने-बनाए नियम के मुताबिक़ चल रही है। यहाँ कोई कोशिश सिर्फ़ पाकीज़ा ख़्वाहिशों और अच्छी नियतों की बुनियाद पर कामयाब नहीं हो सकती, और न सिर्फ़ पाकीज़ा लोगों की बरकतें ही उसे फ़ायदेमंद बना सकती हैं। बल्कि इसके लिए उन शर्तों का पूरा होना ज़रूरी है जो ऐसी कोशिशों की कामयाबी के लिए क़ानूने इलाही में मुक़र्रर हैं। आप अगर खेती करें तो चाहे तो आप कितने ही अल्लाहवाले इनसान हों और कितनी ही तस्बीह पढ़ते हों, बहरहाल आपका फेंका हुआ कोई बीज फल-फूल नहीं ला सकती जब तक कि आप अपनी खेती की कोशिशों में उस क़ानून की पूरी-पूरी पाबंदी न करें जो अल्लाह तआला ने खेतों को नतीजाख़ेज़ बनाने के लिए मुक़र्रर कर दिया है।

इसी तरह निज़ामे इमामत का वह इंकिलाब भी जो आपके पेशेनज़र हैं, कभी सिर्फ़ दुआओं और पाक तमन्नाओं से पूरा नहीं हो सकेगा। बल्कि इसके लिए भी ज़रूरी है कि आप उस क़ानून को समझें और उसकी सारी शर्तें पूरी करें जिसके तहत दुनिया में इमामत क़ायम होती है, किसी को मिलती है और किसी से छिनती है। हालाँकि इससे पहले भी इस बारे में अपनी तहरीरों और तक़रीरों में इशारे में बयान करता रहा हूँ, लेकिन आज मैं इसे और तफ़्सील के साथ पेश करना चाहता हूँ क्योंकि यह वह चीज़ है जिसे पूरी तरह समझे बिना हमारे सामने अपनी राहे अमल वाज़ेह नहीं हो सकती।

इनसान की हस्ती का अगर जायज़ा लिया जाए तो मालूम होता है कि उसके

अंदर मुख़्तलिफ़ हैसियतें पाई जाती हैं जो एक-दूसरे से अलग भी हैं और आपस में मिली-जुली भी। उसकी एक हैसियत तो यह है कि वह अपना एक जिस्मानी और हैवानी वुजूद रखता है जिसपर वही क़ानून जारी होते हैं जो तमाम भौतिक वस्तुओं व हैवानात पर लागू हैं। इस वुजूद की कारकर्दगी का दारोमदार उन आलात व वसाइल (उपकरण एवं संसाधन), दुनियावी ज़रियों और उन जिस्मानी हालात पर है जिनपर दूसरी तमाम चीज़ों की कारकर्दगी का दारोमदार है। यह वुजूद जो कुछ कर सकता है जिस्मानी क़ानून के तहत आलात व वसाइल (उपकरणों एवं संसाधनों) के ज़रिए से और जिस्मानी हालात के अंदर ही रहते हुए कर सकता है, और इसके काम पर दुनिया की सभी ताक़तें ग़लत या सही असर डालती हैं।

दूसरी हैसियत जो इनसान के अंदर साफ़-साफ़ नज़र आती है वह उसके इनसान होने की, या दूसरे लफ़्ज़ों में एक अख़लाक़ी वुजूद होने की हैसियत है। यह अख़लाक़ी वुजूद जिस्मानी क़ानून का पाबंद नहीं है, बल्कि उनपर एक तरह से हुकूमत करता है। यह ख़ुद इनसान के जिस्मानी और हैवानी वुजूद को भी आले (उपकरण) के तौर पर इस्तेमाल करता है और बाहरी दुनिया की चीज़ों को भी अपने मुताबिक़ बनाने और उनसे काम लेने की कोशिश करता है। उनकी मददगार क़ुव्वतें, उसकी प्रेरक-शक्तियाँ वे अखलाक़ी ख़ूबियाँ हैं जो अल्लाह ने इनसान में डाल रखी हैं और उसपर हुकूमत भी जिस्मानी क़ानूनों की नहीं बल्कि अख़लाक़ी क़ानूनों की है।

इनसानी उतार-चढ़ाव का दारोमदार अख़लाक़ पर है

ये दोनों हैसियतें इनसान के अंदर मिली-जुली काम कर रही हैं और कुल मिलाकर उसकी कामयाबी व नाकामी और उसका उरूज व ज़वाला (उत्थान-पतन) का दारोमदार माद्दी (भौतिक) व अख़लाक़ी दोनों क़िस्म की क़ुव्वतों पर है। वह बेनियाज़ न तो माद्दी क़ुव्वत ही से हो सकता है और न अख़लाक़ी क़ुव्वत ही से। उसे बुलंदी हासिल होती है तो दोनों के बल पर और वह गिरता है तो उसी वक़्त गिरता है जब ये दोनों ताक़तें उसके हाथ से जाती रहती हैं, या इनमें वह दूसरों के मुक़ाबले कमज़ोर होता है। लेकिन अगर गहरी निगाह से देखा जाए तो मालूम होगा कि इनसानी ज़िन्दगी में अस्ल अहमियत अख़लाक़ी ताक़त की है न कि माद्दी (भौतिक) ताक़त की। इसमें शक नहीं कि माद्दी ज़रियों का हासिल होना, तबई ज़राए (भौतिक साधनों) का इस्तेमाल और बाहरी

चीज़ों के मुताबिक़ होना भी कामयाबी के लिए लाज़िमी शर्त है और जब तक इनसान इस भौतिक संसार (Physical World) में रहता है यह शर्त किसी तरह ख़त्म नहीं हो सकती। मगर वह असल चीज़ जो इनसान को गिराती और उठाती है, जिसे उसकी क़िस्मत बनाने और बिगाड़ने में सबसे बढ़कर दख़ल हासिल है वह अख़लाक़ी ताक़त ही है।

ज़ाहिर है कि हम जिस चीज़ की वजह से इनसान को इनसान कहते हैं वह उसकी जिस्मानियत या हैवानियत नहीं बल्कि उसकी अख़लाक़ियत है। आदमी दूसरी मख़लूक़ों से जिस बुनियाद पर मुख़्तलिफ़ माना जाता है वह यह नहीं है कि वह जगह घेरता है या सांस लेता है या नस्ल बढ़ाता है। बल्कि उसकी वह ख़ूबी जो उसे एक मुस्तक़िल ज़ात (प्राणी) ही नहीं बल्कि धरती पर ख़ुदा का ख़लीफ़ा (प्रतिनिधि) भी बनाती है, वह उसका अख़लाक़ी इख़्तियार है और अख़लाक़ी ज़िम्मेदार होना है। आख़िरकार जब अस्ल इनसानियत का जौहर अख़लाक़ है तो यह मानना पड़ेगा कि अख़लाक़ियात ही को इनसानी ज़िन्दगी के बनाव और बिगाड़ में फ़ैसलाकुन मक़ाम हासिल है और अख़लाक़ी क़ानून ही इनसान के उरूज व ज़वाल पर हाकिम है।

इस हक़ीक़त को समझ लेने के बाद जब हम अख़लाक़ियात का जायज़ा लेते हैं तो वह उसूली तौर पर हमें दो बड़े भागों में बंटे नज़र आते हैं :

एक, बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात

दूसरे, इस्लामी अख़लाक़ियात

बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात (नैतिक गुण)

बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात से मुराद वे ख़ूबियाँ हैं जिनपर इनसान के अख़लाक़ी वुजूद की बुनियाद क़ायम है और इनमें वे सभी ख़ूबियाँ शामिल हैं जो दुनिया में इनसान की कामयाबी के लिए बहरहाल ज़रूरी हैं, चाहे वह सही मक़सद के लिए काम कर रहा हो या ग़लत मक़सद के लिए। इन अख़लाक़ियात में इस सवाल का कोई दख़ल नहीं है कि आदमी ख़ुदा, वह्य, रसूल और आख़िरत को मानता है या नहीं, नफ़्स की पाकीज़गी, अच्छी नीयत और नेक आमाल से आरास्ता है या नहीं; अच्छे मक़सद के लिए काम कर रहा है या बुरे मक़सद के लिए। इससे अलग हटकर किसी में ईमान हो या न हो, उसकी ज़िन्दगी पाक हो या नापाक और उसकी कोशिशों का मक़सद अच्छा हो या बुरा—जो शख़्स और जो गिरोह भी अपने अंदर वे ख़ूबियाँ रखता होगा जो

दुनिया में कामयाबी के लिए ज़रूरी हैं, वह ज़रूर कामयाब होगा और उन लोगों से बाज़ी ले जाएगा जो इन ख़ूबियों के लिहाज़ से उसके मुक़ाबले में कमज़ोर होंगे।

मोमिन हो या काफ़िर, नेक हो या बद, इस्लाह करनेवाला हो या फ़साद फैलानेवाला, ग़रज़ जो भी हो वह अगर कारगर इनसान हो सकता है तो सिर्फ़ इसी सूरत में जबकि उसके अंदर इरादे की ताक़त और फ़ैसले की क़ुव्वत हो, अज़्म और हौसला हो, सब्र व सिबात (दृढ़ता) और मुस्तक़िल मिज़ाजी हो, तहम्मुल और बर्दाश्त हो, हिम्मत और बहादुरी हो, मुस्तैदी और जफ़ाकशी हो और सख़्तियाँ बर्दाश्त करने की ताक़त हो, अपने मक़सद का इश्क़ और उसके लिए हर चीज़ क़ुरबान कर देने का बलबूता हो, मुस्तैदी और एहतियात और समझ-बूझ व दूरअंदेशी हो, ज़ाबिते के साथ काम करने का सलीक़ा हो, फ़र्ज़ की पहचान और ज़िम्मेदारी का एहसास हो, हालात को समझने और उनके मुताबिक़ अपने आपको ढालने और मुनासिब तरीक़ा इख़्तियार करने की क़ाबिलियत हो; अपने जज़्बात, ख़्वाहिशात और जोश पर क़ाबू हो, और दूसरे इनसानों को मोहने, उनके दिलों में जगह पैदा करने और उनसे काम लेने की सलाहियत हो।

फिर ज़रूरी है कि उसके अंदर वह शरीफ़ों वाली ख़ूबियाँ भी कुछ न कुछ मौजूद हों जो हक़ीक़त में आदमियत का जौहर हैं और जिनकी बदौलत आदमी का वक़ार व एतिबार दुनिया में क़ायम होता है। मसलन ख़ुद्दारी, फ़य्याज़ी, रहम, हमदर्दी, इनसाफ़, क़ल्ब व नज़र की कुशादगी, सच्चाई, अमानत, ईमानदारी, वादे का लिहाज़, इनसानियत, एतिदाल (संतुलन), शाइस्तगी (शालीनता), पाकी और दिल और दिमाग़ का कन्ट्रोल।

ये ख़ूबियाँ अगर किसी क़ौम या गिरोह (वर्ग) के ज़्यादातर लोगों में मौजूद हों तो यह समझिए कि उसके पास वह इनसानियत की दौलत मौजूद है जिससे एक ताक़तवर जमाअत वुजूद में आ सकती है। लेकिन यह दौलत जमा होकर अमलन एक मज़बूत, पक्का और कारगर इज्तिमाई ताक़त नहीं बन सकती जब तक कि कुछ दूसरी अख़लाक़ी ख़ूबियाँ भी उसकी मदद को न आएँ। मिसाल के तौर पर सभी या ज़्यादातर लोग किसी इज्तिमाई नस्बुलऐन पर एक हों और इस नस्बुलऐन को अपनी ज़ाती ग़रज़ों, बल्कि अपनी जान, माल और औलाद से भी महबूब रखें। उनके अंदर आपस की मुहब्बत और हमदर्दी हो, उन्हें मिल-जुलकर काम करना आता हो। वे अपनी ख़ुदी और नफ़्सानियत को कम से कम इस हद तक क़ुरबान कर सकें जो मुनज़्ज़म (सुसंगठित) कोशिशों के लिए ज़रूरी है, वे

सही और ग़लत रहनुमा (मार्गदर्शक) में फ़र्क़ कर सकते हों और सही लोगों ही को अपना रहनुमा बनाएँ। उनके रहनुमाओं में इख़लास (निष्ठा) और काम को सही तरीक़े से करने की ख़ूबी और रहनुमाई की दूसरी ज़रूरी ख़ूबियाँ मौजूद हों। ख़ुद क़ौम या जमाअत भी अपने रहनुमाओं की इताअत करना जानती हो, उनपर एतिमाद रखती हो; और अपने तमाम ज़ेहनी, जिस्मानी और माद्दी ज़राए (भौतिक साधन) उन्हें सौंपने को तैयार हो। साथ ही, पूरी क़ौम के अंदर ऐसी ज़िंदा और हस्सास आम राय पाई जाती हो जो किसी ऐसी चीज़ को अपने अंदर पनपने न दे जो इज्तिमाई फ़लाह के लिए नुक़सानदेह हो।

ये हैं वे अख़लाक़ियात जिन्हें मैं 'बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात' के लफ़्ज़ से ताबीर करता हूँ। क्योंकि हक़ीक़त में यही अख़लाक़ी ख़ूबियाँ इनसान की अख़लाक़ी ताक़त का असल ज़रिया हैं और इनसान किसी मक़सद के लिए भी दुनिया में कामयाब कोशिश नहीं कर सकता जब तक कि इन ख़ूबियों की ताक़त उसके अंदर मौजूद न हो। इन अख़लाक़ी ख़ूबियों की मिसाल ऐसी है जैसे—लोहा, कि वह अपने अंदर मज़बूती रखता है, और कोई कारगर हथियार बन सकता है तो इसी से बन सकता है। चाहे वह ग़लत मक़सद के लिए इस्तेमाल हो या सही मक़सद के लिए। आपके सामने सही मक़सद हो तब भी आपके लिए फ़ायदेमंद वही हथियार हो सकता है जो लोहे से बना हो, न कि फुसफुसी लकड़ी से जो थोड़े-से बोझ और मामूली-सी चोट भी बर्दाश्त न कर सके। यही वह बात है जिसे नबी करीम (सल्ल०) ने इस हदीस में बयान किया है कि 'तुममें जो लोग जाहिलियत में अच्छे थे वही इस्लाम में भी अच्छे हैं" यानी जाहिलियत के दौर में जो लोग अपने अंदर कमाल की ख़ूबी रखते थे वही इस्लामी दौर में काम के आदमी साबित हुए। फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि उनकी क़ाबिलियतें पहले ग़लत राहों में लग रही थीं और इस्लाम ने आकर उन्हें सही राह पर लगा दिया। मगर बहरहाल नाकारा इनसान न जाहिलियत के किसी काम के थे, न इस्लाम के। नबी (सल्ल०) को अरब में जो ज़बरदस्त कामयाबी हासिल हुई और जिसका असर कुछ ही सालों में सिंध नदी से लेकर अटलांटिक महासागर के किनारे तक दुनिया के एक बड़े हिस्से ने महसूस कर लिए, इसकी वजह यही तो थी कि आपको अरब में बेहतरीन इनसानी क़ाबिलियतें मिल गई थीं, जिनके अन्दर करेक्टर की ज़बरदस्त ताक़त मौजूद थी। अगर ख़ुदा न ख़्वास्ता आपको बोदे, कम हिम्मत, कमज़ोर, बिना इरादावाले और बे-भरोसा वाले लोगों की भीड़ मिल जाती तो क्या फिर भी वे नतीजे निकल सकते थे?

इस्लामी अख़लाक़ियात (नैतिक गुण)

अब अख़लाक़ियात के दूसरे हिस्से को लीजिए जिसे मैं 'इस्लामी अख़लाक़ियात' के लफ़्ज़ से ताबीर कर रहा हूँ। यह बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात से अलग कोई चीज़ नहीं है बल्कि उसी की सही और मुकम्मल सूरत है।

इस्लाम का पहला काम यह है कि वह बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात को एक सही मरकज़ और धुरी मुहय्या कर देता है, जिससे जुड़कर वह पूरी तरह ख़ैर बन जाते हैं। शुरू में यह अख़लाक़ियात एक ऐसी क़ुव्वत है जो भली भी हो सकती है और बुरी भी। जिस तरह तलवार का हाल है कि वह बस एक काट है जो डाकू के हाथ में जाकर ज़ुल्म का हथियार बन जाती है और अल्लाह की राह के मुजाहिद के हाथ में जाकर ख़ैर का ज़रिया भी। इसी तरह अख़लाक़ियात की ताक़त भी किसी शख़्स या गिरोह में होना बजाय ख़ुद ख़ैर नहीं है, बल्कि यह ख़ैर तब हो सकती है जब यह क़ुव्वत सही राह में लगाई जाए।

इसे सही राह पर लगाने का काम इस्लाम करता है। इस्लाम की तौहीद की दावत का लाज़िमी तक़ाज़ा यह है कि दुनिया की ज़िन्दगी में इनसान की तमाम कोशिशों, मेहनतों और दौड़-धूप का एकमात्र मक़सद अल्लाह तआला की ख़ुशी हासिल करना हो।

"ऐ ख़ुदा! हमारी सारी दौड़-धूप तेरी ही ख़ुशी के लिए है।"

(क़ुरआन)

फ़िक्र और अमल का पूरा दायरा उन हदों से महदूद हो जाए जो अल्लाह ने उसके लिए मुक़र्रर कर दी हैं।

"ऐ ख़ुदा! हम तेरी ही बंदग़ी करते हैं और तेरे ही लिए नमाज़ और सजदे करते हैं।" (क़ुरआन)

इस बुनियादी इस्लाह का नतीजा यह है कि वे सभी बुनियादी अख़लाक़ियात जिनका मैंने अभी आपसे ज़िक्र किया है, सही राह पर लग जाते हैं। और वह क़ुव्वत जो इन अख़लाक़ियात की मौजूदगी से पैदा होती है, बजाय इसके कि नफ़्स, ख़ानदान, क़ौम या मुल्क की सरबुलंदी पर हर मुमकिन तरीक़े से लगाई जाए; ख़ालिस हक़ की सरबुलंदी पर सिर्फ़ जाइज़ तरीक़ों से लगने लगती है। यही चीज़ उसे एक अकेले क़ुव्वत के मर्तबे से उठाकर एक भलाई और दुनिया के लिए एक रहमत बना देती है।

दूसरा काम जो अख़लाक़ के सिलसिले में इस्लाम करता है वह यह है कि वह बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात को मुस्तहकम (सुदृढ़) भी करता है और उनके लागू होने को इन्तिहाई हदों तक वसीअ भी कर देता है। मिसाल के तौर पर सब्र को लीजिए। बड़े से बड़े सब्र करनेवाले आदमी में भी जो सब्र दुनियावी मक़सदों के लिए हो और जो शिर्क या माद्दापरस्ती (भौतिकवादिता) की फ़िक्री जड़ों से परवरिश पा रहा हो, उसके बर्दाश्त और उसके सिबात (दृढ़ता) व क़रार की बस एक हद होती है जिसके बाद वह घबरा उठता है। लेकिन जिस सब्र को तौहीद की जड़ से ख़ूराक मिले और जो दुनिया के लिए नहीं बल्कि सारे जहान के रब अल्लाह के लिए हो वह तहम्मुल (धीरज) व बर्दाश्त और पामर्दी (धैर्यपूर्ण दृढ़ता) का एक अथाह ख़ज़ाना होता है, जिसे दुनिया की तमाम मुमकिन मुश्किलें मिलकर भी लूट नहीं सकतीं। फिर ग़ैर-मुस्लिम का सब्र निहायत महदूद होता है। उसका हाल यह होता है कि अभी तो गोलों और गोलियों की बौछार में बहुत ही बहादुरी के साथ डटा हुआ था और अभी जो एय्याशी का मौक़ा सामने आया तो वह घटिया ख़वाहिशों की एक मामूली ज़ोर के मुक़ाबले में भी न ठहर सका। लेकिन इस्लाम सब्र को इनसान की पूरी ज़िन्दगी में फैला देता है और उसे सिर्फ़ कुछ ख़ास तरह के ख़तरों, मुसीबतों और मुश्किलों ही के मुक़ाबले में नहीं, बल्कि हर उस लालच, ख़ौफ़, अंदेशे और हर उस ख़्वाहिश के मुक़ाबले में ठहराव की एक ऐसी ज़बरदस्त ताक़त बना देता है जो आदमी को सच्चे रास्ते से हटाने की कोशिश करे।

हक़ीक़त में इस्लाम मोमिन की पूरी ज़िन्दगी को एक सब्रवाली ज़िन्दगी बनाता है, जिसका बुनियादी उसूल ही यह है कि उम्र भर सही तर्ज़े ख़याल और सही तर्ज़े अमल पर क़ायम रहो, चाहे इसमें कितने ही ख़तरे, नुक़सान और मुश्किलें हों; और इस दुनिया की ज़िन्दगी में इसका कोई मुफ़ीद नतीजा निकलता नज़र न आए। और कभी फ़िक्र और अमल की बुराई न अपनाओ चाहे फ़ायदों और उम्मीदों का कैसा ही ख़ुशनुमा सब्ज़ बाग़ तुम्हारे सामने लहलहा रहा हो। इस आख़िरत के यक़ीनी नतीजों की उम्मीद पर दुनिया की सारी ज़िन्दगी में गुनाह से रुकना और ख़ैर की राह पर जमकर चलना इस्लामी सब्र है। और यह उन शक्लों में भी सामने आता है जो बहुत महदूद पैमाने पर काफ़िरों की ज़िन्दगी में नज़र आती हैं। इसी ख़याल पर दूसरे सभी बुनियादी अख़लाक़ियात का भी आप अंदाज़ा कर सकते हैं जो काफ़िरों की ज़िन्दगी में सही फ़िक्री बुनियाद न होने की वजह से कमज़ोर और महदूद होते हैं और इस्लाम इन सबको एक सही

बुनियाद देकर मज़बूत और पक्का भी करता है और बड़ा भी कर देता है।

इस्लाम का तीसरा अहम काम यह है कि वह बुनियादी अख़लाक़ियात की शुरू की मंज़िल पर ऊँचे अख़लाक़ की एक बड़ी ही शानदार बुलंद मंज़िल तैयार करता है जिसके ज़रिए इनसान अपने मर्तबे की बड़ी बुलंदी पर पहुँच जाता है। वह उसके नफ़्स को ख़ुदग़र्ज़ी, नफ़्सानियत, ज़ुल्म, बेहयाई, गंदगी और आवारगी से पाक कर देता है। उसमें ख़ुदातरसी, तक़्वा, परहेज़गारी और हक़परस्ती पैदा करता है। उसके अंदर अख़लाक़ी ज़िम्मेदारियों का शुऊर और एहसास उभारता है, उसे नफ़्स को क़ाबू में करने का आदी बनाता है। उसे सभी मख़लूक़ों के लिए करम करनेवाला, खुला दिल, रहम करनेवाला, हमदर्द, ईमानदार, बेग़रज़, ख़ैरख़्वाह, बिना किसी तरफ़दारी के इनसाफ़ करनेवाला और हर हाल में सच्चा और सच्चे रास्ते पर चलनेवाला बना देता है। और उसमें एक ऐसा बुलंद किरदार पैदा करता है जिससे हमेशा सिर्फ़ भलाई की ही उम्मीद हो और बुराई का कोई अंदेशा न हो।

फिर इस्लाम आदमी को सिर्फ़ नेक ही बनाने पर बस नहीं करता, बल्कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के कहने के मुताबिक़ "भलाई का दरवाज़ा खोलने-वाला और बुराई का दरवाज़ा बंद करनेवाला" बनाता है। यानी वह लाज़िमी रूप में यह मिशन उसे सौंपता है कि दुनिया में भलाई फैलाए और बुराई को रोके। इस सीरत व अख़लाक़ में फ़ितरतन वह हुस्न, कशिश, वह ग़ज़ब की क़ाबू में करने की कुव्वत है कि अगर कोई मुनज़्ज़म जमाअत इस सीरत को अपनाए और अमलन अपने उस मिशन के लिए काम भी करे जो इस्लाम ने उसे सौंपा है, तो उसका मुक़ाबला करना दुनिया की किसी कुव्वत के बस की बात नहीं है।

'अल्लाह की सुन्नत इमामत का दरवाज़ा' का ख़ुलासा

अब मैं कुछ लफ़्ज़ों में अल्लाह की उस सुन्नत (तरीक़ा) को बयान किए देता हूँ जो इमामत (नेतृत्व) के बारे में दुनिया की इबतिदा से जारी है और जब तक इनसान अपनी मौजूदा फ़ितरत पर ज़िन्दा है उस वक़्त तक बराबर जारी रहेगी, और वह यह है :

अगर दुनिया में कोई मुनज़्ज़म इनसानी गिरोह ऐसा मौजूद न हो जिसमें इस्लामी अख़लाक़ और बुनियादी इनसानी अख़लाक़ दोनों पाए जाते हों और फिर माद्दी असबाब और वसाइल (भौतिक संसाधन) भी इस्तेमाल करे तो दुनिया की इमामत और क़ियादत ज़रूरी रूप से किसी ऐसे गिरोह के क़ब्ज़े में दे दी

जाती है जो बुनियादी इनसानी अख़लाक़ और माद्दी असबाब व वसाइल के एतिबार से दूसरों के मुक़ाबले में ज़्यादा बढ़ा हुआ हो। क्योंकि अल्लाह तआला बहरहाल अपनी दुनिया का इन्तिज़ाम चाहता है और यह इन्तिज़ाम उसी गिरोह के सुपुर्द किया जाता है जो मौजूदा गिरोहों में ज़्यादा योग्यता रखता है।

लेकिन अगर कोई मुनज़्ज़म गिरोह ऐसा मौजूद हो जो इस्लामी अख़लाक़ और बुनियादी इनसानी अख़लाक़ दोनों में बाक़ी मौजूद इनसानी दुनिया पर फ़ज़ीलत रखता हो, और वह माद्दी असबाब व वसाइल के इस्तेमाल में भी कोताही न करे, तो यह किसी तरह मुमकिन नहीं है कि उसके मुक़ाबले में कोई दूसरा गिरोह दुनिया की इमामत व क़यादत पर क़ाबिज़ रह सके। ऐसा होना फ़ितरत के ख़िलाफ़ है, अल्लाह की उस सुन्नत के ख़िलाफ़ है जो इनसानों के मामले में उसने मुक़र्रर कर रखी है। उन वादों के ख़िलाफ़ है जो अल्लाह ने अपनी किताब में नेक मोमिनों से किए हैं। और अल्लाह को हरगिज़ फ़साद पसंद नहीं है कि उसकी दुनिया में एक नेक गिरोह दुनिया के इन्तिज़ाम को ठीक-ठीक उसकी मरज़ी के मुताबिक़ दुरुस्त रखनेवाला मौजूद हो और फिर भी वह फ़साद फैलानेवालों ही के हाथ में इस निज़ाम की बागडोर रहने दे।

मगर यह ख़याल रहे कि यह नतीजा सिर्फ़ उसी वक़्त सामने आ सकता है जबकि एक स्वालेह (नेक) जमाअत जिनमें ये ख़ूबियाँ पाई जाती हों, मौजूद हो। किसी एक सालेह आदमी या बिखरे हुए बहुत-से सालेह लोगों के मौजूद होने से 'ज़मीन की ख़िलाफ़त' का निज़ाम तबदील नहीं हो सकता चाहे वे लोग अपनी जगह कैसे ही बड़ी वलीयुल्लाह बल्कि पैग़म्बर ही क्यों न हों। अल्लाह ने 'ज़मीन की ख़िलाफ़त' के बारे में जितने वादे भी किए हैं बिखरे हुए लोगों से नहीं बल्कि एक ऐसी जमाअत से किए हैं जो दुनिया में अपने आपको अमलन बेहतरीन उम्मत साबित कर दे।

साथ ही, यह भी याद रहे कि ऐसे एक गिरोह के सिर्फ़ वुजूद में आ जाने ही से निज़ाम में तबदीली नहीं आ जाएगी कि इधर वे बने और उधर अचानक आसमान से कुछ फ़रिश्ते उतरें और नाफ़रमानों और गुनाहगारों को गद्दी से हटाकर उन्हें बैठा दें, बल्कि उस जमाअत को कुफ़्र व फ़िस्क़ की ताक़तों से ज़िन्दगी के हर मैदान में, हर-हर क़दम पर कशमकश और मुजाहिदा करना होगा, और इक़ामते हक़ की राह में हर क़िस्म की कुरबानियाँ देकर अपनी हक़ से मुहब्बत और अपनी योग्यता का सुबूत देना पड़ेगा। यह ऐसी शर्त है जिससे अंबिया तक बचे नहीं रहे, बजाय इसके कि आज कोई इससे बचने की उम्मीद करे।

बुनियादी अख़लाक़ और इस्लामी अख़लाक़ की ताक़त का फ़र्क़

माद्दी ताक़त और अख़लाक़ी ताक़त के तनासुब (अनुपात) के बारे में क़ुरआन और इतिहास के गहरे मुताअला से जो अल्लाह की सुन्नत मैं समझा हूँ वह यह है कि जहाँ अख़लाक़ी ताक़त का पूरा दारोमदार सिर्फ़ बुनियादी इनसानी अख़लाक़ पर हो वहाँ माद्दी वसाइल (भौतिक संसाधन) बड़ी अहमियत रखते हैं, हालाँकि इस बात की भी उम्मीद है कि अगर एक गिरोह के पास माद्दी वसाइल की ताक़त बहुत ज़्यादा हो तो वह थोड़ी अख़लाक़ी ताक़त से भी दुनिया पर छा जाता है और दूसरे गिरोह अख़लाक़ी ताक़त में बढ़े होने के बावजूद सिर्फ़ वसाइल की कमी के कारण दबे रहते हैं। लेकिन जहाँ अख़लाक़ी ताक़त में इस्लामी और बुनियादी दोनों क़िस्म के अख़लाक का पूरा ज़ोर शामिल हो वहाँ माद्दी वसाइल की इन्तिहाई कमी के बावजूद अख़लाक़ को आख़िरकार उन तमाम ताक़तों पर जीत हासिल होकर रहती है जो सिर्फ़ बुनियादी अख़लाक़ और माद्दी वसाइल के बलबूते पर उठती हों।

इस निस्बत को ऐसे समझिए कि बुनियादी अख़लाक़ के साथ अगर सौ दर्जे माद्दी ताक़त की ज़रूरत होती है तो इस्लामी और बुनियादी अख़लाक़ की मिली हुई ताक़त के साथ सिर्फ़ 25 दर्जे माद्दी ताक़त काफ़ी हो जाती है, बाक़ी 75 फ़ीसदी क़ुव्वत की कमी को महज़ इस्लामी अख़लाक़ का ज़ोर पूरा कर देता है। बल्कि नबी (सल्ल०) के ज़माने का तजुर्बा तो यह बताता है कि इस्लामी अख़लाक़ अगर उस पैमाने का हो जो हुज़ूर (सल्ल०) और आपके सहाबा (रज़ि०) का था तो सिर्फ़ 10 फ़ीसदी माद्दी ताक़त से भी काम चल जाता है। यही हक़ीक़त है जिसकी तरफ़ इस आयत में इशारा किया गया है—

> "अगर तुममें से बीस सब्र करनेवाले आदमी हों तो वे दो सौ पर ग़ालिब आ जाएँगे।" (क़ुरआन, 8 : 65)

यह आख़िरी बात जो मैंने अर्ज़ की है, उसे सिर्फ़ ख़ुशअक़ीदगी का मामला न समझिए और न यह गुमान कीजिए कि मैं किसी चमत्कार या करामत का आपसे ज़िक्र कर रहा हूँ। नहीं! यह बिलकुल एक फ़ितरी हक़ीक़त है जो इस दुनिया में वजह और नतीजे के ज़ाब्ते के तहत पेश आती है और हर दौर में रूनुमा हो सकती है अगर उसकी वजह मौजूद हो। मैं मुनासिब समझता हूँ कि आगे बढ़ने से पहले कुछ लफ़्ज़ों में इसकी तशरीह कर दूँ कि इस्लामी अख़लाक़

से (जिनमें बुनियादी अख़लाक़ ख़ुद-बख़ुद शामिल हैं) माद्दी वसाइल की 75 फ़ीसद बल्कि 90 फ़ीसद तक कमी किस तरह पूरी हो जाती है।

इस चीज़ को समझने के लिए आप ज़रा ख़ुद अपने ज़माने ही की देश-विदेश की सूरतेहाल पर निगाह डालिए। अभी आपके सामने वह सबसे बड़ा फ़साद जो आज से साढ़े पाँच साल पहले शुरू हुआ था[1], जर्मनी की हार पर ख़त्म हुआ और जापान की हार भी क़रीब नज़र आ रही है। जहाँ तक बुनियादी अख़लाक़ का ताल्लुक़ है उनके एतिबार से इस फ़साद के दोनों ग्रुप बराबर के भागीदार हैं, बल्कि कुछ मामलों में जर्मनी और जापान ने अपने दुश्मनों के मुक़ाबले में ज़्यादा ज़बरदस्त अख़लाक़ी ताक़त का सुबूत दिया है। जहाँ तक भौतिक विज्ञान (Physics) और उनके अमलन इस्तेमाल का ताल्लुक़ है इसमें भी दोनों बराबर हैं, बल्कि इस मामले में कम से कम जर्मनी सबसे आगे है, इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। मगर सिर्फ़ एक चीज़ है जिसमें एक फ़रीक़ (पक्ष) दूसरे फ़रीक़ से बहुत ज़्यादा बढ़ा हुआ है और वह है माद्दी असबाब की बराबरी। उसके पास आदमी अपने दोनों दुश्मनों (जर्मनी और जापान) से कई गुना ज़्यादा हैं। उसको माद्दी वसाइल उनके मुक़ाबले में कई गुना ज़्यादा हासिल हैं। उसकी भौगोलिक स्थिति इनसे बेहतर है, और उसके लिए ऐतिहासिक कारणों ने उनके मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा बेहतर हालात पैदा कर दिए हैं। इसी वजह से उसे जीत हासिल हुई और इस वजह से आज किसी ऐसी क़ौम के लिए भी जिसकी तादाद कम हो और जिसके पास माद्दी वसाइल कम हों, इस बात की उम्मीद नज़र नहीं आती कि वह बड़ी तादाद और वसाइल वाली क़ौमों के मुक़ाबले में सिर उठा सके, चाहे वह बुनियादी अख़लाक़ियात में और भौतिक विज्ञान के इस्तेमाल में उनसे कुछ बढ़ ही क्यों न जाए। इसलिए कि बुनियादी अख़लाक़ और भौतिक विज्ञान के बल पर उठनेवाली क़ौम का मामला दो बातों से ख़ाली नहीं हो सकता—या तो वह अपनी क़ौमियत (राष्ट्रवाद) की परस्तार होगी और दुनिया को अपने मातहत करना चाहेगी, या फिर वह कुछ आलमी उसूलों की हिमायती बनकर उठेगी और दूसरी क़ौमों को उनकी तरफ़ दावत देगी।

पहली सूरत में तो उसके लिए कामयाबी की कोई शक्ल इसके सिवा है ही नहीं कि वह माद्दी ताक़त और वसाइल (संसाधनों) में दूसरों से बेहतर हो,

---

1. इशारा है दूसरे विश्वयुद्ध की ओर जो इस तक़रीर के वक़्त जारी था।

क्योंकि वे तमाम क़ौमें जिनपर उसके हुकूमत हासिल करने के लालच की ज़द पड़ रही होगी, इन्तिहाई ग़ुस्से व नफ़रत के साथ उसका मुक़ाबला करेंगी और उसका रास्ता रोकने में अपनी हद तक कोई कसर न छोड़ेंगी। रही दूसरी सूरत तो इसमें बेशक इसकी उम्मीद तो ज़रूर है कि क़ौमों के दिल व दिमाग़ ख़ुद बख़ुद उसकी उसूली दावत से उसके मातहत होते चले जाएँगे और उसे रुकावटों के रास्ते से हटाने में बहुत थोड़ी क़ुव्वत इस्तेमाल करनी पड़ेगी। लेकिन यह याद रखना चाहिए कि दिल सिर्फ़ कुछ ख़ुशफ़हमी वाले उसूलों ही से जीते नहीं जा सकते, बल्कि उन्हें अपने क़ाबू में करने के लिए वह हक़ीक़ी ख़ैरख़्वाही, नेकनीयती, ईमानदारी, बेग़र्ज़ी, फ़राख़दिली, फ़य्याज़ी, हमदर्दी, शराफ़त व इनसाफ़ की ज़रूरत है जो जंग और सुलह, हार और जीत, दोस्ती और दुश्मनी तमाम हालात की कड़ी आज़माइशों में खरी और बेलौस साबित हो। और यह चीज़ ऊँचे अख़लाक़ की उस बुलंद मंज़िल से ताल्लुक़ रखती है जिसका मक़ाम बुनियादी अख़लाक़ों से बहुत ऊँचा है।

यही वजह है कि इस अकेले बुनियादी अख़लाक़ियात और माद्दी ताक़त के बल पर उठनेवाले चाहे खुले क़ौमपरस्त हों या छिपे क़ौमपरस्ती के साथ कुछ आलमगीर उसूलों की दावत व हिमायत का ढोंग रचाएँ, आख़िरकार उनकी सारी जिद्दोजुहद और कशमकश ख़ालिस किसी शख़्स या तबक़ा या क़ौम की ख़ुदग़र्ज़ी ही पर आ ठहरती है। जैसा कि आज आप अमरीका, ब्रिटेन और रूस की दूसरे मुल्क़ों से सियासी ताल्लुक़ात में साफ़ देख सकते हैं। ऐसी कशमकश में यह एक बिलकुल फ़ितरी बात है कि हर क़ौम दूसरी क़ौम के मुक़ाबले में एक मज़बूत चट्टान बनकर खड़ी हो जाए और अपनी पूरी अख़लाक़ी और माद्दी ताक़त उसके मुक़ाबले में ख़र्च कर दे और अपनी सीमाओं में उसे हरगिज़ राह देने के लिए तैयार न हो, जब तक कि मुख़ालिफ़ की बढ़ी हुई माद्दी क़ुव्वत उसे पीसकर न रख दे।

अच्छा अब ज़रा सोचिए कि इसी माहौल में एक ऐसा गिरोह (चाहे वह शुरू में एक ही क़ौम में से उठा हो मगर 'क़ौम' की हैसियत से नहीं, बल्कि एक 'जमाअत' की हैसियत से उठा हो) पाया जाता है, जो किसी शख़्स, तबक़ा, क़ौम की ख़ुदग़र्ज़ियों से बिलकुल पाक है, उसकी कोशिशों की कोई ग़रज़ इसके सिवा नहीं है कि वह इनसान की भलाई कुछ उसूलों की पैरवी में देखता है और इस्लामी ज़िन्दगी का निज़ाम उनपर क़ायम करना चाहता है. . . इन उसूलों पर जो सोसायटी वह बनाता है उसमें क़ौम और वतन, तबक़ा और नस्ल का भेदभाव

बिलकुल नहीं है, तमाम इनसान उसमें समान हुक़ूक़ और समान हैसियत से शामिल हो सकते हैं, उसमें रहनुमाई व क़यादत का मंसब हर उस शख़्स या व्यक्तियों के गिरोह को हासिल हो सकता है जो उन उसूलों की पैरवी में सबसे आगे हो चाहे उसकी नस्ल, वतन और क़ौम कुछ ही हो, यहाँ तक कि उसमें इस बात की उम्मीद है कि अगर हारा हुआ ईमान लाकर अपने आपको लायक़ साबित कर दे तो जीतनेवाला अपनी जाँबाज़ियों और दिलेरियों के बदले में मिलनेवाले सारे इनाम उसके क़दमों में लाकर रख दे और उसे इमाम मानकर ख़ुद उनके पीछे खड़ा होना क़बूल कर ले। यह गिरोह जब अपनी दावत लेकर उठता है तो वे लोग जो उसके उसूलों को चलने देना नहीं चाहते उसके रास्ते में रुकावट डालते हैं और इस तरह दोनों पक्षों (फ़रीक़ों) में कशमकश शुरू हो जाती है। मगर इस कशमकश में जितनी शिद्दत बढ़ती जाती है, यह गिरोह अपने मुख़ालिफ़ों के मुक़ाबले में उतने ही ज़्यादा अफ़ज़ल व अशरफ़ अख़लाक़ का सुबूत देता चला जाता है। वह अपने तर्ज़ेअमल से साबित कर देता है कि वाक़ई वह अल्लाह की मख़्लूक़ की भलाई के सिवा कोई दूसरी ग़रज़ सामने नहीं रखता, उसकी दुश्मनी अपने मुख़ालिफ़ों की ज़ात या क़ौमियत से नहीं, बल्कि सिर्फ़ उनकी ज़लालत और गुमराही से है, जिसे वे छोड़ दें तो वह अपने ख़ून के प्यासे दुश्मन को भी सीने से लगा सकता है। उसे लालच उनके माल व दौलत, तिजारत व उनके उद्योग-धंधों से नहीं, बल्कि ख़ुद उन्हीं की अख़लाक़ी व रूहानी फ़लाह का है, जो हासिल हो जाए तो उनकी दौलत उन्हीं को मुबारक हो। वह सख़्त से सख़्त आज़माइश के मौक़ों पर झूठ, फ़रेब और दग़ाबाज़ी से काम नहीं लेता, टेढ़ी चालों का जवाब भी सीधी तदबीरों से देता है। इन्तिक़ाम के जोश में भी ज़ुल्म व ज़्यादती पर आमादा नहीं होता। जंग के सख़्त लम्हों में भी उन उसूलों की पैरवी नहीं छोड़ता जिनकी दावत देने के लिए वह उठा है। सच्चाई वादे का पालन, अच्छे मामलात पर हर हाल में क़ायम रहता है। बेलाग इनसाफ़ करता है और अमानत व दयानत के उस मेयार पर पूरा उतरता है जिसे शुरू में उसने दुनिया के सामने मेयार की हैसियत से पेश किया था।

मुख़ालिफ़ों की ज़ानी (व्यभिचारी), शराबी, जुआरी, संगदिल, बेरहम फ़ौज़ों से जब इस गिरोह के ख़ुदातर्स, पाकबाज़, इबादतगुज़ार, नेकदिल, रहीम व करीम मुजाहिदों का मुक़ाबला पेश आता है तो उनके एक-एक व्यक्ति की इनसानियत उनकी दरिंदगी व हैवानियत पर छाई नज़र आती है। वे इनके पास ज़ख़्मी या क़ैदी बनकर आते हैं तो यहाँ हर तरफ़ नेकी, शराफ़त और पाकीज़गी का माहौल

देखकर उनकी गंदी रूहें भी पाक होने लगती हैं और ये वहाँ गिरफ़्तार होकर जाते हैं तो इनकी इनसानियत का हर जौहर उस तारीक माहौल में और ज़्यादा चमक उठता है। इन्हें किसी इलाक़े में फ़तह हासिल होती है तो क़ब्ज़े में आई उस आबादी को इन्तिक़ाम की जगह माफ़ी, ज़ुल्म की जगह रहम व इनसाफ़, नफ़रत की जगह हमदर्दी, घमंड व दंभ की जगह नरमदिली, गालियों की जगह भलाई की दुआएँ, झूठे प्रोपेगेंडे की जगह हक़ की तबलीग़ का तजुर्बा होता है, और वे यह देखकर हैरत में पड़ जाते हैं कि जीतनेवाला सिपाही न तो उनसे औरतें माँगते हैं, न दबे-छिपे माल टटोलते फिरते हैं। न उनके कारोबारी राज़ों का सुराग़ लगाते हैं, न उनकी आर्थिक ताक़त को कुचलने की फ़िक्र करते हैं, न उनकी क़ौमी इज़्ज़त को ठोकर मारते हैं। बल्कि उन्हें अगर कुछ फ़िक्र है तो यह कि जो देश अब उनके चार्ज में है उसके बाशिंदों में से किसी की इज़्ज़त न लूटी जाए, किसी के माल को नुक़सान न पहुँचे, कोई अपने जाइज़ हक़ों से महरूम न हो, कोई बदअख़लाक़ी उनके बीच परवरिश न पा सके और इज्तिमाई ज़ुल्म व ज़्यादती किसी शक्ल में भी वहाँ बाक़ी न रहे।

इसके ठीक विपरीत जब मुख़ालिफ़ गिरोह किसी इलाक़े में घुस आता है तो वहाँ की सारी आबादी उसकी ज़्यादतियों, बेरहमियों से चीख़ उठती है। अब आप ख़ुद ही अंदाज़ा कर लें कि ऐसी लड़ाई में और क़ौमपरस्ताना लड़ाइयों की तुलना में की गई लड़ाइयों में कितना बड़ा फ़र्क़ पैदा हो जाएगा। ज़ाहिर है कि ऐसे मुक़ाबले में बुलन्द इनसानियत कमतर माद्दी सरो-सामान के बावजूद अपने मुख़ालिफ़ों की आहनपोश हैवानियत को आख़िरकार हरा कर रहेगी। बुलंद अख़लाक़ के हथियार तोपों से ज़्यादा दूरी तक मार करनेवाली साबित होंगे। ठीक जंग की हालत में दुश्मन दोस्तों में तबदील होंगे, जिस्मों से पहले दिल जीते जाएँगे, आबादियाँ लड़े-भिड़े बग़ैर हार जाएँगी और सालेह गिरोह जब एक बार मुट्ठी-भर जमीअत और थोड़े-से सरो-सामान के साथ काम शुरू करेगा तो धीरे-धीरे ख़ुद मुख़ालिफ़ कैम्प ही से उसे जनरल, सिपाही, मुख़तलिफ़ फ़नों के माहिर, खाना-पानी, जंग का सामान सब कुछ हासिल होते चले जाएँगे।

जो कुछ मैं अर्ज़ कर रहा हूँ यह कोई ख़ामख़्याली या अंदाज़ा नहीं है, बल्कि अगर आपके सामने नबी (सल्ल०) और ख़लीफ़ाओं के मुबारक दौर की ऐतिहासिक मिसाल मौजूद हो तो आप पर वाज़ेह हो जाएगा कि वाक़ई इससे पहले यही कुछ हो चुका है और आज भी यही कुछ हो सकता है, बशर्ते कि किसी में यह तजुर्बा करने की हिम्मत हो।

हज़रात! मुझे यह उम्मीद है कि इस तक़रीर से यह हक़ीक़त आपके ज़ेहननशीन हो गई होगी कि ताक़त की अस्ल बुनियाद अख़लाक़ी ताक़त है, और अगर दुनिया में कोई मुनज़्ज़म गिरोह ऐसा मौजूद हो जो बुनियादी अख़लाक़ के साथ इस्लामी अख़लाक़ की ताक़त भी अपने अंदर रखता हो और माद्दी वसाइल से भी काम ले तो यह बात अक़्ली तौर पर मुहाल और फ़ितरी तौर पर नामुमकिन है कि उसकी मौजूदगी में कोई दूसरा गिरोह दुनिया की इमामत व क़यादत पर क़ाबिज़ रह सके।

इसके साथ मुझे उम्मीद है कि आपने यह भी अच्छी तरह समझ लिया होगा कि मुसलमानों की मौजूदा बदहाली की असल वजह क्या है। ज़ाहिर बात है कि जो लोग न माद्दी वसाइल से काम लें, न उनके अंदर बुनियादी अख़लाक़ हो, न इज्तिमाई तौर पर उनके अंदर इस्लामी अख़लाक़ ही पाया जाए—वे किसी तरह इमामत के मंसब पर फ़ायज़ नहीं रह सकते. . . और ख़ुदा की अटल, बेलाग सुन्नत का तक़ाज़ा यही है कि उनपर ऐसे काफ़िरों को तरजीह दी जाए जो इस्लामी अख़लाक़ से ख़ाली सही, मगर कम से कम बुनियादी अख़लाक़ और माद्दी वसाइल के इस्तेमाल में तो उनसे बढ़े हुए हों और अपने आपको उनके मुक़ाबले दुनिया के इन्तिज़ाम के लिए ज़्यादा बेहतर साबित कर रहे हों।

इस मामले में अगर आपको कोई शिकायत हो तो अल्लाह की सुन्नत से नहीं, अपने आपसे होनी चाहिए, और इस शिकायत का नतीजा यह होना चाहिए कि आप अब अपनी इस ख़ामी को दूर करने की फ़िक्र करें जिसने आपको इमाम से मुक़्तदी और आगे-आगे चलनेवाले से पीछे-पीछे चलनेवाला बनाकर छोड़ा है।

इसके बाद ज़रूरी है कि मैं साफ़ और वाज़ेह तरीक़े से आपके सामने इस्लामी अख़लाक़ की बुनियादों को भी पेश कर दूँ, क्योंकि मुझे मालूम है कि इस मामले में आम तौर पर मुसलमानों की सोच बुरी तरह उलझी हुई है और इस उलझन की वजह से बहुत ही कम आदमी यह जानते हैं कि इस्लामी अख़लाक़ियात हक़ीक़त में किस चीज़ का नाम है और इस पहलू से इनसान की तर्बियत व तकमील के लिए क्या चीज़ें किस तर्तीब व तदरीज के साथ उसके अंदर परवरिश की जानी चाहिएँ।

इस्लामी अख़लाक़ियात के चार मर्तबे

जिस चीज़ को हम इस्लामी अख़लाक़ियात कहते हैं वह क़ुरआन व हदीस के मुताबिक़ उसके चार मर्तबे हैं— 1. ईमान, 2. तक़वा, 3. इस्लाम, और 4.

एहसान। ये चारों मर्तबे एक के बाद दूसरे उस फ़ितरी तरतीब से आते हैं कि हर बाद का मर्तबा पहले मर्तबा से पैदा और लाज़िमन उसी पर क़ायम होता है और जब तक नीचेवाली मंज़िल पुख़्ता व मज़बूत न हो जाए दूसरी मंज़िल की तामीर का तसव्वुर तक नहीं किया जा सकता।

इस पूरी इमारत में 'ईमान' को बुनियाद की हैसियत हासिल है। इस बुनियाद पर 'इस्लाम' की मंज़िल तामीर होती है और फिर उसके ऊपर 'तक़वा' और सबसे ऊपर 'एहसान' की मंज़िलें उठती हैं। ईमान न हो तो इस्लाम व तक़वा या एहसान का सिरे से कोई इमकान ही नहीं। ईमान कमज़ोर हो तो इसपर किसी ऊपरी मंज़िल का बोझ नहीं डाला जा सकता, या ऐसी कोई मंज़िल तामीर कर भी दी जाए तो वह बोदी और डगमगानेवाली होगी। ईमान महदूद हो तो जितनी हदों में वह महदूद होगा; इस्लाम, तक़वा और एहसान भी बस उन्हीं हदों तक महदूद रहेंगे। बस जब तक ईमान पूरी तरह सही, पुख़्ता और वसीअ न हो, कोई अक़्लमंद आदमी जो दीन की समझ रखता हो; इस्लाम, तक़वा या एहसान की तामीर का ख़याल नहीं कर सकता। इसी तरह तक़वा से पहले इस्लाम, और एहसान से पहले तक़वा की दुरुस्तगी, पुख़्तगी और कुशादगी ज़रूरी है। लेकिन अकसर हम देखते हैं कि लोग इस फ़ितरी और उसूली तरतीब को नज़रअंदाज़ करके ईमान और इस्लाम की पुख़्तगी के बग़ैर तक़वा और एहसान की बातें शुरू कर देते हैं, और इससे भी ज़्यादा अफ़सोसनाक बात यह है कि आम तौर पर लोगों के ज़ेहनों में ईमान और इस्लाम की एक बहुत ही महदूद सोच बैठी हुई है। इस वजह से वे समझते हैं कि सिर्फ़ रंग-ढंग, लिबास, उठना-बैठना, खाना-पीना ऐसी ही कुछ ज़ाहिरी चीज़ों को एक ख़ास ढर्रे पर ढाल लेने से तक़वा की तकमील हो जाती है। और फिर इबादतों में नवाफ़िल, ज़िक्र, विर्द, वज़ीफ़े और ऐसे कुछ आमाल अपना लेने से एहसान का बुलंद मक़ाम हासिल हो जाता है। हालाँकि कभी-कभी ऐसे तक़वा और एहसान के साथ-साथ लोगों की ज़िन्दगियों में ऐसी खुली अलामतें भी नज़र आती हैं जिनसे पता चलता है कि अभी उनका ईमान ही सिरे से दुरुस्त और पुख़्ता नहीं हुआ है। ये ग़लतियाँ जब तक मौजूद हैं किसी तरह यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि हम इस्लामी अख़लाक़ियात का निसाब पूरा करने में कभी कामयाब हो सकेंगे। लिहाज़ा यह ज़रूरी है कि हमें ईमान, इस्लाम, तक़वा और एहसान के इन चारों मर्तबों का पूरा-पूरा तसव्वुर भी हासिल हो और इसके साथ हम उनकी फ़ितरी तरतीब को भी अच्छी तरह समझ लें।

ईमान

इस सिलसिले में सबसे पहले ईमान को लीजिए जो इस्लामी ज़िन्दगी की बुनियाद है। हर शख़्स जानता है कि तौहीद व रिसालत के इक़रार का नाम ईमान है। अगर कोई शख़्स इसका इक़रार कर ले तो इससे वह क़ानूनी शर्त पूरी हो जाती है जो इस्लाम के दायरे में दाख़िल होने के लिए रखी गई है और वह इसका हक़दार हो जाता है कि उसके साथ मुसलमानों का-सा मामला किया जाए। मगर क्या यही सादा इक़रार जो एक क़ानूनी ज़रूरत को पूरा करने के लिए काफ़ी है, उस ग़रज़ के लिए भी काफ़ी हो सकता है कि इस्लामी ज़िन्दगी की पूरी तीन मंज़िला इमारत सिर्फ़ इस बुनियाद पर क़ायम हो सके? लोग ऐसा ही समझते हैं और इसी लिए जहाँ यह इक़रार मौजूद होता है वहाँ अमली इस्लाम, तक़वा और एहसान की तामीर शुरू कर दी जाती है जो अक्सर हवाई क़िले से ज़्यादा टिकाऊ साबित नहीं होती। लेकिन हक़ीक़त में एक मुकम्मल इस्लामी ज़िन्दगी की तामीर के लिए ज़रूरी है कि ईमान अपनी तफ़्सीलात में पूरी तरह वसीअ और अपनी गहराई में अच्छी तरह मुस्तहकम हो। इस तफ़्सीलात में से जो हिस्सा भी छूट जाएगा, इस्लामी ज़िन्दगी का वही हिस्सा तामीर होने से रह जाएगा और इसकी गहराई में जहाँ भी कमी रह जाएगी, इस्लामी ज़िन्दगी की इमारत उसी जगह पर बोदी साबित होगी।

मिसाल के तौर पर 'ईमान बिल्लाह' (अल्लाह पर ईमान) को देखिए जो दीन की पहली बुनियाद है। आप देखेंगे कि ख़ुदा का इक़रार अपनी सादा सूरत से गुज़रकर जब तफ़्सीलात में पहुँचता है तो उसकी बेशुमार सूरतें बन जाती हैं। कहीं वह सिर्फ़ इस हद पर ख़त्म हो जाता है कि बेशक ख़ुदा मौजूद है और वह दुनिया का ख़ालिक़ है और अपनी ज़ात में अकेला है। कहीं इसकी इनतिहाई वुसअत बस इतनी होती है कि ख़ुदा हमारा माबूद है और हमें उसकी परस्तिश करनी चाहिए। कहीं ख़ुदा की सिफ़ात और उसके हुक़ूक़ व इख़्तियारात का तसव्वुर कुछ ज़्यादा वसीअ होकर भी इससे आगे नहीं बढ़ता कि आलिमुल ग़ैब (ग़ैब का इल्म रखनेवाला) समीअ व बसीर (सुनने और देखनेवाला), समीउद-दावात (दुआओं को सुननेवाला) क़ाज़ीउल् हाजात (ज़रूरतें पूरी करनेवाला) और 'परस्तिश' की तमाम छोटी-छोटी चीज़ों का मुस्तहिक़ होने में ख़ुदा का कोई शरीक नहीं है, और यह कि 'मज़हबी मामलात' में आख़िरी सनद ख़ुदा ही की किताब है।

ज़ाहिर है कि इन अलग-अलग सोच से एक ही तर्ज़ की ज़िन्दगी नहीं बन सकती, बल्कि जो तसव्वुर जितना महदूद है, अमली ज़िन्दगी और अख़लाक़ में भी लाज़िमन इस्लामी रंग उतना ही महदूद होगा यहाँ तक कि जहाँ आम मज़हबी सोच के मुताबिक़ ईमानबिल्लाह अपनी इनतिहाई वुसअत पर पहुँच जाएगा वहाँ भी इस्लामी ज़िन्दगी इससे आगे नहीं बढ़ सकेगी कि ख़ुदा के बाग़ियों की वफ़ादारी और ख़ुदा की वफ़ादारी एक साथ निभा ली जाए, या निज़ामे कुफ़्र और निज़ामे इस्लाम को मिलाकर एक मुरक्कब (मिश्रण) बना लिया जाए।

इसी तरह ईमान बिल्लाह की गहराई का पैमाना भी अलग-अलग है। कोई ख़ुदा का इक़रार करने के बावजूद अपनी किसी मामूली से मामूली चीज़ को भी ख़ुदा पर क़ुरबान करने के लिए आमादा नहीं होता। कोई कुछ चीज़ों से ख़ुदा को ज़्यादा महबूब रखता है, मगर कुछ चीज़ें उसे ख़ुदा से ज़्यादा महबूब होती हैं। कोई अपनी जान व माल तक ख़ुदा पर क़ुरबान कर देता है, मगर अपने नफ़्स के रुझान, नज़रियों और ख़यालों की क़ुरबानी या अपनी शोहरत की क़ुरबानी उसे गवारा नहीं होती।

ठीक उसी अनुपात से इस्लामी ज़िन्दगी की पुख़्तगी और नापुख़्तगी भी मुतैयन होती है और इनसान का इस्लामी अख़लाक़ ठीक उसी मक़ाम पर दग़ा दे जाता है जहाँ उसके नीचे ईमान की बुनियाद कमज़ोर रह जाती है। एक मुकम्मल इस्लामी ज़िन्दगी की इमारत अगर उठ सकती है तो सिर्फ़ उसी तौहीद के इक़रार पर उठ सकती है जो इनसान की पूरी इनफ़िरादी व इज्तिमाई ज़िन्दगी पर फैली हो जिसके मुताबिक़ इनसान अपने आपको और अपनी हर चीज़ को ख़ुदा की मिलकियत समझे, उसे अपना और तमाम दुनिया का एक ही जाइज़ मालिक, माबूद, इताअत का हक़दार हाकिम, हुक्म देनेवाला और दया करनेवाला तस्लीम करे। उसी को हिदायत का सरचश्मा माने और पूरे शुऊर के साथ इस हक़ीक़त पर मुतमइन हो जाए कि ख़ुदा की इताअत से बचना, या उसकी हिदायत से बेनियाज़ी, या उसकी ज़ात, सिफ़ात, हुक़ूक़ व इख़्तियारात में ग़ैर की शिर्कत—जिस पहलू और जिस रंग में भी हो—सरासर गुमराही है। फिर इस इमारत में मज़बूती अगर पैदा हो सकती है तो सिर्फ़ उस वक़्त हो सकती है कि आदमी पूरे शुऊर और पूरे इरादे के साथ यह फ़ैसला कर ले कि वह और उसका सब कुछ अल्लाह का है और अल्लाह ही के लिए है। अपनी पसंद और नापसंद के मेयार को ख़त्म करके अल्लाह की पसंद और नापसंद के मुताबिक़ कर दे। अपनी मर्ज़ी को मिटाकर अपने नज़रियात, ख़यालात, जज़्बात और अंदाज़े फ़िक्र (विचार-

शैली) को उस इल्म के मुताबिक़ ढाल ले जो ख़ुदा ने अपनी किताब में दिया है। अपनी उन तमाम वफ़ादारियों को दरिया में डाल दे जो ख़ुदा की वफ़ादारियों के मुताबिक़ नहीं, बल्कि उसके बराबर बन सकती हों। अपने दिल में सबसे बुलंद मक़ाम पर ख़ुदा की मुहब्बत को बिठाए और हर उस बुत को ढूँढ़-ढूँढ़कर दिल के अंदर से निकाल फेंके जो ख़ुदा के मुक़ाबले में महबूब होने का मुतालबा करता हो। अपनी मुहब्बत और नफ़रत, दोस्ती और दुश्मनी, पसंद और नापसंद, सुलह और जंग हर चीज़ को ख़ुदा की मरज़ी में इस तरह गुम कर दे कि उसका नफ़्स वही चाहने लगे जो ख़ुदा चाहता है और उससे भागने लगे जो ख़ुदा को नापसंद है। यह है ईमान बिल्लाह (अल्लाह पर ईमान) का हक़ीक़ी मर्तबा—और आप ख़ुद समझ सकते हैं कि जहाँ ईमान ही इन हैसियतों से अपनी कुशादगी और फैलाव, पुख़्ती व मज़बूती में कमज़ोर हो वहाँ तक़वा या एहसान का क्या इमकान हो सकता है? क्या इस नुक़्स की कसर दाढ़ियों की लम्बाई, लिबास की काट-छाँ या तस्बीह घुमाने व तहज्जुद पढ़ने से पूरी की जा सकती है?

इसी पर दूसरे ईमानियात के बारे में भी सोच लीजिए। नुबूवत पर ईमान उस वक़्त तक मुकम्मल नहीं होता जब तक इनसान का नफ़्स ज़िन्दगी के सारे मामलात में नबी (सल्ल०) को अपना रहनुमा न मान ले, और इस रहनुमाई के ख़िलाफ़ या इससे आज़ाद जितनी रहनुमाइयाँ हों उन्हें रद्द न कर दे। क़ुरआन पर ईमान उस वक़्त तक नाक़िस ही रहता है जब तक नफ़्स में अल्लाह की किताब (क़ुरआन) के बताए हुए ज़िन्दगी के उसूलों के सिवा किसी दूसरी चीज़ के तसल्लुत की पैठ पर रज़ामंदी की परछाई (लेशमात्र अंश) भी बाक़ी हो, या 'मा अन-ज़-लल्लाह' (अल्लाह के नाज़िल किए हुए की पैरवी) को अपनी सारी दुनिया की ज़िन्दगी का क़ानून देखने के लिए क़ल्ब व रूह की बेचैनी में कुछ भी कसर हो।

इसी तरह आख़िरत पर ईमान भी मुकम्मल नहीं हो सकता जब तक नफ़्स पूरी तरह आख़िरत को दुनिया पर तरजीह देने और आख़िरत के मुक़ाबले में दुनिया को ठुकरा देने पर आमादा न हो जाए, और आख़िरत की जवाबदेही का ख़याल उसे ज़िन्दगी की राह पर चलते हुए क़दम-क़दम पर खटकने न लगे।

ये बुनियादें ही जहाँ पूरी तरह मौजूद न हों आख़िर वहाँ इस्लामी ज़िन्दगी की आलीशान इमारत किस आधार पर तामीर होगी। जब लोगों ने इन बुनियादों की कुशादगी, तकमील और पुख़्तगी के बग़ैर ही इस्लामी अख़लाक़ की तामीर को मुमकिन समझा तब ही तो नौबत यहाँ तक पहुँची कि अल्लाह की किताब के

ख़िलाफ़ फ़ैसला करनेवाले जज, ग़ैर-शरई क़ानूनों की बुनियाद पर मुक़द्दमे लड़नेवाले वकील, निज़ामे कुफ़्र के मातहत ज़िन्दगी के मामलात का इन्तिज़ाम करनेवाले कारकुन, उसूले तहज़ीब और सियासत के काफ़िराना उसूल पर ज़िन्दगी की बुनियाद रखने और उसका गठन करने के लिए लड़नेवाले लीडर और उनके माननेवाले, ग़रज़ सबके लिए तक़वा व एहसान के ऊँचे मर्तबों का दरवाज़ा खुल गया, बशर्ते कि वे अपनी ज़िन्दगी के ज़ाहिरी अंदाज़ और तौर-तरीक़े को एक ख़ास नक़्शे पर ढाल लें और कुछ नवाफ़िल व अज़कार की आदत डाल लें।

इस्लाम

ईमान की ये बुनियादें जिनका अभी मैंने आपसे ज़िक्र किया है, जब मुकम्मल और गहरी हो जाती हैं तब उनपर इस्लाम की मंज़िल तामीर होती है। इस्लाम दरअस्ल ईमान के अमली तौर पर ज़ाहिर होने का दूसरा नाम है। ईमान और इस्लाम का आपसी ताल्लुक़ वैसा ही है जैसा बीज और पेड़ का ताल्लुक़ होता है। बीज में जो कुछ मौजूद होता है वही पेड़ की शक्ल में ज़ाहिर हो जाता है। यहाँ तक कि पेड़ का जायज़ा लेकर आसानी से यह मालूम किया जा सकता है कि बीज में क्या था और क्या नहीं था। आप न यह तसव्वुर कर सकते हैं कि बीज न हो और पेड़ मौजूद हो, और न यही मुमकिन है कि ज़मीन बंजर भी न हो और बीज उसमें मौजूद भी हो फिर भी पेड़ पैदा न हो। ऐसा ही मामला ईमान और इस्लाम का है। जहाँ ईमान मौजूद होगा ज़रूर आदमी की अमली ज़िन्दगी में, अख़लाक़ में, बर्ताव में, ताल्लुक़ात के कटने और जुड़ने में, दौड़-धूप के रुख़ में, तबियत और सलीक़ा के बुनियाद में, कोशिश और जिद्दोजुहद के रास्ते में, वक़्त और क़ुव्वतों और क़ाबिलियतों के इस्तेमाल में, ग़रज़ ज़ाहिरी ज़िन्दगी के हर एक कामों में ज़ाहिर होकर रहेगा।

इनमें से जिस पहलू में भी इस्लाम के बजाय ग़ैर-इस्लाम ज़ाहिर हो रहा है, यक़ीन कर लीजिए कि उस पहलू में ईमान मौजूद नहीं है या है तो बिलकुल बोदा और बेजान, और अगर अमली ज़िन्दगी सारी की सारी ही ग़ैर-मुस्लिमों की तरह बसर हो रही हो तो जान लीजिए कि दिल ईमान से ख़ाली है या ज़मीन इतनी बंजर है कि ईमान का बीज फल और पत्ते नहीं ला रहा है। बहरहाल मैंने जहाँ तक क़ुरआन व हदीस को समझा है, यह किसी तरह मुमकिन नहीं है कि दिल में ईमान हो और अमल में इस्लाम न हो।

इस मौक़े पर एक साहब ने उठकर पूछा कि ईमान और अमल को आप एक

ही चीज़ समझते हैं या इन दोनों में कुछ फ़र्क़ है ? इसके जवाब में कहा :

आप थोड़ी देर के लिए अपने ज़ेहन से उन बहसों को निकाल दें जो फ़ुक़हा और मुतकल्लिमीन (तर्कशास्त्रियों) ने इस मसले में की हैं और क़ुरआन से इस मामले को समझने की कोशिश करें। क़ुरआन से साफ़ मालूम होता है कि एतिक़ादी ईमान (आस्थागत ईमान) और अमली इस्लाम एक-दूसरे से जुड़े हैं। अल्लाह तआला जगह-जगह ईमान और अमले सालेह (नेक आमाल) का साथ-साथ ज़िक्र करता है और तमाम अच्छे वादे जो उसने अपने बंदों से किए हैं उन्हीं लोगों के बारे में हैं जो अक़ीदे से मोमिन और अमल से मुसलमान हों। फिर आप देखेंगे कि अल्लाह तआला ने जहाँ मुनाफ़िक़ों को पकड़ा है, वहाँ उनके अमल ही की ख़राबियों को उनके ईमान के नुक़्स की दलील ठहराया गया है और अमली इस्लाम ही को हक़ीक़ी ईमान की अलामत ठहराया है।

इसमें कोई शक नहीं कि क़ानूनी लिहाज़ से किसी शख़्स को काफ़िर ठहराने और उम्मत से उसका रिश्ता काट देने का मामला दूसरा है और इसमें इनतिहाई एहतियात बरतनी चाहिए। मगर मैं यहाँ उस ईमान और इस्लाम का ज़िक्र नहीं कर रहा हूँ जिसपर दुनिया में फ़िक़ही अहकाम मुरत्तब होते हैं, बल्कि यहाँ ज़िक्र उस ईमान और इस्लाम का है जो ख़ुदा के यहाँ क़ाबिले क़बूल है और जिसपर आख़िरत के नतीजे मुरत्तब होनेवाले हैं। क़ानूनी नुक़्ते नज़र को छोड़कर हक़ीक़त में अगर देखें तो यक़ीनी तौर पर आप यही पाएँगे कि जहाँ अमलन ख़ुदा के आगे सुपुर्दगी और हवालगी में कमी है, जहाँ नफ़्स की पसंद ख़ुदा की पसंद से अलग है, जहाँ ख़ुदा की वफ़ादारी के साथ ग़ैर की वफ़ादारी निभ रही है, जहाँ लोग इक़ामते दीन की ज़िद्दोजुहद के बजाय दूसरे कामों में लगे हुए हैं, जहाँ कोशिशें और मेहनतें राहे ख़ुदा के बजाय दूसरी राहों में लग रही हों वहाँ ज़रूर ईमान में नुक़्स है और ज़ाहिर है कि नाक़िस ईमान पर तक़वा और एहसान की तामीर नहीं हो सकती, चाहे देखने में तक़वावाला लगने और मोहसिनीन के कुछ आमाल की नक़ल उतारने की कितनी ही कोशिश की जाए।

ज़ाहिर फ़रेब शक्लें अगर हक़ीक़त की रूह से ख़ाली हों तो उनकी मिसाल बिलकुल ऐसी ही है जैसी एक निहायत ख़ूबसूरत आदमी की लाश बेहतरीन शक्ल में मौजूद हो मगर उसमें जान न हो। इस ख़ूबसूरत लाश की ज़ाहिरी शान से धोखा खाकर आप कुछ उम्मीदें उससे बाँधेंगे तो हक़ीक़त की दुनिया अपने पहले ही इम्तिहान में उसे नाकारा साबित कर देगी और तजुर्बे से आपको ख़ुद ही मालूम हो जाएगा कि एक बदसूरत मगर ज़िंदा इनसान एक ख़ूबसूरत मगर मुर्दा

लाश से बहरहाल ज़्यादा कारगर होता है। ज़ाहिर-फ़रेबियों से आप अपने नफ़्स को तो ज़रूर धोखा दे सकते हैं लेकिन हक़ीक़त की दुनिया पर कुछ भी असर नहीं डाल सकते और न ख़ुदा की तराज़ू ही में कोई वज़न हासिल कर सकते हैं।

अगर आपको ज़ाहिरी नहीं, बल्कि वह हक़ीक़ी तक़वा और एहसान की मतलूब (अपेक्षित) हो जो दुनिया में दीन का बोलबाला करने और आख़िरत में ख़ैर का पलड़ा भारी करने के लिए ज़रूरी है, तो मेरी इस बात को अच्छी तरह ज़ेहननशीन कर लीजिए कि ऊपर की ये दोनों मंज़िलें कभी नहीं उठ सकतीं, जब तक ईमान की बुनियाद मज़बूत न हो जाए . . और इसकी मज़बूती का सुबूत अमली इस्लाम यानी अमलन इताअत और फ़रमांबरदारी से न मिल जाए।

तक़वा

तक़वा की बात करने से पहले यह समझने की कोशिश कीजिए कि तक़वा है क्या चीज़? तक़वा हक़ीक़त में किसी तौर-तरीक़ा और किसी ख़ास तर्ज़े-ज़िन्दगी का नाम नहीं है, बल्कि दरअस्ल वह नफ़्स की उस कैफ़ियत का नाम है जो ख़ुदतरसी और ज़िम्मेदारी के एहसास से पैदा होती है और ज़िन्दगी के हर पहलू में ज़ाहिर होती है। हक़ीक़ी तक़वा यह है कि इनसान के दिल में ख़ुदा का ख़ौफ़ हो, अब्दियत (ख़ुदा का बंदा और ग़ुलाम होने) का शुऊर हो, ख़ुदा के सामने अपनी ज़िम्मेदारी व जवाबदेही का एहसास हो, और इस बात की ज़िंदा सोच और समझ मौजूद हो कि दुनिया एक इम्तिहानगाह है जहाँ ख़ुदा ने एक उम्र की मोहलत देकर मुझे भेजा है और आख़िरत में मेरे मुस्तक़बिल (भविष्य) का फ़ैसला बिलकुल इस चीज़ पर है कि मैं इस दिए हुए वक़्त के अंदर इस इम्तिहानगाह में अपनी क़ुव्वतों और क़ाबिलियतों को किस तरह इस्तेमाल करता हूँ, उस सरोसामान को किस तरह इस्तेमाल करता हूँ जो अल्लाह की मरज़ी के तहत मुझे दिया गया है, और उन इनसानों के साथ क्या मामला करता हूँ जिनसे अल्लाह ने मुख़्तलिफ़ हैसियतों से मेरी ज़िन्दगी जोड़ दी है।

यह एहसास और शुऊर जिस शख़्स के भीतर पैदा हो जाए उसका ज़मीर बेदार हो जाता है, उसकी दीनी हिस्स तेज़ हो जाती है, उसे हर वह चीज़ खटकने लगती है जो ख़ुदा की रिज़ा के ख़िलाफ़ हो, उसके मिज़ाज को हर वह चीज़ नागवार लगने लगती है जो ख़ुदा की पसंद से अलग हो, वह अपने नफ़्स का आप जायज़ा लेने लगता है कि मेरे अंदर किस क़िस्म के रुझान पैदा हो रहे हैं, वह अपनी ज़िन्दगी का ख़ुद जायज़ा लेने लगता है कि मैं किन कामों में अपना

वक़्त और क़ुव्वत लगा रहा हूँ, वह एलानिया मना की गई चीज़ों को तो छोड़िए, शकवाली चीज़ों में भी मुबतिला होते हुए ख़ुद बख़ुद झिझकने लगता है। उसका एहसासे फ़र्ज़ उसे मजबूर कर देता है कि तमाम मामलों को पूरी फ़रमांबरदारी के साथ निभाए। उसकी ख़ुदातरसी की वजह से हर उस मौक़े पर उसका क़दम डगमगाने लगता है जहाँ अल्लाह की तय की गई हदों के टूटने का अंदेशा हो। अल्लाह के हक़ों और बंदों के हक़ों की अदायगी आपसे आप उसकी आदत बन जाती है और इस ख़याल से भी उसका ज़मीर काँप उठता है कि कहीं उससे कोई काम हक़ के ख़िलाफ़ न हो जाए।

यह कैफ़ियत किसी एक शक्ल या किसी ख़ास अमल के दायरे में ही ज़ाहिर नहीं होती बल्कि आदमी के पूरे तर्ज़े फ़िक्र और उसकी ज़िन्दगी के सभी कामों में ज़ाहिर होती है, और इसके असर से एक ऐसी हमवार और यकरंग सीरत पैदा होती है जिसमें आप हर पहलू से एक ही तर्ज़ की पाकीज़गी व सफ़ाई पाएँगे। इसके ख़िलाफ़ जहाँ तक़वा इस चीज़ का नाम रख लिया गया है कि आदमी कुछ ख़ास शक्लों की पाबंदी और ख़ास तरीक़ों की पैरवी अपना ले और कृत्रिम (मसनूई) तौर पर अपने आपको एक ऐसे साँचे में ढाल ले जिसकी पैमाइश की जा सकती हो, वहाँ आप देखेंगे कि वे कुछ तक़वा की शक्लें जो सिखा दी गई हैं, उनकी पाबंदी इन्तिहाई एहतिमाम के साथ हो रही है, मगर इसके साथ ज़िन्दगी के दूसरे पहलुओं में वे अख़लाक़, तर्ज़ेफ़िक्र और वह तर्ज़ेअमल भी ज़ाहिर हो रहे हैं जो तक़वा का मक़ाम तो दूर रहा, ईमान की इब्तिदाई तक़ाज़ों से भी मेल नहीं खाते। यानी हज़रत मसीह (अलै०) द्वारा बताई गई मिसाल में मच्छर छाने जा रहे हैं और ऊँट बेझिझक निगले जा रहे हैं।

हक़ीक़ी तक़वा और बनावटी तक़वा के इस फ़र्क़ को ऐसे समझिए कि एक शख़्स तो वह है जिसके अंदर पाकी व तहारत की हिस्स मौजूद है और पाकीज़गी का ज़ौक़ पाया जाता है; ऐसा शख़्स गंदगी से नफ़रत करेगा, चाहे वह जिस शक्ल में भी हो और तहारत को ख़ुद से अपनाएगा चाहे उसको पूरी तरह ज़ाहिर न कर सके। इसके ख़िलाफ़ एक दूसरा शख़्स है जिसके अंदर तहारत की हिस्स मौजूद नहीं है मगर वह गंदगियों और तहारतों की एक सूची लिए फिरता है जो कहीं से उसने नक़ल कर ली है। यह शख़्स उन गंदगियों से तो सख़्ती से बचेगा जो उसकी सूची में लिखी हुई हैं, मगर बेशुमार ऐसी घिनौनी चीज़ों में मुबतिला पाया जाएगा जो उन गंदगियों से भी बहुत ज़्यादा नापाक होंगी जिनसे वह बच रहा है, सिर्फ़ इस वजह से कि वे उसकी सूची में दर्ज होने से रह गईं।

यह फ़र्क़ जो मैं आपसे अर्ज़ कर रहा हूँ यह एक सिर्फ़ वैचारिक फ़र्क़ नहीं है बल्कि आप इसे अपनी आँखों से उन हज़रात की ज़िन्दगियों में देख सकते हैं जिनके तक़वा की धूम मची हुई है। एक ओर उनके यहाँ शरीअत की छोटी-छोटी चीज़ों का यह एहतिमाम है कि दाढ़ी अगर एक ख़ास लम्बाई से कुछ भी कम हो तो फ़िस्क़ (नाफ़रमानी) का फ़ैसला नाफ़िज़ कर दिया जाता है। पाजामा टख़ने से ज़रा नीचे हो जाए तो जहन्नम की सज़ा सुना दी जाती है। अपने मसलक के फ़िक़ह के फ़ुरूई अहकाम से हटना उनके नज़दीक मानो दीन से निकल जाना है। लेकिन दूसरी तरफ़ दीन के उसूल और बुनियादों से उनकी ग़फ़लत इस हद को पहुँची हुई है कि मुसलमानों की पूरी ज़िन्दगी का दारोमदार उन्होंने रुख़्सतों और सियासी मसलिहतों पर रख दिया है। इक़ामते दीन की जिद्दोजुहद से बचने की बेशुमार राहें इन्होंने निकाल रखी हैं। कुफ़्र के ग़लबे के तहत 'इस्लामी ज़िन्दगी' के नक़्शे बनाने ही में उनकी सारी मेहनतें और कोशिशें लग रही हैं। और इन्हीं की ग़लत रहनुमाई ने मुसलमानों को इस चीज़ पर मुतमइन किया है कि एक ग़ैर-इस्लामी निज़ाम के अंदर रहते हुए बल्कि उसकी ख़िदमत करते हुए भी एक महदूद दायरे में मज़हबी ज़िन्दगी बसर करके वे दीन के सारे तक़ाज़े पूरे कर सकते हैं और इससे आगे कोई ज़रूरत नहीं है जिसके लिए वे कोशिश करें। फिर इससे भी ज़्यादा अफ़सोसनाक बात यह है कि अगर कोई उनके सामने दीन के असली मुतालबे पेश करे और इक़ामते दीन के लिए जिद्दोजुहद की तरफ़ तवज्जोह दिलाए तो सिर्फ़ यही नहीं कि वे उसकी बात सुनी-अनसुनी कर देते हैं बल्कि कोई हीला, कोई बहाना और कोई चाल ऐसी नहीं छोड़ते जो इस काम से ख़ुद बचने और मुसलमानों को बचाने के लिए इस्तेमाल न करें। इसपर भी उनके तक़वा पर कोई आँच नहीं आती और न मज़हबी ज़ेहनियत रखनेवालों में से किसी को यह शक होता है कि उनके तक़वा में कोई कसर है। इसी तरह हक़ीक़ी और बनावटी तक़वा का फ़र्क़ बेशुमार दूसरी शक्लों में भी ज़ाहिर होता रहता है, मगर आप उसे तभी महसूस कर सकते हैं कि तक़वा का असली तसव्वुर आपके ज़ेहन में वाज़ेह तौर पर मौजूद हो।

मेरी इन बातों का मतलब यह हरगिज़ नहीं है कि रंग-ढंग, लिबास और ज़िन्दगी गुज़ारने के ज़ाहिरी पहलुओं के बारे में जो आदाब व अहकाम हदीस से साबित हैं, मैं उनमें कमी करना चाहता हूँ या उन्हें ग़ैर-ज़रूरी समझता हूँ। ख़ुदा की पनाह इससे कि मेरे दिल में ऐसा कोई ख़याल हो। दरअस्ल जो कुछ मैं आपके ज़ेहननशीन करना चाहता हूँ वह यह है कि अस्ल चीज़ हक़ीक़ते तक़वा है

न कि दिखनेवाली ये चीज़ें। तक़वा की हक़ीक़त जिसके अंदर पैदा होगी तो उसकी पूरी ज़िन्दगी हमवारी और एकरंगी के साथ इस्लामी ज़िन्दगी बनेगी और इस्लाम अपनी पूरी तरह उसके ख़यालों में, उसके जज़्बात और रुझानों में, उसके मिज़ाज और तबीयत में, उसके वक़्त की तक़्सीम में, और उसकी कुव्वतों के मसारिफ़ में उसकी कोशिशों की राहों में, उसके तर्ज़े-ज़िन्दगी और रहन-सहन में, उसकी कमाई और ख़र्च में—ग़रज़ उसकी दुनियावी ज़िन्दगी के सारे ही पहलुओं में धीरे-धीरे नुमायाँ होता चला जाएगा।

इसके ख़िलाफ़ अगर ज़ाहिरी चीज़ों को हक़ीक़त पर तरजीह दी जाएगी और उनपर बेकार का ज़ोर दिया जाएगा, और हक़ीक़ी तक़वा के बीज डाले बिना और उसको परवान चढ़ाए बिना दिखाने के लिए कुछ ज़ाहिरी हुक्मों को पूरा कर दिया जाएगा तो नतीजे वही कुछ होंगे जिनका मैंने अभी आपसे ज़िक्र किया है। पहली चीज़ के लिए वक़्त और सब्र की ज़रूरत है। धीरे-धीरे और एक मुद्दत के बाद ही नशोनुमा पाती है और फल-फूल देती है जिस तरह बीज से पेड़ के पैदा होने और फल-फूल लाने में काफ़ी देर लगा करती है। इसी लिए सतही मिज़ाज के लोग इससे कतराते हैं। जबकि दूसरी चीज़ जल्दी और आसानी से पैदा कर ली जाती है, जैसे एक लकड़ी में पत्ते और फल-फूल बाँधकर दरख़्त की-सी शक्ल बना दी जाए। यही वजह है कि तक़वा की पैदावार का यही ढंग आज मक़बूल है। लेकिन ज़ाहिर है कि जो उम्मीदें एक फ़ितरी दरख़्त से पूरी होती हैं, वे इस तरह के बनावटी दरख़्तों से कभी पूरी नहीं हो सकतीं।

एहसान

अब एहसान को लीजिए जो इस्लाम की बुलंदतरीन मंज़िल है। एहसान दरअस्ल अल्लाह और उसके रसूल और उसके दीन के साथ उस क़लबी लगाव, उस गहरी मुहब्बत, उस सच्ची वफ़ादारी, फ़िदाकारी और जांनिसारी का नाम है, जो मुसलमानों को 'फ़ना फ़िल इस्लाम' कर दे। तक़वा का बुनियादी तसव्वुर ख़ुदा का ख़ौफ़ है जो इनसान को उसकी नाराज़गी से बचने पर आमादा करे और एहसान का बुनियादी तसव्वुर ख़ुदा की मुहब्बत है जो आदमी को उसकी ख़ुशनूदी हासिल करने के लिए उभारे। इन दोनों चीज़ों के फ़र्क़ को एक मिसाल से ऐसे समझिए कि हुकूमत के मुलाज़िमों में से एक तो वे लोग हैं जो बहुत ही लगन और मेहनत से वे तमाम ख़िदमतें ठीक-ठाक अदा करते हैं जो उन्हें सौंपी गई है। सभी नियमों और क़ायदों की पूरी-पूरी पाबंदी करते हैं और कोई ऐसा

काम नहीं करते जो हुकूमत के लिए क़ाबिले एतिराज़ हो। दूसरा तबक़ा उन मुख़्लिस वफ़ादारों और जांनिसारों का होता है जो दिल व जान से हुकूमत के लिए काम करते हैं। सिर्फ़ वही ख़िदमात अंजाम नहीं देते जो उन्हें सौंपी गई हों, बल्कि उनके दिल को हमेशा यह फ़िक्र लगी रहती है कि सल्तनत के मफ़ाद (हित) को ज़्यादा से ज़्यादा किस तरह तरक़्क़ी दी जाए, और इस धुन में फ़र्ज़ और मुतालिबा से ज़्यादा काम करते हैं। सल्तनत पर कोई आँच आए तो वे जान, माल और औलाद सब कुछ क़ुरबान करने के लिए आमादा हो जाते हैं। क़ानून का कहीं उल्लंघन हो तो उनके दिल को चोट लगती है। कहीं बग़ावत के आसार पाए जाएँ तो वे बेचैन हो जाते हैं और उसे दूर करने में जान लड़ा देते हैं। जान-बूझकर ख़ुद सल्तनत के मफ़ाद को नुक़सान पहुँचाना तो दरकिनार उसके मफ़ाद को किसी तरह नुक़सान पहुँचते देखना भी उनके लिए नाक़ाबिले बर्दाश्त होता है—और इस ख़राबी को मिटाने में वे अपनी हद तक कोई कसर बाक़ी नहीं रखते। उनकी दिली ख़्वाहिश यह होती है कि दुनिया में बस उनकी सल्तनत ही का बोलबाला हो और ज़मीन का कोई चप्पा ऐसा बाक़ी न रहे जहाँ उसका झंडा न लहराए।

इन दोनों में से पहली क़िस्म के लोग हुकूमत के मुतक़्क़ी (तक़वा वाले) हैं और दूसरे क़िस्म के लोग उसके मोहसिन (एहसान करनेवाले)। अगरचे तरक़्क़ियाँ मुत्तक़ियों को भी मिलती हैं और बहरहाल उनके नाम अच्छे ही मुलाज़िमों की फ़ेहरिस्त में लिखे जाते हैं, मगर जो इनाम मोहसिनों के लिए हैं उनमें कोई दूसरा उनका शरीक नहीं होता। बस इसी मिसाल पर इस्लाम के मुत्तक़ियों और मोहसिनों को भी क़यास कर लीजिए। अगरचे मुत्तक़ी भी क़ाबिले क़द्र और क़ाबिले एतिमाद लोग हैं, मगर इस्लाम की अस्ल ताक़त मोहसिनों का गिरोह है और वह असली काम जो इस्लाम इस दुनिया में करना चाहता है इसी गिरोह से हो सकता है।

एहसान की इस हक़ीक़त को समझ लेने के बाद आप ख़ुद ही अंदाज़ा कर लें कि जो लोग अपनी आँखों से ख़ुदा के दीन को कुफ़्र से दबा हुआ देखें, जिनके सामने अल्लाह की हुदूद को रौंदा ही नहीं जाए, बल्कि नेस्तोनाबूद कर दी जाएँ, ख़ुदा का क़ानून अमलन ही नहीं बल्कि बाज़ाब्ता रद्द कर दिया जाए, ख़ुदा की ज़मीन पर ख़ुदा का नहीं बल्कि उसके बाग़ियों का बोलबाला हो रहा हो, कुफ़्र के निज़ाम के छा जाने से न सिर्फ़ आम इनसानी सोसाइटी में अख़लाक़ी और समाजी फ़साद बरपा हो बल्कि ख़ुद मुस्लिम उम्मत भी निहायत तेज़ी के साथ

अख़लाक़ी व अमली गुमराहियों में मुबतिला हो रही हो और यह सब कुछ देखकर भी उनके दिलों में न कोई बेचैनी पैदा हो, न इस हालत को बदलने के लिए कोई जज़्बा भड़के बल्कि इसके बरअक्स वे अपने नफ़्स को और आम मुसलमानों को ग़ैर-इस्लामी निज़ाम के छा जाने पर उसूलन और अमलन मुतमइन कर दें, उनका शुमार आख़िरकार मोहसिनों में किस तरह हो सकता है, और इस बड़े जुर्म के साथ सिर्फ़ यह बात उन्हें एहसान के ऊँचे मक़ाम पर कैसे सरफ़राज़ कर सकती है कि वे चाश्त, इशराक़ और तहज्जुद के नवाफ़िल पढ़ते रहे, ज़िक्र व शग़ल और मुराक़बे (ईश-ध्यान) करते रहे, हदीस व क़ुरआन के दर्स देते रहे, फ़िक़ह के कुछ ग़ैर-बुनियादी हिस्सों की पाबंदी और छोटी-छोटी सुन्नतों पर अमल का सख़्त एहतिमाम करते रहे और तज़किया-ए-नफ़्स (अंत:करण की शुद्धि) की ख़ानक़ाहों में दीनदारी का वह फ़न सिखाते रहे जिसमें हदीस, फ़िक़ह और तसव्वुफ़ की बारीकियाँ तो सारी मौजूद थीं, मगर एक नहीं थी तो वह हक़ीक़ी दीनदारी जो 'सिर दिया न दिया, लेकिन हाथ यज़ीद के हवाले कर दिया' की कैफ़ियत पैदा करे और 'बाज़ी अगरचे पा न सका, सिर तो खो सका' के वफ़ादारी के मक़ाम पर पहुँचाए।

आप दुनियावी रियासतों और क़ौमों में भी वफ़ादार और ग़ैर-वफ़ादार का इतना फ़र्क़ ज़रूर पाएँगे कि अगर मुल्क में बग़ावत हो जाए या मुल्क के किसी हिस्से पर दुश्मन का क़ब्ज़ा हो जाए तो बाग़ियों और दुश्मनों की हुकूमत को जो लोग जाइज़ मान लें, या उनकी हुकूमत पर राज़ी हो जाएँ और उनके साथ समझौता कर लें, या उनकी सरपरस्ती में कोई ऐसा निज़ाम बनाएँ जिसमें असली हुकूमत की बागडोर उन्हीं के हाथों में रहे और थोड़े-बहुत हुक़ूक़ व इख़तियारात भी मिल जाएँ, तो ऐसे लोगों को कोई रियासत और कोई क़ौम अपना वफ़ादार मानने के लिए तैयार नहीं होती, चाहे वे क़ौमी फ़ैशन के कैसे ही सख़्त पाबंद और छोटे-छोटे मामलों में सख़्ती से माननेवाले क्यों न हों।

आज आपके सामने ज़िंदा मिसालें मौजूद हैं कि जो मुल्क जर्मनी के तसल्लुत से निकले हैं वहाँ उन लोगों के साथ क्या मामला हो रहा है जिन्होंने जर्मन क़ब्ज़े के ज़माने में मदद और समझौते का रास्ता अपनाया था। इन सब रियासतों और क़ौमों के पास वफ़ादारी को जाँचने का एक ही पैमाना है—और वह यह कि किसी शख़्स ने दुश्मन के तसल्लुत का प्रतिरोध किस हद तक किया, उसे मिटाने के लिए क्या काम किया, और उस हुकूमत को वापस लाने की क्या कोशिश की जिसकी वफ़ादारी का वह दावेदार था। फिर क्या, अल्लाह की

पनाह! ख़ुदा के बारे में आपका यह गुमान है कि वह अपने वफ़ादारों को पहचानने की इतनी तमीज़ भी नहीं रखता कि जितनी दुनिया के इन कमअक़्ल इनसानों में पाई जाती है? क्या आप समझते हैं कि वह बस दाढ़ियों की लम्बाई, टख़नों और पाँएचों का फ़ासला, तस्बीहों की गर्दिश, विर्द, वज़ीफ़े, नवाफ़िल, मुराक़बे और ऐसी ही कुछ चीज़ें देखकर ही धोखा खा जाएगा कि आप उसके सच्चे वफ़ादार और जाँनिसार हैं?

ग़लतफ़हमियाँ

हज़रात! अब मैं एक आख़िरी बात कहकर अपनी तक़रीर ख़त्म करूँगा। आम मुसलमानों के ज़ेहन पर मुद्दतों की ग़लत सोच की वजह से छोटी-छोटी चीज़ों और ज़ाहिरी चीज़ों की अहमियत कुछ इस तरह छा गई है कि दीन के उसूल, ज़ाब्ते और दीनदारी और इस्लामी अख़लाक़ के हक़ीक़ी जौहर की तरफ़ चाहे कितनी ही तवज्जोह दिलाई जाए, मगर लोगों के दिमाग़ घूम-फिरकर उन्हीं छोटे-छोटे मसाइल और ज़रा-ज़रा-सी ज़ाहिरी चीज़ों में अटककर रह जाते हैं जिन्हें असल दीन बनाकर रख दिया गया है। इस महामारी के असरात ख़ुद हमारे बहुत-से रुफ़क़ा और हमदर्दों में भी पाए जाते हैं। मैं अपना पूरा ज़ोर यह समझाने में लगाता रहा हूँ कि दीन की हक़ीक़त क्या है, इसमें असल अहमियत किन चीज़ों की है और इसमें पहले क्या है और बाद में क्या? लेकिन इन सारी कोशिशों के बाद जब देखता हूँ यही देखता हूँ कि वही ज़ाहिरपरस्ती और वही उसूल से बढ़कर ग़ैर अहम चीज़ों की अहमियत दिमाग़ों पर छाई हुई है। आज तीन दिन से मेरे पास पर्चों की भरमार हो रही है जिनमें सारी माँग बस इसकी है कि जमाअत के लोगों की दाढ़ियाँ बढ़वाई जाएँ, पाँएचे टख़नों से ऊँचे कराए जाएँ, और ऐसी ही दूसरी छोटी-छोटी चीज़ों का एहतिमाम कराया जाए। इसके अलावा कुछ लोगों के इस ख़याल का भी मुझे इल्म हुआ है कि उन्हें जमाअत में इस चीज़ की बड़ी कमी महसूस होती है जिसे वे 'रूहानियत' से ताबीर करते हैं। मगर शायद ख़ुद नहीं बता सकते कि यह रूहानियत हक़ीक़त में है क्या चीज़? इस वजह से उनकी राय यह है कि नस्बुलऐन और तरीक़ेकार तो इस जमाअत का अपनाया जाए और तज़्किया-ए-नफ़्स व रूहानी तर्बियत के लिए ख़ानक़ाहों की तरफ़ रुख़ किया जाए। ये सारी बातें साफ़ बताती हैं कि अभी तक हमारी तमाम कोशिशों के बावजूद लोगों में दीन की समझ पैदा नहीं हुई है। मैं अभी आपके सामने ईमान, इस्लाम, तक़वा और एहसान के बारे में जो कुछ बता चुका हूँ, उसमें अगर कोई चीज़ क़ुरआन व हदीस की तालीम से हटकर मैंने ख़ुद से घड़कर बता दी हो, तो आप

बेझिझक इसके बारे में बताएँ। लेकिन अगर आप मानते हैं कि अल्लाह की किताब व अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सुन्नत के मुताबिक़ यही इन चारों की हक़ीक़त है तो फिर ख़ुद ही सोचिए कि जहाँ ईमान के तक़ाज़े भी पूरी तरह अदा न हों और जहाँ तक़वा और एहसान की जड़ ही न पाई जाती हो वहाँ आख़िर कौन-सी रूहानियत पाई जा सकती है, जिसे आप तलाश करने जा रहे हैं। रही वे शरीअत की छोटी-छोटी चीज़ें जिन्हें आपने दीन की पहली ज़रूरत मान रखा है तो उनका हक़ीक़ी मक़ाम मैं आपके सामने फिर एक बार साफ़-साफ़ वाज़ेह किए देता हूँ, ताकि मैं अपनी ज़िम्मेदारी से बरी हो जाऊँ।

सबसे पहले ठंडे दिल से इस बात पर ग़ौर कीजिए कि अल्लाह तआला ने अपने रसूल दुनिया में किस मक़सद के लिए भेजे हैं। दुनिया में आख़िर किस चीज़ की कमी थी, क्या ख़राबी पाई जाती थी जिसे दूर करने के लिए नबियों के भेजने की ज़रूरत पेश आई? क्या वह यह थी कि लोग दाढ़ियाँ न रखते थे और उन्हें रखवाने के लिए रसूल भेजे गए, या यह कि लोग टख़ने ढके रहते थे और नबियों के ज़रिए उन्हें खुलवाना मक़सद था? वे कुछ सुन्नतें जिनके एहतिमाम का आप लोगों में बहुत चर्चा है, दुनिया में जारी नहीं थीं और उन्हीं को जारी करने के लिए नबियों की ज़रूरत थी? इन सवालों पर आप ग़ौर करेंगे तो ख़ुद ही कह देंगे कि न अस्ल ख़राबियाँ ये थीं और न नबियों को भेजने का अस्ल मक़सद यह था। सिर्फ़ सवाल यह है कि वे अस्ल ख़राबियाँ क्या थीं, जिन्हें दूर करने की ज़रूरत थी और वे हक़ीक़ी भलाइयाँ क्या थीं जिन्हें क़ायम करने की ज़रूरत थी? इसका जवाब आप इसके सिवा और क्या दे सकते हैं कि ख़ुदा की इताअत व बंदगी से हटना, अपने बनाए हुए उसूलों और क़ानूनों की पैरवी और ख़ुदा के सामने जवाबदेही व ज़िम्मेदारी का एहसास न होना—ये असल ख़राबियाँ थीं जो दुनिया में फैल गई थीं। इन्हीं की बदौलत गंदे अख़लाक़ पैदा हुए, ज़िन्दगी के ग़लत उसूल राइज हुए और ज़मीन पर फ़साद फैला। फिर अंबिया (अलै०) इस ग़रज़ के लिए भेजे गए कि इनसानों में ख़ुदा की बंदगी, वफ़ादारी और उसके सामने जवाबदेही का एहसास पैदा किया जाए। बुलंद अख़लाक़ को बढ़ावा दिया जाए और इनसानी ज़िन्दगी का निज़ाम उन उसूलों पर क़ायम किया जाए जिनसे ख़ैर व भलाई उभरे और बुराई और फ़साद दबे। यही एक मक़सद तमाम नबियों के आने का था और आख़िरकार इसी एक मक़सद के लिए हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) दुनिया में तशरीफ़ लाए।

अब देखिए कि इस मक़सद को पूरा करने के लिए हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने

किस तरीक़े और तर्तीब से काम किया। सबसें पहले आप (सल्ल०) ने ईमान की दावत दी और इसे गहरी बुनियादों पर पुख़्ता और मज़बूत किया। फिर इस ईमान के तक़ाज़ों के मुताबिक़ एक के बाद एक अपनी तालीम व तर्बियत के ज़रिए से अहले ईमान में अमली इताअत व फ़रमांबरदारी (यानी इस्लाम), अख़लाक़ी तहारत (यानी तक़वा) और ख़ुदा की गहरी मुहब्बत व वफ़ादारी (यानी एहसान) की ख़ूबियाँ पैदा कीं। फिर इन मुख़्लिस मोमिनों की मिली-जुली कोशिशों से पहले से चले आ रहे जाहिलियत के ग़ैर-ख़ुदाई निज़ाम को हटाना और इसकी जगह ख़ुदाई क़ानूनों के अख़लाक़ी व तमद्दुनी उसूलों पर एक सालेह निज़ाम क़ायम करना शुरू कर दिया। इस तरह जब ये लोग अपने दिल, दिमाग़, नफ़्स और अख़लाक़, फ़िक्र और अमल यानी सभी हैसियतों से वाक़ई मुस्लिम, मुत्तक़ी और मोहसिन बन गए और उस काम में लग गए जो अल्लाह तआला के वफ़ादारों को करना चाहिए, तब आप (सल्ल०) ने उन्हें बताना शुरू किया कि रंग-ढंग, लिबास, खाने-पीने, रहने-सहने, उठने-बैठने और अन्य ज़ाहिरी बर्ताव में वे मुहज़्ज़ब आदाब व तौर-तरीक़े कौन-से हैं जो मुत्तक़ियों के लिए बेहतर हैं। यानी पहले कच्चे माल को कुंदन बनाया, फिर उसपर अशरफ़ी का ठप्पा लगाया। पहले सिपाही तैयार किए फिर उन्हें वर्दी पहनाई। यही इस काम की सही तर्तीब है जो क़ुरआन व हदीस के गहरे मुतालआ से साफ़ नज़र आती है।

यदि सुन्नत की पैरवी नाम है उस तर्ज़े अमल का जो नबी (सल्ल०) ने अल्लाह तआला की मरज़ी पूरी करने के लिए ख़ुदा की हिदायत के मुताबिक़ अपनाया था तो यक़ीन मानिए यह सुन्नत की पैरवी नहीं, बल्कि उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी है कि हक़ीक़ी मोमिन, मुस्लिम, मुत्तक़ी और मोहसिन बनाए बग़ैर लोगों को मुत्तक़ियों के ज़ाहिरी साँचे में ढालने की कोशिश की जाए, और मोहसिनों के कुछ मशहूर व मक़बूल तौर-तरीक़े की नक़ल उतरवाई जाए यह सीसे और ताँबे के टुकड़ों पर अशरफ़ी का ठप्पा लगाकर बाज़ार में उन्हें चला देना; और सिपाहियत, वफ़ादारी व जाँनिसारी पैदा किए बिना सिर्फ़ वर्दीवाले सिपाहियों को मैदान में ला खड़ा करना मेरे नज़दीक तो एक खुली जालसाज़ी है और इसी जालसाज़ी का नतीजा है कि न बाज़ार में आपकी इन जाली अशरफ़ियों की कोई क़ीमत है और न मैदान में आपके इन नुमाइशी सिपाहियों की भीड़ से किसी मोर्चे पर जीत हासिल हो सकती है।

फिर क्या आप समझते हैं कि ख़ुदा के यहाँ असली क़द्र किस चीज़ की है? फ़र्ज़ कीजिए कि एक शख़्स सच्चा ईमान रखता है, फ़र्ज़ को पहचाननेवाला

है, अच्छे अख़लाक़ का मालिक है, अल्लाह की हदों का पाबंद है और ख़ुदा की वफ़ादारी व जाँनिसारी का हक़ अदा करता है, मगर ज़ाहिरी फ़ैशन के लिहाज़ से बेकार और ज़ाहिरी तहज़ीब के मेयार से गिरा हुआ है। उसकी हैसियत ज़्यादा से ज़्यादा बस यही तो होगी कि एक अच्छा मुलाज़िम है, मगर ज़रा बदतमीज़ है। मुमकिन है इस बदतमीज़ी की वजह से उसको ऊँचा मर्तबा न मिल सके, मगर क्या आप समझते हैं कि इस क़ुसूर में उसकी वफ़ादारी का अज्र भी मारा जाएगा और उसका मालिक सिर्फ़ इसलिए उसे जहन्नम में झोंक देगा कि वह देखने में अच्छा और बेहतर तौर-तरीक़े का नहीं था? फ़र्ज़ कीजिए कि एक दूसरा शख़्स है जो बेहतरीन शरई फ़ैशन में रहता है और तहज़ीब के आदाब का बहुत पाबंद है, मगर उसकी वफ़ादारी में नुक़्स है, उसकी फ़र्ज़शनासी में कमी है, उसकी ईमानी ग़ैरत में ख़राबी है, आप क्या अंदाज़ा कर सकते हैं कि इन कमियों के साथ इस ज़ाहिरी पाबंदी की कितनी क़द्र ख़ुदा के यहाँ होगी? यह मसला तो कोई गहरा और पेचीदा क़ानूनी मसला नहीं है जिसे समझने के लिए किताबें खंगालने की ज़रूरत हो। सिर्फ़ मामूली अक़्ल से ही हर आदमी जान सकता है कि इन दोनों में से असली क़द्र की हक़दार कौन-सी चीज़ है।

दुनिया के कमअक़्ल लोग भी इतनी तमीज़ ज़रूर रखते हैं कि हक़ीक़त में क़द्र करने के लायक़ क्या चीज़ है। यह अंग्रेज़ी हुकूमत आपके सामने मौजूद है। ये लोग जैसे कुछ फ़ैशनपरस्त हैं और ज़ाहिरी आदाब और तौर-तरीक़े पर जिस तरह जान देते हैं इसका हाल आपको मालूम है। लेकिन क्या आप जानते हैं कि उनके यहाँ असली क़द्र किस चीज़ की है? जो फ़ौजी अफ़सर उनकी सल्तनत का झंडा बुलंद करने में अपने दिल व दिमाग़ और जिस्म व जान की सारी कुव्वतें लगा दे और फ़ैसले के वक़्त पर कोई कुरबानी देने में झिझके नहीं, वह चाहे उनके नुक़्त-ए-नज़र से कितना ही उजड्ड और गँवार हो, कई-कई दिन दाढ़ी न बनाता हो, बेढंगा लिबास पहनता हो, खाने-पीने की ज़रा तमीज़ न रखता हो, डांस करना न जानता हो... मगर इन सारे ऐबों के बावजूद उसे वे सिर-आँखों पर बैठाएँगे और उसे तरक़्क़ी के बुलन्द मर्तबे देंगे। इसके ख़िलाफ़ जो शख़्स फ़ैशन, तहज़ीब, ख़ुश तमीज़ी और सोसायटी के राइज तौर-तरीक़ों का आइडियल हो, लेकिन वफ़ादारी व जाँनिसारी में कमज़ोर हो और काम के वक़्त पर फ़र्ज़ और क़ौमी ग़ैरत के मुक़ाबले में अपनी जान, राहत और अपने निजी फ़ायदों को ज़्यादा अहमियत दे उसे वे कोई इज़्ज़त का मक़ाम देना तो दूर शायद उसका कोर्टमार्शल करने में भी झिझकेंगे नहीं। जब दुनिया के कमअक़्ल इनसानों

की सूझ-बूझ का हाल यह है तो अपने ख़ुदा के बारे में आपका क्या गुमान है? क्या वह सोने और ताँबे में फ़र्क़ करने के बजाय सिर्फ़ अशरफ़ी का ठप्पा देखकर अशरफ़ी की क़ीमत, और पैसे का ठप्पा देखकर पैसे की क़ीमत लगा देगा?

मेरी इस गुज़ारिश का यह मतलब न निकालें कि मैं ज़ाहिरी अच्छाइयों से इनकार करना चाहता हूँ या उन हुक्मों को पूरा करने को ग़ैर-ज़रूरी क़रार दे रहा हूँ, जो ज़िन्दगी के ज़ाहिरी पहलुओं के सुधार के बारे में दिए गए हैं। दरहक़ीक़त मैं तो इसका क़ायल हूँ कि मोमिन बंदे को हर उस हुक्म की तामील करनी चाहिए जो ख़ुदा और रसूल ने दिया हो, और यह भी मानता हूँ कि दीन इनसान के अदंरून और ज़ाहिर दोनों को दुरुस्त करना चाहता है। लेकिन जो चीज़ मैं आपके ज़ेहन में बैठाना चाहता हूँ वह यह है कि पहली चीज़ अंदरून है न कि ज़ाहिर। पहले अंदरून में हक़ीक़त का जौहर पैदा करने की फ़िक्र कीजिए, फिर ज़ाहिर को हक़ीक़त के मुताबिक़ ढालिए।

आपको सबसे बढ़कर और सबसे पहले उन ख़ूबियों की तरफ़ ध्यान देना चाहिए जो अल्लाह के यहाँ अस्ली क़द्र के मुस्तहिक़ हैं और जिन्हें परवान चढ़ाना नबियों की आमद का अस्ली मक़सद था। 'ज़ाहिर' पहले तो इन ख़ूबियों के नतीजे में ख़ुद बख़ुद परवान चढ़ेगा और अगर इसमें कुछ कसर रह जाएगी तो मरहलों की तकमील के वक़्त इसका एहतिमाम भी किया जा सकता है।

दोस्तो और रफ़ीक़ो! मैंने बीमारी और कमज़ोरी के बावजूद आज यह लंबी तक़रीर आपके सामने सिर्फ़ इसलिए की है कि मैं हक़ के मामले को पूरी वज़ाहत के साथ आप तक पहुँचाकर ख़ुदा के सामने ज़िम्मेदारी से बरी होना चाहता हूँ। ज़िन्दगी का कोई भरोसा नहीं। कोई नहीं जानता कि कब किसकी उम्र पूरी हो जाए। इसलिए मैं ज़रूरी समझता हूँ कि हक़ पहुँचाने की जो ज़िम्मेदारी मुझपर आयद होती है उससे छुटकारा पा लूँ। अगर कोई बात वज़ाहत के लायक़ हो तो पूछ लीजिए, अगर मैंने कोई बात हक़ के ख़िलाफ़ बयान की हो तो उसके बारे में बताइए और अगर मैंने ठीक-ठीक हक़ आप तक पहुँचा दिया है तो इसकी गवाही दीजिए (लोगों ने आवाज़ देकर कहा—"हम गवाह हैं")। आप भी गवाह रहें और ख़ुदा भी गवाह हो। मैं दुआ करता हूँ कि अल्लाह मुझे और आप सबको अपने दीन की सही समझ बख़्शे और इस समझ के मुताबिक़ दीन के सारे तक़ाज़े और मुतालबे पूरे करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाए। आमीन!!

इसके बाद जलसा ख़त्म हुआ और इज्तिमा की कार्रवाई भी ख़त्म हो गई।